CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक साहित्य का इतिहास

कुंवर लाल जैन

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या हि०
प्राप्ति-संख्या 33५२

ग्रन्थ-कार्ड
श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम वैदिक साहित्य का इतिहास
लेखक कुन्दनलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक साहित्य का इतिहास

3352

लेखक
डा० कुँवरलाल जैन
'व्यासशिष्य'

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली वाराणसी
(भारत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

© प्रकाशक—

भारतीय विद्या प्रकाशन

1. 1 यू० बी, जवाहर नगर,
बैंग्लोरोड, दिल्ली—7
2. पो. बा., 108, कचौड़ी गली,
वाराणसी—1

प्रथम संस्करण : फरवरी 1978

मूल्य : 8.00

मुद्रक :—
जय भारत प्रिंटर्स, 2082,
मुकीमपुरा, सब्जी मण्डी,
दिल्ली-110007

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3342

दो शब्द

प्रिय मित्र डा० कुँवरलाल जैन द्वारा रचित 'वैदिक साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक को विद्वानों तथा विद्यार्थियों के समक्ष रखते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस पुस्तक को लिखने में लेखक ने अच्छा परिश्रम किया है। वैदिक साहित्य के इतिहास में इस तरह के अध्ययन की आवश्यकता थी। प्राचीन पद्धति से वैदिक वाङ्मय का ज्ञान प्राप्त करके और आधुनिक विश्लेषणात्मक शैली को अपनाकर इन्होंने इस पुस्तक को लिखा है।

यद्यपि इस विषय पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। फिर भी इस पुस्तक की एक अपनी अलग ही विशेषता है। अंग्रेजी लेखकों के द्वारा लिखी गई पुस्तकों में प्रायः भारतीय विद्वानों के मतों को स्थान नहीं दिया गया है। भारतीय विद्वानों द्वारा रचित इतिहास ग्रन्थों में भी प्रायः अंग्रेजी विद्वानों के मतों की ही दुवारा स्थापना की गई है। इस प्रकार ये ग्रन्थ एक ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। डा० कुँवरलाल जैन ने भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों का सारगर्भित विवेचन करने के साथ प्रथम वार पुरातन भारतीय ऐतिह्य को उपस्थित करने का सुन्दर प्रयास किया है। अतएव मैं उन्हें बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि उनकी यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के लिए परमोपयोगी सिद्ध होगी।

राजेन्द्र नाथ शर्मा,
हिन्दू महाविद्यालय,
दिल्ली-110007

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

वैदिक साहित्य न केवल भारतवर्ष, वरन् सम्पूर्ण विश्व का आदिम और सर्वोच्च वाङ्मय है जो आज विश्व को उपलब्ध है। वैदिक भाषा और साहित्य को प्रायः संस्कृतज्ञ भी नहीं समझ सकता, असंस्कृतज्ञ पाठक के लिए तो यह गूढ़ प्रहेलिका के तुल्य है। उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ से आज तक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक साहित्य के प्रकाशन सम्पादन और अनुसंधान में शतशः प्रयत्न एवं कार्य किये, उनके प्रयत्नों से आज हम विशाल वैदिक वाङ्मय से परिचित हैं। इस सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों में म० म० मधुसूदन ओझा म० म० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, चिन्तामणि विनायक वैद्य, डा० सम्पूर्णानन्द, अविनाशचन्द्र दास, पं० भगवद्दत्त, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, पं० रघुनन्दन शर्मा, श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक, श्री० वी० वरदाचार्य, पं० बलदेव उपाध्याय, पं० उदयवीर शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने वैदिक साहित्य एवं उसके इतिहास के सम्बन्ध में बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं, जो विद्वानों को प्रायः विदित ही हैं।

प्राच्य विद्या एवं संस्कृत अध्ययन और अनुसंधान कार्य पाश्चात्य जगत् में मुख्यतः सरविलियम जोन्स (1784) से श्री गणेश हुआ था। वेद के सम्बन्ध में प्रायः इन पाश्चात्य विद्वानों का श्रम उल्लेखनीय है। सर्वश्री कोलब्रुक, हम्बोल्ट रुडील्फ, मैक्समूलर, रॉथ, व्रेवर, विल्सन, जैकोबी, गोलडस्टूकर, मूर, ह्विटनी गार्वे, बलूमफील्ड, कीथ मैकेडानल, विन्टरनीट्स, मार्टिनहाग, केगी इत्यादि इनमें से वेवर, मैक्समूलर, मैकडोनल कीथ और विन्टरनीट्स के संस्कृत एवं वैदिक साहित्य के इतिहास प्रसिद्ध है।

भारतीय विद्वानों में पं० भगवद्दत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास और पं० बलदेव उपाध्याय का वैदिक साहित्य और संस्कृति प्रसिद्ध हैं। अन्य और कुछ विद्वानों ने छात्रोपयोगी वैदिक साहित्य के इतिहास लिखे हैं, यथा डा० रसिक बिहारी जोशी एवं कृष्णकुमार इत्यादि। अतः वैदिक साहित्य के इतिहास विरल ही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे द्वारा लिखित प्रस्तुत 'वैदिक साहित्य का इतिहास' की कुछ विशेषतायें हैं, यथा यह संक्षिप्त, सारगर्भित, सरल, अल्पमूल्य एवं नवीनतम अनुसंधानों से परिपूर्ण है, विशेपत: इसमें पाश्चात्य मतों के साथ भारतीय मतों को अधिक प्रश्रय दिया गया है। क्योंकि लेखक का दृढ़ मत है कि भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में भारतीय ग्रन्थों के प्रमाण ही अधिक मान्य हैं, वाह्य प्रमाणों का अधिक मूल्य नहीं है, इस सम्बन्ध में लेखक ने पं० रघुनन्दन शर्मा, पं० भगवद्दत्त, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, श्री चिन्तामणि वैद्य इत्यादि के इतिहास ग्रन्थों से विशेष सहायता ली है अत: लेखक उनका कृतज्ञ है।

यह पुस्तक चार प्रकार के पाठकों के उपयोग को ध्यान में रखकर लिखी गई है—'अनुसंधित्सुओं के सन्दर्भ ग्रन्थ' स्नातक एवं स्नातकोत्तर, छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तक (सहायक पुस्तक) विशेपत: वैदिक प्रश्नपत्र हेतु, सामान्य पाठकों की जिज्ञासा-शान्ति हेतु एवं विद्वानों के लिए विचारणीय सामग्री है। विशेषत: छात्र (एम०ए०, बी०ए०, आचार्य, शास्त्री आदि) इसमें अधिक लाभान्वित होंगे। इस पुस्तक में सरल भापा में विषय का सारगर्भित प्रतिपादन है, न तो अधिक विस्तार है और न कोई आवश्यक शीर्षक छोड़ा गया है। वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक अध्येता और विद्यार्थी इसे पढ़कर सम्पूर्ण वैदिक साहित्य से परिचित हो सकेंगे।

पुस्तक दश अध्यायों में विभक्त है, विषयों एवं शीर्षकों का ज्ञान इसकी अनुक्रमणिका से प्राप्त किया जा सकता है, इसको यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है परन्तु पुस्तक की कुछ सामान्य विशेषताओं का संकेत करना आवश्यक है। यथा प्रथम अध्याय में वेद के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या, व्यास परम्परा के आधार पर भारतीय ऐतिह्य का निर्धारण वेदों के कर्त्ता ऋषि हैं यह प्रतिपादन, श्रुतिप्रणाशकथन, उल्लेखनीय विषय है। निर्देशन के रूप में सूक्तो, ग्रन्थों, ब्राह्मण प्रवचनों एवं उपनिषद् वाक्यों के महत्वपूर्ण उद्धरण और उनका सरल हिन्दी अनुवाद दिया गया है, जिससे विषयबोध सुगम हुआ है, यह सब छात्रों के लिए तो परमोपयोगी है ही, अध्यात्मचिन्तकों एवं वैदिक साहित्य के जिज्ञासुओं के लिये ज्ञानवर्धक एवं लाभप्रद है। फिर भी मैं पुस्तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के गुणावगुणों का निर्धारण पाठकों एवं विद्वानों के ऊपर छोड़ता हूं, वे ही अन्तिम निर्णायक हैं।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों का कृतज्ञ हूं जिनकी कृतियों से मैंने लाभ उठाया है। साथ ही मैं राजेन्द्रनाथ शर्मा लेक्चरार, हिन्दू कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) का उनके दो शब्द लिखने के लिए आभारी हूं तथा प्रकाशक महोदय ने जिस उदारता से पुस्तक को प्रकाशित किया उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

कुँवरलाल जैन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय सूची

प्रथम अध्याय— (विषयनुक्रमणी पृ०1-23

वेदश्रुति (1) श्रुति परम्परा और वेद संख्या, (4), वेदश्रुतिप्रणाश (5); वेदों की प्राचीनता (7); विशालता (7); वेदों के कर्त्ता (8) वेद निर्माण काल और विभिन्न मत (11); भारतीय ऐतिहासिक तिथियाँ और व्यास परम्परा (21)।

द्वितीय अध्याय— (ऋग्वेद) पृ० 24-65

पूर्वव्यास (24) कृष्णद्वैपायन पाराशर्यव्यास का चरण प्रवर्तनकाल (24); ऋग्वेद की शाखायें (32); शालीय या शालीय शाखायें (34); वाष्कल शाखायें (35) जातुकर्ण्य शाखा (35); आश्वलायन शाखायें (36); शांखायन शाखायें (36); शाम्वव्य शाखा (37); माण्डूकेय शाखायें (37), शाकपूणि शाखायें (38), ऋग्वेद का आकार प्रकार (38), ऋक्संख्या (39), ऋग्वेद के प्रधान ऋषि (40), ऋग्वेद के देवता (45)।

तृतीय अध्याय— (ऋग्वेद के कुछ महत्वपूर्ण सूक्त और मन्त्र)

पृ० 65-86

अग्निसूक्त (65), इन्द्रसूक्त (66), वरुणसूक्त (69), सूर्यसूक्त (70), उषासूक्त (71), आप (72), यमयमीसूक्त (72), पुरूरवा उर्वशी संवाद (73), सरमापणि संवाद (74), पर्जन्यसूक्त (75), दानसूक्त (76), अक्ष-सूक्त (77), विवाहसूक्त (77), पुरुषसूक्त (78) हिरण्यगर्भसूक्त (81), संज्ञानसूक्त (83) सरस्वती, वाक् (83), अतिस्तुति (84)।

चतुर्थ अध्याय (ऋग्वेद में वर्णित सभ्यता और संस्कृति) 86-96

भौगोलिक विवरण (86), वर्णाश्रम धर्म (88) राजनैतिक व्यवस्था (91), भोजनादि (92), कृषि और पशुपालन, ज्ञानविज्ञान और कला 93।

पञ्चम अध्याय— (यजुर्वेद) पृ० 96-112

यजुर्वेद के दो भेद (97), वाजसनेय चरण का मूल (101), कृष्णयजुर्वेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
की संहितायें (चरकाचार्य वैशम्पायन) (103), शुक्लयजुर्वेद (वाजसनेय याज्ञवल्क्य) (106), यजुर्वेद के अनमोल वचनामृत (109)।

षष्ठ अध्याय— (सामवेद) पृ० 113-118

महत्त्व (113), सामशाखा प्रवर्तक जैमिनि ऋषि (114) शाखायें (116) सामों का नामकरण और पद्धति (117)।

सप्तम अध्याय (अथर्ववेद) पृ० 119-132

प्राचीनता (119), अथर्ववेद की शाखायें (121), पैप्पलाद शाखा (122) शौनक संहिता (123) अथर्ववेद के प्रधान ऋषि (124) अथर्ववेद का विषय-विस्तार (125) कुन्तापसूक्त (126), अथर्ववेद के कुछ मन्त्र (127)।

अष्टम अध्याय (ब्राह्मण-आरण्यक) पृ० 132-158

ब्राह्मण का लक्षण (133) प्राचीनता और रचनाकाल (135), ऋग्वेद के ब्राह्मण—ऐतरेय ब्राह्मण (136), कौषीतकी (137), शांखायनब्राह्मण (138) शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मण-माध्यंदिन और काण्व शतपथ (138), तैत्तिरीयब्राह्मण (140) सामवेद के ब्राह्मण (141), अथर्ववेद का ब्राह्मण—गोपथ ब्राह्मण (143) ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल और समकालीन व्यक्ति (144), ब्राह्मण ग्रन्थों के महत्त्वपूर्ण कुछ उद्धरण (145), ब्राह्मण ग्रन्थों के कुछ विषय (149) आरण्यक ग्रन्थ ऐतरेयारण्यक (153), शांखायनारण्यक (154), बृहदारण्यक (155), तैत्तिरीयारण्यक (155), मैत्रायणीयारण्यक या मैत्र्युपनिषद् (156), जैमिनीयोपनिषद् या तवल्कारारण्यक (156), आरण्यकों का रचनाकाल (156), आरण्यकों के कुछ उद्धरण (157) है।

नवम अध्याय (उपनिषद्—साहित्य) पृ० 159-175

प्रचार महत्व और प्रसिद्धि (159), संख्या (159), उपनिषद पद का अर्थ (160), रचनाकाल (161), प्राचीनता (162), ऋग्वेदीय उपनिषद्—ऐतरेयोपनिषद् (162) कौषीतक्युपनिषद् (163) ईशावास्योपनिषद् (163) बृहदारण्यकोपनिषद् (163), तैत्तिरीयोपनिषद् (164), कठोपनिषद् (164),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैत्रायणी-उपनिषद् (165) श्वेताश्वतरोपनिषद् (165) छान्दोग्योपनिषद् (165), केनोपनिषद् (166), प्रश्नोपनिषद् (167), मुण्डकोपनिषद् (167) उपनिषदों का ज्ञान (168), ईशावास्योपनिषद् (आत्मज्ञान) (172)।

दशम अध्याय—(वेदाङ्ग साहित्य और परिशिष्ट)—पृ० 175-220 प्राचीनता (175), शिक्षा (176), प्रातिशाख्य (179), कल्पसूत्र (182), सूत्रकारों का समय (183), सूत्रकारों का ऐतिहासिक क्रम (185), श्रौतसूत्र (187), आश्वलायन श्रौतसूत्र (188), शांखायन श्रौतसूत्र (188), कात्यायन श्रौतसूत्र (189), भारद्वाज श्रौतसूत्र (190), आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (191), वाराह श्रौतसूत्र (192), सत्याषाढ़ श्रौत (192), मानव श्रौतसूत्र (192), बौधायन श्रौतसूत्र, वैखानस श्रौतसूत्र (193), गृह्यसूत्र (194), गृह्यसूत्रों के सामान्य विषय (196), धर्मसूत्र (196), शुल्वसूत्र (199), व्याकरण शास्त्र (200), वेद में व्याकरण का प्रयोजन (203), निरुक्त (204), छन्दशास्त्र (210), ज्योतिष (213), परिशिष्ट साहित्य (215), बृहद्देवता (216), शुक्लयजुर्वेद के परिशिष्ट (219), सामवेद के परिशिष्ट (219), अथर्ववेद के परिशिष्ट (220)।

संक्षिप्त संकेत

अथर्ववेद	अ०	मुण्डकोपनिषद्	मु० उ०
अष्टाध्यायी	अष्टा०	मैत्रायणीसंहिता	मै. सं.
आदिपर्व	आदि.	शान्तिपर्व	शा.
आपस्तम्बश्रौतसूत्र	आप. श्रौ.	शतपथब्राह्मण	श. ब्रा.
आश्वलायनगृह्यसूत्र	आश्व. गृ.	सनत्सुजातीयपर्व	सनत्सु.
उद्योगपर्व	उ. प.	श्वेताश्वतरोपनिषद्	श्वेता.
ऐतरेयब्राह्मण	ऐ. ब्रा.	षड्विंशब्राह्मण	सा. ब्रा.
ऋग्वेद	ऋ०	सामविधानब्राह्मण	सा. ब्रा.
कौशिकगृह्यसूत्र	कौ. गृ.	हरिवंशपुराण	हरि. पु.
गोपथब्राह्मण	गो. ब्रा.	छान्दोग्योपनिषद्	छा. उ.
गीता	गी.	जैमिनीयब्राह्मण	जै. ब्रा.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तैत्तिरीयारण्यक	तै. आ.
तैत्तिरीय संहिता	तै. सं.
तैत्तिरीय ब्राह्मण	तै. ब्रा.
निरुक्त	नि०
न्यायभाष्य	न्या. भा.
बृहद्देवता	बृहद्दे०
बृहदारण्यकोपनिषद्	बृ. उ.
बौधायनगृह्यसूत्र	बौ. गृ.
भारतीयसाहित्य	भा. सा.
भारतवर्ष का बृहद् इतिहास	भा. बृ. इ.
भीष्मपर्व	भी०
महाभारत	म०
महाभाष्य	म० भा०
मनुस्मृति	म० स्मृ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक साहित्य का इतिहास

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

देवीं वाचयजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टतैतु ॥

"श्रुतं मे गोपाय"

[विषय प्रवेश]

वेदश्रुति—'श्रूयते इति श्रुतिः' अर्थात् गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार जो ज्ञान सुना जाता है, उसे श्रुति कहते हैं। वेद की श्रुति संज्ञा भी इसी कारण से जगत में प्रसिद्ध हुई, इसी प्रकार जनश्रुति इत्यादि संज्ञायें अन्य अर्थों में लोक में प्रसिद्ध हुईं। वेद शब्द ज्ञान, विज्ञान या विद्या का बोधक है। अति पुरातन काल में 'वेद' शब्द भी मन्त्र संहिताओं तक सीमित नहीं था, यथा आयुर्वेद' गान्धर्व वेद आदि संज्ञायें अब तक प्रचलित हैं, शतपथब्राह्मणादि में असुरवेद सर्पवेद आदि शास्त्रों का उल्लेख मिलता है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में 'श्रुति' और 'वेद' शब्द केवल मन्त्रसंहिताओं तक ही सीमित नहीं थे, परन्तु इस समय भी निश्चय ये शब्द मन्त्र संहिताओं तक ही सीमित हैं। वैदिक साहित्य का इतिहास लिखने से पूर्व हम संक्षेप में वेद के पर्यायवाची और वेद परम्परा का उल्लेख करते हैं।

वेद के अनेक पर्यायवाची पद शास्त्रों में मिलते हैं, यथा, श्रुति, ब्रह्म, मन्त्र, निगम, आम्नाय इत्यादि। इनमें 'वेद' शब्द ही लोक और साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध है, इसके पश्चात् 'वेद' के अर्थ में 'श्रुति' का प्रचलन है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'श्रुति' शब्द की विद्वानों ने बहुत ऊहापोह की है। यह पहले ही संकेत किया जा चुका है कि गुरु-शिष्य परम्परा से जो ज्ञान ग्रहण किया जाता था, वह 'श्रुति' कहलाया। इस श्रुति शब्द के आधार पर बहुत से पाश्चात्य और तदनुयायी भारतीय विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि प्राचीन भारतवर्ष में लिखने की कला (लिपि) का अभाव था। लेकिन यह अनुमान प्रामाणिक एवं इतिहास विरुद्ध है। जैन शास्त्रों में लिखा मिलता है कि ऋषभ भरतादि ने 64 लिपियों को सीखा था, जिसमें ब्राह्मीलिपि प्रमुख थी। स्वयं ऋग्वेद में अष्टकर्ण गायों का उल्लेख मिलता है। म. म. गौरीशंकर ओझा आदि इतिहासज्ञों के अनुसार अष्टकर्ण का अर्थ यही हो सकता है कि जिसके कान पर आठ का अङ्क लिखा हो। ऋग्वेद के पूषादिसूक्तों में 'रिख' या 'लिख' धातु मिलती है, निम्नलिखित मन्त्र से अनेक विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि ऋषिगण लिखित वाणी को देखते थे—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः
शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ॥ (ऋ० 10/71/4)

अमूर्ता वाक् लिखने से ही दृष्टिगोचर होती है, यही इस ऋचा का आशय प्रतीत होता है। अतः 'श्रुति' शब्द के आधार पर जो विद्वान् प्राचीन भारत में लेखनकला का अभाव बताते हैं वे गलती पर हैं।

चरण और शाखाओं का मूल वेद 'आम्नाय' कहा जाता था। महाभारत में श्रीव्यास ने कहा है कि 'आम्नाय' से वेद (शाखाओं) का चारों तरफ प्रसार हुआ,[1]" "मैं आर्ष (ऋषिकृत) 'आम्नाय' को देखता हूँ, जिसमें वेद प्रतिष्ठित है[2]"—

ऋषि द्वारा देवस्तुतियां 'ब्रह्म' या 'ब्रह्माणि' कही गई हैं, वेद की एक संज्ञा 'ब्रह्म' भी बहुत प्रसिद्ध हुई, इसी 'ब्रह्म' (वेद) के व्याख्यान ग्रन्थ

---

(1) आम्नायेभ्यः पुनर्वेदाः प्रसृताः सर्वतोमुखाः।"
(म० शा० अ० 266)

(2) "आम्नायमार्षं पश्यामि यस्मिन् वेदाः प्रतिष्ठिताः।"
(म० शा० अ० 274)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'ब्राह्मण'[1] कहलाये। इस विषय की विस्तृत विवेचना 'ब्राह्मण-प्रकरण' में की जायेगी। एक मतानुसार कश्यप आदि 21 प्रजापतियों द्वारा वेद का निर्माण हुआ प्रजापति को ब्रह्म या ब्रह्मा कहा जाता था, इसलिए 'ब्रह्म' की रचना भी 'ब्रह्म' (वेद) कहलाई। तैत्तिरीय आरण्यक में लिखा है कि "तपस्या करने वाले अजपृश्णि ऋषियों के पास 'ब्रह्म' (वेद) स्वयं उपस्थित हो गया।"[2]

इसी प्रकार 'मनन' करने से वेद की 'मन्त्र' संज्ञा प्रसिद्ध हुई। निगमन से 'निगम' तथा 'छादन' से 'छन्द' संज्ञायें कहलाईं, ये इन शब्दों की नैरुक्तिक व्युत्पत्तियाँ हैं। पतञ्जलि के मत में 'छन्द' बनाये नहीं जाते, छन्द (मन्त्र) नित्य हैं (न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते, नित्यानि च्छंन्दांसि इति/यद्यप्यर्थो नित्यो वा त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या, तद्भेदाच्चैवं तद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति) (महा० 4/2/104) इन मन्त्रों का अर्थ अथवा वर्णानुपूर्वी नित्य होती है। वर्णानुपूर्वी के अन्तर से ही उसकी काठक, कालापक, मौदक या पैप्पलाद शाखायें प्रसिद्ध हुईं। पुराण के मत में भी प्राजापत्य श्रुति नित्य है। शाखायें उसके विकल्प हैं।

"प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः।" (वायुपुराण 61/75)

और 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'करण' व अधिकरण कारकों में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बना है। पाणिनि धातुपाठ में 'विद्' धातु चार अर्थों में समुपलभ्यमान है, यथा 'विद्' 'ज्ञानेसत्तायांश्च' 'विदलृ लाभे'; 'विद्' 'विचारणे च', इन धातुओं से 'हलश्चेति' सूत्र से करण एवं अधिकरण में 'घञ्' करने से 'वेद' शब्द निष्पन्न हुआ।[3] आचार्यों के मत में विद्वान् वेद से ही परमात्मा,

---

(1) "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्"। (आप० श्रौत० अ० 24) सूत्रकारों की दृष्टि में मन्त्र और तद्व्याख्यान ब्राह्मण-दोनों की संज्ञायें 'वेद' थी।

(2) "अजान् ह वै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्।" (तै० आ० 2/9)

(3) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में लिखा है—"विन्दति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषुवा तथा विद्वांश्च भवन्ति ते वेदाः।"। (पृ० 25)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा और संसार का स्वरूप जानता है ।[1]

श्रुति-परम्परा और वेद संख्या—प्राचीनकाल से ही यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि वेदों की संख्या क्या है, कोई एक वेद, कोई दो, कोई तीन, कोई चार और कोई पाँच वेद मानते थे । पुराणों में प्रायः यह मत मिलता है, कि द्वापरादि में एक ही वेद के चार विभाग किये जाते हैं, यह विभाजन व्यासों द्वारा किया जाता है, पुराणों के अनुसार स्वयम्भू से कृष्णद्वैपायन पर्यन्त 28 व्यास हो चुके हैं जिन्होंने विभिन्न युगों में वेदों का विभाजन या उपबृंहण किया—

'वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिपु' (मत्स्यपुराण 144/11)

और भी—

'एको वेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरादिषु ।'

(विष्णुपुराण 1/3/19-20)

महाभारत के सनत्सुजातपर्व में परमर्षि सनत्सुजात धृतराष्ट्र को बतलाते हैं कि एक ही वेद के कालान्तर में पाँच वेद बन गये—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, पञ्चमवेद 'इतिहासपुराणवेद' ।[2]—वेदत्रयी और वेदचतुष्टय प्रसिद्ध हैं ।[3] प्राचीनकाल में द्विवेदी (ऋग्वेद और यजुर्वेद) तथा एकवेदी भी प्रसिद्ध थे ।

---

(1) नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति तस्मादाहुर्वेदा इति पिप्पालद श्रुतिः (आनन्दतीर्थः विष्णुतत्व में) । तथा तैत्तिरीय-श्रुति में—वेदेन वैदेवा असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त तद्वेदस्य वेदत्वम्' (तै० सं० 1/4/20) ।

(2) आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कत्थ्यते जनः । तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्चापरे । द्विवेदाश्चैकवेदाश्चानृचश्च तथापरे । (सनत्सु० 2/36)
एकवेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते वहवोऽभवन् । (वही, श्लोक 5/37)

(3) 'त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि ।' (श० ब्रा० 4/6/7।1
ऋचो यजूंषि सामानि ब्राह्मणो भ्रङ्गानि च श्रुति : ।"
(ब्रह्माण्डपुराण 1/32/36)
वेदचतुष्टयी—'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः,' (कठब्राह्मण)
"आथर्वणो वै ब्रह्मणः समानः... चत्वारो हीमे वेदाः", काठकब्राह्मण)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी दयानन्द सरस्वती के मत में चारों वेद सनातन हैं। उनमें पौर्वापर्य का अन्तर नहीं हैं। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखा है— 'जो कोई यह कहते है कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठा किया, यह बात झूठी है। क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा ने चारों वेद पढ़े थे।" स्वामी दयानन्द का यह मत आंशिक रूप से ही सत्य है। वसिष्ठादि ने निश्चय ही चारों वेद पढ़े थे, लेकिन उन वेदों का ठीक यही रूप था जो वर्तमान में हैं यह ठीक नहीं है। 28 व्यासों ने विभिन्न युगों में वेदों का सम्पादन और विभाजन किया, इस ऐतिहासिक तथ्य का अपलाप किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता। वेदसंहिताओं का वर्तमान स्वरूप तो कृष्ण द्वैपायन व्यास और उनके शिष्यों द्वारा ही किया गया है, यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है। पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी और पं. आद्यादत्त ठाकुर के मत में आदि ब्रह्मा ने चतुर्खण्डात्मक एक ही वेद की आदिकाल में रचना की थी। कालान्तर में यह मूल वेद लुप्त हो गया। तदनन्तर अजपृश्णि, वालखिल्य, सप्तर्षि (कश्यपादि), कृष्ण-द्वैपायनादि ने अपने-अपने मन्त्रों की तपोबल से रचना की। शतपथब्राह्मण में श्रुति-सागरखनन को इस प्रकार कहा है।—

ये समुद्रान्निरखनन् देवास्तीक्ष्णभिरभ्रिभिः।
सुदेवो अद्य तद् विद्यात् यत्र निर्वपणं दधुः ॥[1]

वेदश्रुतिप्रणाश कथा—इतिहास पुराणों में बहुधा उल्लेख मिलता है कि अनेक बार वेदों का लोप हो गया। यहाँ पर श्रुतिप्रणाश के दो तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे। वर्तमान सृष्टि से पूर्व मधुकैटभ असुर ब्रह्मा जी से वेदों को चुराकर रसातल में छिप गये, तब ब्रह्मा की पुकार पर विष्णु ने मधुकैटभ को मारकर वेदों का उद्धार किया।[2] हरिवंशपुराण के अनुसार एक बार त्रेतायुग में अत्रिवंशीय दत्तात्रेय ने वेदों का उद्धार किया। उस युग में वेदों के विधि

---

(1) श० ब्रा० (7/5/2)

(2) यदा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः। सवेदा : सश्रुतिकाश्च कृता : पूर्वं कृते युगे। (शा० 348/56)। एतस्मिन्नन्तरे राजन् देवो हयशिरोधरः। जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान् हरिः।
(शा० पृ० 357)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधानों और यज्ञ क्रियाओं के लुप्त हो जाने पर दत्तात्रेय ने पुनः उनकी स्थापना की—

दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः।
तेन नष्टेपु वेदेपु प्रक्रियासु मखेषु च ॥
सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता तेन वै ॥ (हरि० पु० 1/41)

वेदों के उद्धार के सम्बन्ध में इतिहास पुराणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम अपान्तरतमा सारस्वत का है ये दधीचि और सरस्वती के पुत्र थे। पण्डित भगवद्दत्त जी अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग (पृष्ठ 161) में सारस्वत और अपान्तरतमा के ऐक्य को नहीं जान पाये। इसलिए उन्होंने यह भ्रामक लेख लिखा-"इन २८ वेद प्रवचनों में अपान्तरतमा का नाम कहीं दिखाई नहीं देता। निश्चय ही वह वैवस्वत मनु से पूर्व स्वायम्भु व अन्तर में वेद प्रवचन कर चुका था।" यह भ्रामक मत है। व्यास परम्परा में सारस्वत नवम व्यास था। यह स्वयं पं. भगवद्दत्त जी ने भी लिखा है—"सारस्वत नवम परिवर्त का व्यास था।"[1] इसी सारस्वत को महाभारत, शान्ति पर्व (अ० 359) में वाक्सम्भव[2] अपान्तरतमा अर्थात् सरस्वती का पुत्र कहा है। उस भूतभविष्यज्ञ सत्यवादी अपान्तरतमा से ब्रह्माजी ने वेदव्याख्यान करने को कहा। ब्रह्मा जी की आज्ञा से उसने स्वायम्भुव मन्वन्तर में वेदों का विभाजन किया। उसी को वेदाचार्य और प्राचीन गर्भ ऋषि कहते हैं। इसी घटना का महाभारत शल्यपर्व अ. 52 में अन्य प्रकार से उल्लेख है। उसके अनुसार देवयुग में भयंकर अनावृष्टि[3] और दुर्भिक्ष से समस्त ऋषिमुनि इधर उधर बिखर गये। और वेदों को भूल गये यह घटना वृत्र-इन्द्र महासंग्राम के पश्चात् की है। इस घोर अकाल में

---

(1) वै० वा० इ० (पृ 162), (2) "अपान्तरतमा नामसुतो वाक्संभवः प्रभोः भूतभव्यभविष्यज्ञः सत्यवादी दृढ़व्रतः। वेदाख्याने श्रुति कार्या त्वया मतिमतांवरः। तेन भिन्नास्तदा वेदा मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे। अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः सः उच्यते। प्राचीनगर्भं तमृपि प्रवदन्तीह: केचन। (शा० प० 359/39,40,41, 66)

(3) अथकाले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयंकरे।
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी।" (शल्य० प० 51/136)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषिगण क्षुत्पिपासा से पीड़ित होकर इतस्ततः भाग गये। वे भूख-प्यास से वेदों को भूल गये। तब साठ सहस्र ऋषिमुनि सरस्वती नदी के तट पर सारस्वत ऋषि की शरण में गये। सारस्वत अपान्तरतमा यद्यपि युवक थे, परन्तु उन्होंने बूढ़े ऋषियों को वेद पढ़ाया। मनुस्मृति में इन्हीं को शिशुरांगिरस कहा है—

अध्यापयामास पितृञ्शिशुरांगिरस कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥[1] (म. स्मृ. अ, 2)

इनकी साम शैशव साम कहलाती है। अपान्तरतमा सारस्वत द्वारा वेदोद्धार की इसी ऐतिहासिक घटना का महाकवि अश्वघोष ने एकाधिक वार उल्लेख किया है।[2] इसी घटना का शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्रभाष्य (3/3/32) और अहिर्बुध्न्यसंहिता (अध्या० 11) में उल्लेख है।

अतः वेद का वर्तमान रूप सनातन नहीं है, वह सदा परिवर्तनशील रहा है, यह श्रुतिप्रणाश कथाओं से स्पष्ट होता है।

वेदों की प्राचीनता—वेदवाङ्मय संसार का प्राचीनतम साहित्य है, इस सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय सभी विद्वान एकमत हैं। श्रुतिप्रणाश की कथाओं, वेदव्यास परम्परा आदि से भी इस साहित्य की प्राचीनता सुस्पष्ट होती है। परन्तु वेदों के मन्त्र कितने प्राचीन हैं, इसमें विद्वानों में गहन मतभेद हैं। इन मतभेदों का संक्षिप्त में परिचय देते हुए, भारतीय मत के अनुसार वेद व्यास परम्परा के आधार पर वेद निर्माणकाल का निर्धारण करने का प्रामाणिक प्रयत्न करेंगे।

वैदिक साहित्य की विशालता—वैदिक साहित्य का इतिहास जानने से पूर्व इसकी विशालता को भी जानना चाहिए। वैदिक साहित्य में मन्त्रसंहिताएं ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र (श्रौत, गृह्य, धर्मसूत्र पितृसूत्र, शुल्व-

---

(1) तथा द्रष्टव्य—'शिशुर्वा आंङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्', (ताण्ड्य-ब्राह्मण)

(2) सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यं ददृशुर्न पूर्वे (बु० च० 1/47)
तथाङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे।
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्य वेदस्य पुनः प्रवक्ता (सौन्दरानन्दक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूत्र) वेदांग (कल्प, शिक्षा व्याकरण, ज्योतिष निरुक्त और छन्द) और इनके परिशिष्ट ग्रन्थ तथा टीका भाष्यादि को सम्मिलित करके इन ग्रन्थों की संख्या सैंकड़ों ही नहीं सहस्रों है, अतः विशालता की दृष्टि से वैदिक वाङ्मय अनुपम और अनुदाहरणीय है। वैदिक साहित्य का प्राचीनतम और मूल भाग मन्त्र-संहितायें हैं; चारों वेदों—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की 1131 शाखायें या संहितायें थीं, इनमें ऋग्वेद की 21 संहितायें, यजुर्वेद की 101, सामवेद 1000 और अथर्ववेद की 9 संहितायें थीं। इस समय इन वेदों की थोड़ी सी संहितायें मिलती हैं, जिनका इस इतिहास में आगे परिचय लिखा जायेगा।

मन्त्रद्रष्टा ऋषि (वेदो के कर्त्ता)—वेदमन्त्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कम से कम चालीस मत प्रचलित हैं, उनमें से चार मत प्रधान हैं—प्रथम, मीमांसकों के मत में वेद स्वतः प्रमाण और स्वयं आविर्भूत हैं, अतः आपौरुषेय है अर्थात् इनका रचयिता न कोई देवता है न कोई पुरुष, वे स्वयंभु (स्वयंनिर्मित) हैं। इस मीमांसक मत के अनुसार—

"प्रत्यक्षेणानुमत्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विन्दन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

"जो उपाय प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा नहीं जाना जा सकता उसको वेद के द्वारा विद्वज्जन जानते हैं। यही वेद की वेदता है।' इस मत में मन्त्रों और ब्राह्मणों में किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का वर्णन नहीं है। उनके विचार में संसार प्रवाह नित्य और सनातन हैं —

'न कदाचिदनीदृशं जगत्।'

वेदों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में द्वितीय मत नैयायिकों और वैशेषिक दार्शनिकों का है। इसके अनुसार वेद मन्त्रों की रचना स्वयं ईश्वर ने की, अपने मत की पुष्टि वे वेद मन्त्रों से करते हैं—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ (पुरुषसूक्त में)

"पुरुष के उस सर्वहुत यज्ञ से ऋक् साम, यजुः और छन्दों की उत्पत्ति हुई।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेद मन्त्रों की रचना के सम्बन्ध में वात्स्यायन मुनि का मत युक्तिपूर्ण एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी पुष्ट होता है—'द्रष्टा और प्रवक्ता के ऐक्य होने का अनुमान होता है। जो आप्त पुरुष वेदार्थों (मन्त्रों) के द्रष्टा थे, वे ही आयुर्वेदादि ग्रन्थों के प्रवक्ता थे।"[1] पुन: ये ही वात्स्यायनाचार्य लिखते हैं—"वास्तव में ब्राह्मण ग्रन्थों में इतिहास पुराण का प्रामाण्य उल्लिखित है—इन अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने इतिहासों और पुराणों का प्रवचन किया। इतिहास पुराण पाँचवा वेद है जो वेदों का भी वेद है।" द्रष्टा और प्रवक्ता के समान (एक) होने से सिद्ध होता है, जो मन्त्रों और ब्राह्मणों के द्रष्टा ऋषि थे, वे ही ऋषि वास्तव में इतिहास पुराणों और धर्मशास्त्र के रचयिता थे।"[2]

ऐतिहासिक प्रमाणों से भी वात्स्यायन के मत की पुष्टि होती है। पण्डित भगवद्दत्त ने 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग' (पृष्ठ 78) पर इस विषय में लिखा है अब हम एक संक्षिप्त सूची देते हैं, जिससे पता लगेगा कि मन्त्रों के द्रष्टा और ब्राह्मणों आदि ग्रन्थों के प्रवक्ता ऋषियों ने ही लोकभाषा में अनेक ग्रन्थ रचे थे। यह सत्य है कि यह लोकभाषा पाणिनि के प्रभाव से पूर्वकाल की और ब्राह्मण ग्रन्थों की प्रवचन शैली से भिन्न, पर ब्राह्मणों के पद-प्रयोगों से मिलती-जुलती एक विस्तृत भाषा थी।

(1)	भार्गव उशना, कवि, आथर्वण मन्त्रों का द्रष्टा। जन्द अवेस्ता में इसके मन्त्र विकृत अथवा अपभ्रंश रूप में मिलते हैं।	अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि का रचयिता।

---

(1) द्रष्टृप्रवक्तृ सामान्याच्चानुपपत्तिः। य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनाम्।"

(न्यायभाष्य 2/1/69)

(2) प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते, ते वा खल्वेते अथर्वाऽऽङ्गिरस एतदितिहास पुराणमभ्यवदन्—इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः। द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः य एव मन्त्र ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।" (न्या० भा० पृ० 283)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2) आङ्गिरस बृहस्पति, मन्त्रद्रष्टा।	व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रादि का रचयिता।
(3) बार्हस्पत्य भरद्वाज, मन्त्रद्रष्टा।	व्याकरण और आयुर्वेद का रचयिता।
(4) इन्द्र, मन्त्रद्रष्टा।	व्याकरण, अर्थशास्त्र आदि अनेक शास्त्रकर्त्ता।
(5) पाराशर मन्त्रद्रष्टा।	आयुर्वेद और कृपितन्त्र आदि का कर्त्ता।
(6) अग्निवेश, कल्पकार।	आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि का कर्त्ता।
(7) जातूकर्ण्य, वेदसंहिता ब्राह्मण और कल्पसूत्र का प्रवचनकर्त्ता।	आयुर्वेद की संहिता का रचयिता।
(8) कृष्णद्वैपायन व्यास, सब वेद-संहिताओं और ब्राह्मणों आदि का प्रवचनकर्त्ता।	महाभारत, पुराणसंहिता और धर्म-शास्त्रादि का लेखक।
(9) सुमन्तु।	धर्मसूत्र का रचयिता।
(10) तित्तिरि, कृष्णयजुर्वेदीय वेद-संहिता और ब्राह्मण आदि का प्रवचनकर्त्ता।	अनुक्रमणी, प्रातिशाख्य और श्लोकों का कर्त्ता।
(11) चरक वैशम्पायन, वेदसंहिता, ब्राह्मण और कल्प आदि का प्रवक्ता।	आयुर्वेद तथा महाभारत का संस्कर्त्ता।
(12) जैमनि, सामसंहिता, ब्राह्मण और कल्प का प्रवचनकर्त्ता।	मीमांसा-सूत्रों का रचयिता।
(13) वार्षगण्य, सामशाखाप्रवक्ता।	सांख्यकार।
(14) शौनक छन्दों का प्रवक्ता।	बृहद्देवता, प्रातिशाख्य आदि का कर्त्ता।
(15) बौधायन, कल्पसूत्रकर्त्ता।	वेदान्त वृत्ति और श्लोकों का रचयिता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सूची दिग्दर्शनमात्र है। इस सूची से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि योरुपीय लेखकों ने इस सूक्ष्म मर्म को नहीं समझा कि ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) लोग ही इतिहास और पुराण के भी निर्माता थे। (भा. बृ. इ. प्र. भाग पृ० 78)। वेदमन्त्रों में ही यह स्वीकार किया गया है कि ऋषिगण ही पुरातन और नवीन मन्त्रों के रचयिता थे—

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।" (ऋ० 1/1/2)

"यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणो अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण।

तां देवीं वाचं हविषा यजामहे।" (तै. ब्रा. 2/7/7)।

इसी तथ्य की महर्षि यास्क ने पुष्टि की है कि "ऋषि लोग धर्म का साक्षात् करने वाले थे। उन्होंने असाक्षातकृत धर्मा शिष्यों को मन्त्र दिये। इस आम्नायोपदेश से दुःखी अवरों ने वेद ग्रहण करने के लिये निरुक्तशास्त्र, वेद और वेदाङ्गों का समाम्नाय (लेखन) किया।"[1]

वेदमन्त्रों की रचना के सम्बन्ध में चौथा प्रसिद्ध मत नास्तिकों का है, जिसका वर्णन सायणाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में किया है। इस मत के अनुसार वेदमन्त्रों के रचयिता भंड धूर्त , निशाचर थे; जिन्होंने अपनी उदरपूर्ति के लिये मन्त्रों की रचना की। इस मत की निस्सारता स्पष्ट है, अतः इस पर अधिक विचार नहीं करते। इसी से मिलता जुलता पाश्चात्य लेखक ओल्डनवर्ग का मत है जिसके अनुसार वर्बर और घुमक्कड़ (यायावर) आर्यों के ग्राम्यगीत ही वेदमन्त्र हैं।

वेद निर्माण काल और विभिन्न मत—वेदमन्त्रों के रचनाकाल के सम्बन्ध मे अत्यधिक मतभेद हैं। इतने अधिक मतभेद शायद ही अन्य किसी ग्रन्थ या साहित्य के रचनाकाल के सम्बन्ध में हों। प्राचीन भारतीय विद्वान् (मीमांसक) तो वेदों को अनादि और अपौरुषेय मानते थे, और उनके अनुयायी अब भी

---

(1) "साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नाषिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।" (नि० 1/1)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतवर्ष में हैं, जो ऐसा ही मानते हैं, मीमांसक मत में वेदों का न कोई रचयिता है, न कोई समय। लेकिन कुछ धार्मिक पण्डितों को छोड़कर इस मत को कोई भी शिक्षित व्यक्ति नहीं मानता। जो दार्शनिक (नैयायिकादि) वेदों को ईश्वरकृत मानते हैं, उनके मत में सृष्टि के आदि में ईश्वर की निःश्वास से वेद उत्पन्न हुये।[1] सृष्टि की आयु के साथ वेदों का प्रादुर्भाव काल भी उनकी दृष्टि में दो अरब वर्ष पूर्व के लगभग पुरातन हैं। एक मत से ब्रह्मा के चार मुखों से चारों वेदों की रचना हुई।[2] ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा[3] को वेदों का सर्व प्रथम उपदेश दिया। मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने अग्नि, सूर्य और वायु से ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद का दोहन किया। चतुर्थवेद—अथर्ववेद का सम्बन्ध—आपों (जलों) से है। त्रयी विद्या में इसको सम्मिलित नहीं किया जाता। इसके मूल प्रवक्ता अथर्वा ऋषि माने जाते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में अथर्वा का अनेकशः उल्लेख है। अतः प्राचीन भारतीय मत से चारों वेद समान रूप से प्राचीन हैं। इनमें पौर्वापर्य का सम्बन्ध नहीं है।

अब आगे भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत किये जाते हैं।

श्री पावगी, चुलैट, अविनाशचन्द्रदास, डा० सम्पूर्णानन्द आदि भारतीय विद्वानों के अनुसार वेदों का रचनाकाल लाखों वर्ष पूर्व है। वे अपने मत की पुष्टि में भूगर्भशास्त्र के प्रमाण देते हैं कि लाखों वर्ष पूर्व राजपूताना में समुद्र बहता था, जिसमें सरस्वती नदी गिरती थी। सप्तसिन्धु आदि का उल्लेख ऋग्वेद में बहुधा मिलता है। इसके आधार पर श्री अविनाशचन्द्रदास ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वैदिक इण्डिया' में ऋग्वेद के रचनाकाल पर विचार किया है। डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार ऋग्वेद बीस पच्चीस हजार वर्ष पुराना ग्रन्थ है।

तिलक का मत—भारतीय विद्वानों में श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

---

(1) अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ (महाभारत)

(2) योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वेता० 6/18)

(3) ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥
(मु० उ० 1/1/1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मत बहुत प्रसिद्ध है। वेदमन्त्रों में कहीं-कहीं छः महीने के दिन और छः महीने की रात्रि का संकेत मिलता है। इसके आधार पर तिलक के मतानुसार आर्य लोग ईसा से आठ दस सहस्र पूर्व उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रहते थे। उस प्रदेश का मौसम इतना ठंडा नहीं था, जितना अब है। ऋतु परिवर्तन के कारण आर्य लोग उत्तरीध्रुव से दक्षिण की ओर यूरोप, एशिया और भारतवर्ष में आये। श्री तिलक ने 'आर्कटिक होम इन दी (वेदाज्)' पुस्तक में इस विषय पर विचार किया है। उन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओरायन (मृगशीर्ष) में मन्त्र-रचना कालादि पर विचार किया है तदनुसार आर्य सभ्यता का प्रथम युग पूर्व मृगशीर्ष युग का 'अदिति युग' था। यह समय तिलक के अनुमान से 6000—4000 ई० पू० था। उस काल में उत्तम वैदिक सूक्त नहीं थे। केवल बिखरे हुये मन्त्र थे। द्वितीयकाल मृगशीर्ष-युग था। यह 4000 ई. पू. से 2500 ई. पू. तक था। इस काल में वेद के परिष्कृत और विस्तृत सूक्तों की रचना हुई। उनके मत में तृतीय कृत्ति-का युग था। यह समय 2500 ई०पू० से 1400 ई०पू० तक था। इस युग में ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और वेदाङ्गों की रचना हुई। श्री तिलक का मत प्रायः ज्योतिष गणना और अनुमान के आधार पर ही है। इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। इस मत में बहुत कम विद्वान् विश्वास करते हैं। श्री बालकृष्ण दीक्षित ने 'ज्योतिष शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में कृत्तिका नक्षत्र और बसन्त सम्पात का समय 3000 ई०पू० निश्चित किया, अतः ज्योतिष के आधार पर सभी विद्वान वेदों के रचनाकाल को नहीं मानते।

पाश्चात्य मत—अठारहवीं और उन्नींसवीं शताब्दी में जब पाश्चात्य विद्वानों का परिचय भारतीय साहित्य, विशेषतः वैदिक साहित्य से हुआ तो उनकी प्रवृत्ति प्रत्येक वैदिक ग्रंथ को प्राचीन काल का मानने की थी। विन्टर-नीत्स ने 'इण्डियन लिटरेचर' (भारतीय साहित्य) पुस्तक में यह मत स्वयं प्रकट किया था। "When indian literature become first known in the west they were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. they used to look upon India as somthing like cradle of mankind or atleast of human civilisation. (प्रारंभ में जब भारतीय वाङ्मय से पाश्चात्य विद्वानों का कुछ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ परिचय हुआ था, तो उनकी प्रथम प्रतिक्रिया 'प्राचीन आर्य वाङ्मय को बाबा आदम के युग से यथावत् सुरक्षित परम्परित ग्रहण करने की थी। श्लीगल ने क्या सचमुच, यह आशा प्रकट नहीं की थी कि इस वाङ्मय के प्रकाश में आने से प्राचीन विश्व के अन्धकारमय इतिहास में कुछ स्पष्टता आने लगेगी। वेबर ने भी अपने अपने इतिहास के प्रथम संस्करण (1852) में प्रकट किया था कि भारतीय वाङ्मय ही विश्व वांगमय का प्राचीनतम रूप है (प्राचीन भारतीय साहित्यं प्रथम भाग पृ० 225)

वेद निर्माण काल के सम्बन्ध में याकोवी श्रेडर मैक्समूलर कीथ, मैक-डानल, व्यूलर और विन्टरनीत्स के विभिन्न मत प्रसिद्ध हैं। जर्मन विद्वान् याकोवी का मत ज्योतिष के आधार पर है और श्री तिलक के मत से मिलता-जुलता है। याकोवी ने कृतिका उदय और वसन्त सम्पात के आधार पर वेद-मन्त्रों का रचनाकाल 4590 ई० पू० से माना और ब्राह्मण ग्रंथों का रचना काल 2500 ई० पू० के पश्चात माना।

श्रेडर नामक पाश्चात्य विद्वान वेदों का रचनाकाल 1500 ई० पू० से 2000 ई० पू० तक मानता था। प्रसिद्ध विद्वान् व्यूलर का भी यही मत था।

वैदिक साहित्य वेत्ताओं में मैक्समूलर का मत बहुत प्रसिद्ध हुआ, यद्यपि अब इस मत को कोई भी सुविचारज्ञ नहीं मानता। मैक्समूलर ने 'हिस्ट्री ऑफ एंशेन्ट संस्कृत लिटरेचर' में विस्तार से वैदिक साहित्य के रचना काल पर विचार किया। उसने वैदिक साहित्य को चार निम्न कालों में रचित माना—

1000 ई० पू० से 1200 ई० पू० तक छन्द काल।

800 ई० पू० से 1000 ई० पू० मन्त्र रचनाकाल।

600 ई० पू० से 800 ई० पू० ब्राह्मण काल।

600 ई० पू० से 200 ई० पू० सूत्रकाल।

वैदिक साहित्य की प्रत्येक विधा के लिए मैक्ससूलर ने अनुमान से 200 वर्ष निश्चित किये। यह उसने अपने कल्पित भाषा विकास मत और रचना शैली के आधार निश्चित किये। उदाहरणार्थ उसका अनुमान था कि अनुष्टुप् छन्द में रचना 500 ई० पू० में नहीं थी। यह इसका अनुमान मनगढ़न्त और इतिहास विरुद्ध था। इस विषय की विस्तृत विवेचना करने का यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान नहीं है, परन्तु इससे जाना जा सकता है कि उसके प्रमाण कितने लचर थे। स्वयं प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान विन्टरनीत्स ने मैक्समूलर के मत का खण्डन करते हुए लिखा—'और अन्त में जब सभी युक्तियाँ सभी साक्षियाँ व्यर्थ सिद्ध हो जातीं हैं। तब वेद की तिथि के सम्बन्ध में एक ही प्रमाण बच रहता है और वह प्रमाण है। भारतीय वाङ्मय की ऐतिहासिक परम्परा का स्वतोऽभ्युदय:- भारत के ऐतिहासिक पुराण पुरुष पार्श्व, महावीर, बुद्ध—सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय की सत्ता को अपने से पूर्व स्वीकार करते हैं; अर्थात् वैदिक वाङ्मय की किसी भी अंग को हम 500 ई० पू० से इधर (किसी भी हालात में) नहीं ला सकते और सुविधा के लिए यदि 1200 या 1500 ई० पू० को हम वैदिक वाङ्मय का प्रारंभ बिन्दु मान लें तो शेष साहित्य की विपुलता को हम 700 वर्षों की छोटी सी अवधि में फलता फूलता नहीं देख सकते। सो इस महान साहित्यिक युग का श्रीगणेश 2500 ई० पू० से 2000 ई० पू० में हुआ और अंत 750—500 ई० पू० में। ऐसा मानने से हम दोनों प्रकार की अतियों से बच सकते हैं। (प्राचीन भारतीय साहित्य, प्र० भाग 237 पृ० लाजपतराय का अनुवाद)। विन्टरनीत्स के उपर्युक्त लेख से एक बात और स्पष्ट हो जाती है कि पाश्चात्य लेखक इतिहास को किसी प्रमाण के आधार पर नहीं केवल अपनी मनमानी सुविधा के आधार पर लिखना चाहते थे। अतः कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक तिथियों का निर्णय नहीं हो सकता। 'इतिहास' अर्थ होता है ऐसा हुआ था। (इति+ह+आस)=इतिहास पद संस्कृत के तीन पदों से मिलकर बना है, इतिहास में निजी कल्पना का कोई स्थान नहीं है। और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साहित्य को मूलाधार बनाकर किसी देश का ऐतिहासिक युग विभाग नहीं होता, जैसा कि पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास का इस प्रकार विभाजन किया है, यथा, वैदिक युग, सूत्र युग, महाकाव्य काल—पौराणिक काल इत्यादि, यह युग-विभाजन सर्वथा काल्पनिक है। भारतीय प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों (जिनका यहाँ वर्णन करना अनुपयुक्त हैं) के अनुसार आदि काव्य रामायण की रचना शतपथ ब्राह्मण आदि (जिसका लेखक व्यास का प्रशिष्य याज्ञवल्क्य था) से सहस्रों वर्ष पूर्व हुई। व्यास परम्परा का वर्णन करते हुए यह बात आगे स्पष्ट होगी। यह बात वात्स्यायन मुनि के प्रमाण से पहिले ही लिखी जा चुकी है कि 'जिन ऋषियों ने वेदमन्त्रों का दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया, उन्हीं ने सूत्र, पुराण धर्मशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, इतिहास, आयुर्वेद, आदि आदि की रचना की। विषय व्यवस्थापन से ही यथा विषय शास्त्र की प्रामाणिकता होती है।[1] अतः इतिहास के लिए इतिहास पुराण ही प्रमाण है।[2] छान्दोग्योपनिषद् में इतिहास पुराण को वेदों का वेद कहा है (इतिहास पुराणं पंचमं वेदो वेदानां वेदः। (छा० उ० 7/1/2)। और कहा भी है कि अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मुझपर प्रहार करेगा, अतः इतिहास पुराण की सहायता से वेद का उपबृंहण (विस्तार) करना चाहिए।" 'जो सांगोपनिषद विद्वान् वेदों को जानता है' लेकिन पुराण को नहीं जानता वह विचक्षण विद्वान नहीं है।" मध्यकाल में भारतीय विद्वानों ने इतिहास की उपेक्षा की इसीलिए सहस्रों वर्षों के लिए भारत विदेशियों के आधीन रहा और अधोगति को प्राप्त हुआ। अतः सत्य इतिहास की उपेक्षा विनाशकारी होती है।

भगवद्दत्त के मत में मन्त्र रचना काल—(ऋग्वेद का समय)—पंडित भगवद्दत्त जी के अनुसार स्वयम्भू ब्रह्मा से व्यास कृष्ण द्वैपायन तक सभी व्यास और ऋषिगण वेद के विद्वान् थे। उनके मतानुसार ब्रह्मा का समय युग गणना के आधार पर अब से 16000 (सोलह सहस्र) वर्ष पूर्व था। तदनुसार 4800 वर्ष कृतयुग, 3600 त्रेतायुग, 2400 द्वापर युग। पूरा योग 10800 वर्ष। इसके साथ कलि और प्रवृद्ध कलि के 5000 से कुछ अधिक वर्ष जोड़ने पर लगभग 16000 वर्ष बनते हैं। यह न्यूनातिन्यून काल है। (भा० वृ० इ० पृ०

---

(1) विषयव्यवस्थापनाच्च "यथा विषयं प्रामाण्यम्। यज्ञो मन्त्रब्राह्मणास्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य······।" (न्यायभाष्य)

(2) इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं चेन्न संविद्यान्न स स्याद् विचक्षणः॥

चरकाचार्य के अनुसार ऋषियों के वचन सत्य होते हैं—

रजस्तमोभ्यां, निर्मुक्तास्तपो ज्ञानबलेन ये।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहृतं सदा।
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मात् असत्यं नीरजस्तमाः॥ (चरकसंहिता)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

254) पं0 भगवद्दत्त पुनः आगे लिखते हैं—"संसार मात्र की इस अमूल्य राधि को पाणिनि' कात्यायन, आश्वलायन और शौनक ने पढ़ा (विक्रम पूर्व 2800 वर्ष)। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास तो वेद का वर्तमान शाखा विभाग करने वाले थे ।" (विक्रम पूर्व 3150 वर्ष) । व्यास के पिता पराशर जी वेद के पंडित थे । वे अनेक वेद सूत्रों के द्रष्टा हुए हैं । दशरथ पुत्र श्रीराम वेद के ज्ञाता थे (5400 वर्ष विक्रम पूर्व) । श्रीराम से पूर्व रघु, वशिष्ठ, विश्वामित्र भारद्वाज, भरत, चक्रवर्ती और ययाति राजगण और ऋषि वेद के पारंगत पंडित थे । इनसे पूर्व अपान्तरतमा, कपिल और हिरण्य गर्भ ने वेद में अभ्यास किया था । तब नारद और सनत्कुमार भी वेदज्ञ थे । उस समय पुरूरवा ऐल वेद के पंडित थे । इन सबसे पूर्व दीर्घजीवी देवराज इन्द्र वेद के अपूर्व ज्ञाता थे । (न्यून से न्यून 9000 विक्रम पूर्व) इन्द्र के पूर्वज विरोचन और उसके पूर्वज कश्यप प्रजापति ने वेद पढ़ा था । (भा० वृ० इ० भाग 1, पृ० 258) ।

वेद मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के काल के आधार पर भी अमुक सूक्त का काल निश्चित किया जा सकता । पाश्चात्य विद्वान् ऋग्वेद के प्रथम और दशम मण्डल के सूक्तों को अन्य मंडलों की अपेक्षा अर्वाचीन मानते हैं । पंडित भगवद्दत्त ने 24 सूक्तों के मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के उदाहरण देकर बताया है कि वेद मन्त्रों का निर्माण मान्धाता से पूर्व आदिराजा पृथु वैन्य के समय से ही हो रहा था । निम्नलिखित सूची से ऋग्वेद के मन्त्रों की प्राचीनता सिद्ध होगी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्र. सं.	ऋषि	सूक्त संख्या
(1)	पृथु वैन्य	10/148
(2)	हविर्धान आङ्गि	10/11,12
(3)	अदिति दाक्षायणी	10/72
(4)	प्रजापति परमेष्ठी	10/129
(5)	विवस्वान्	10/13
(6)	यम वैवस्वत	10/14
(7)	यमी वैवस्वती	10/154
(8)	यम यमी	10/10
(9)	नाभानेदिष्ठ	10/61,62।
(10)	शार्यात मानव	10/92
(11)	विरूप	8/43 44
(12)	वत्सप्रिभालन्दन	9/68; 10/45,46
(13)	बुध (सोमपुत्र)	10/101
(14)	पुरूरवा	10/95
(15)	मारीच कश्यप	1/99 इत्यादि
(16)	उशना काव्य	8/84 इत्यादि
(17)	शची पौलोमी	10/159
(18)	वृहस्पति	10/71
(19)	च्यवन भार्गव	10/19
(20)	मांधाता	10/134
(21)	संवर्त्त	10/172
(22)	जमदग्नि	10/110
(23)	त्रिशिरा	10/8,9
(24)	शिबिरौशीनर	10/179

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In.Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी सूक्त सूची से सिद्ध होता है कि मन्त्रों का अस्तित्त्व देवों और असूरों के जनक प्रजापति कश्यप से भी सैंकड़ों वर्षों पूर्व पृथु वैन्य के समय में था।

कीथ और मैकडानल—बोग जुकाई (मध्यएशिया) नामक स्थान पर खुदाई में उपलब्ध पुरातन मृत्तिका मुद्रा पर एक लेख मिला। उसमें मित्तन्नी के राजा मत्तिवज और हित्तत्ति के राजा सुब्बी लुल्युम की संधि में मित्र, वरुण, इन्द्र ओर नासत्य देवों का उल्लेख है। इस खोज से पाश्चात्य विद्वानों में वेद विषयक तिथि के सम्वन्ध में तहलका मच गया।[1] इस विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत वनाये। सन्धि का काल 1400 ई० पू० माना जाता है। कीथ और मैकडानल इस प्रमाण और अवेस्ता की ऋग्वेद के भाषासाम्य के आधार पर ऋग्वेद को 1000 ई०पू० का मानते हैं।

इस प्रकार हमने वेदों या ऋग्वेद निर्माणकाल के विषय में विभिन्न विद्वानों के मतों का दिग्दर्शन किया। भारतीय परम्परा के अनुसार निम्न-लिखित व्यासों ने 28 युगों में 28 वार वेदों का सम्पादन किया-स्वयम्भू ब्रह्मा, मतरिश्वा, उशाना काव्य, वृह पतिरांगिरस विवस्वान्, वैवस्वत यम, इन्द्र, वसिष्ठ, सारस्वत-अपान्तरतमा, त्रिधामा, शरद्वान्, त्रिविष्ट, अन्तरिक्ष, वर्पि, त्रय्यारुण, धनञ्जय, कृतंजय, भरद्वाज, तृणञ्जय, गौतम, निर्यन्तर, वाजश्रवा, सोमशुष्म, तृणविन्दु, वाल्मीकि, शक्ति, पराशर और कृष्णद्वैपायन व्यास।

---

(1) एक भारतीय विद्वान् श्री रंगाचार्य जी ने पाश्चात्यों के भय का इस प्रकार वर्णन किया है—'When the Mitanni inscriptions were discovered, these scholars recieved an unpleasant shock at first, but after wards recovered their equanity, rallied their scattered forces and began to contend that there inscriptions must refer to pre-vedic Times, (Pre-Muslim India p. 145-146)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युग	युग प्रवर्तक	व्यास
प्रथम युग में	दक्ष	स्वयम्भू
द्वितीय युग में	आदित्यगण	मातरिश्वा
तृतीय युग में	"	उशना
चतुर्थ युग में	"	बृहस्पति
पंचम युग में	विवस्वान्	विवस्वान्
षष्ठ युग में	यम	यम
सप्तम युग में	इन्द्र	इन्द्र
अष्टम युग में	वैवस्वत मनु	वसिष्ठ
नवम युग में	ककुत्स्थ	अपान्तरतमा
दशम युग में	दत्तात्रेय	त्रिधामा
एकादश युग में	—	शरद्वान्
द्वादश युग में	—	त्रिविष्ट
त्रयोदश युग में	नारायण	अन्तरिक्ष
चतुर्दश युग में	—	वर्पि
पंचदश युग में	मान्धाता	त्र्य्यारुण
षोडश युग में	—	धनञ्जय
सप्तदश युग में	—	कृतञ्जय
अष्टादश युग में	दौष्यन्ति भरत	तृणञ्जय
उन्नीसवें युग में	परशुराम	भरद्वाज
बीसवें युग में	सगर	गौतम
इक्कीसवें युग में	—	निर्यन्तर
बाइसवें युग में	—	वाजश्रवा
तेइसवें युग में	रघु	सोमशुष्म
चौबीसवें युग में	दाशरथिराम	तणबिन्दु
पच्चीसवें युग में	—	वाल्मीकि
छब्बीसवें युग में	—	शक्ति
सत्ताइसवें युग में	उपरिचवसु	पराशर
अट्ठाइसवें युग में	वासुदेव कृष्ण	कृष्णद्वैपायन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय ऐतिहासिक तिथियाँ और व्यास परम्परा—इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। और वैदिक साहित्य का तो मूल सम्बन्ध 28 व्यासों (विशेषत: अन्तिम व्यास-कृष्णद्वैपायन) से ही है। अत: व्यासों का कालनिर्धारण हो जाने पर ही वैदिक संहिताओं का काल-निर्धारण हो सकता है। इस विषय में विद्वानों ने कोई विशेष अनुसंधान नहीं किया। इतिहास की तिथियां निश्चित किये विना कोई भी राजनैतिक या साहित्यिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता। अत: इतिहास पुराणों के अनुसार संक्षेप में युगों और व्यासों का कालनिर्धारण करते हैं। पुराणों में 28 युगों को कहीं द्वापर' कहीं त्रेता और कहीं परिवर्त्तया पर्याय कहा गया है। पण्डित भगवद्दत्त ने लिखा है कि 'यदि इन अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुगादि की अवधि जान ली जाये तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम निश्चित हो सकता है। हम अभी तक इस बात को पूर्णतया नहीं जान पाये।' (भा० वृ० इ० भाग 1' पृ० 159)

लेकिन यह महान् हर्ष का विषय है कि हमने ब्राह्मण ग्रन्थों एवं इतिहास पुराण के सहाय्य से युगों का ठीक-ठीक मान जान लिया है। ब्राह्मणग्रन्थों में, मीमांसादर्शन में, देवों का एक दिन एक मानुष वर्ष के बराबर कहा गया है। अत: 360 मानुष वर्ष=देवों का एक वर्ष माना जाता था। मनुस्मृति में भी लिखा है कि मनुष्यों के 12000 वर्ष देवों का एक महा युग होता है—

एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (म० स्मृ० 1/71)

ये द्वादशसहस्र वर्ष मनुष्यों के हैं न कि देवों के। वायु पुराण में स्पष्ट लिखा है—'अत्र संवत्सरा: सृष्टा मानुषेण प्रमाणत:।" (वायु० 57/29)

मर्त्यलोक में अन्य किसी लोक के संवत्सरों के आधार पर इतिहास लिखा भी कैसे जा सकता है। मनुष्यलोक में मानुषवर्षों में ही गणना होगी। शतपथ ब्राह्मण के निम्न प्रमाण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि एक युग 360 वर्षों का और कृतयुग त्रेता और द्वापर कुल 10800 वर्षों के होते थे—'षष्टिश्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रीणि च शतानि यजुष्मतीः दश च सहस्राण्यष्टौ शतानि (10800) उपद्यत्ते ।"[1]
(श० ब्रा० 10/4/3/8) ।

पुराणों में दो प्रकार की गणना मिलती है। एक तो प्रसिद्ध है ही—चतुर्युग गणना पद्धति। द्वितीय का निदर्शन देखिये—

प्रथमे द्वापरे व्रह्मा व्यासो बभूव ह।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ॥ इत्यादि (वायु० पु०)

इस युग गणना का सम्बन्ध व्यासों से अधिक है। आर्यभट्ट के समय तक युगपाद समान माने जाते थे। यह युग का आरम्भ दक्ष प्रजापति से प्रारम्भ हुआ। दक्ष से कृष्णद्वैपायन तक 28 युग × 360 = 10800 वर्ष हुये। कृत, त्रेता और द्वापर का मान भी इतना ही होता है। महाभारत के एक अन्य प्रमाण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है, कि दक्ष की चौथी पीढ़ी में राजा नहुष हुआ। नहुष और युधिष्ठिर में 10000 (दस हजार) वर्षों का अन्तर था—

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
पूर्णेषु वर्षेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि (उ०प० 17/15)

राजा नहुष अगस्त्य ऋषि के शाप से दश सहस्र वर्ष सर्पयोनि में पड़े रहे, अन्त में युधिष्ठिर के दर्शन से उनकी मुक्ति हुई। इस प्रमाण से भी उक्त गणना की पुष्टि होती है। इधर कलि का परिमाण 1200 वर्ष था।

कलि का आरम्भ—श्रीकृष्ण की मृत्यु के दिन से कलियुग का प्रारम्भ माना जाता है—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत ॥ (वायु० 99/420)

---

1. तुलना कीजिये—"चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतम् युगम्। तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप। द्विसहस्रं द्वापरे······॥ (म०भी० 11/6) कृतयुग में 4000 वर्ष, त्रेता में 3000 वर्ष, द्वापर में 2000 वर्ष, इनके संध्याकाल क्रमशः 800; 600 और 400 है, यह योग 10800 वर्ष होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलियुग 1200 वर्षों का था।

कलि का अन्त—1200 वर्षों के कलियुग का अन्त प्रद्योतवंशीय मगधराज विशाखयूप के राज्यकाल में हुआ। इसी समय भगवान् कल्कि का अवतार हुआ। कल्कि अवतार के लगभग एक शती पश्चात् बुद्ध हुये। कल्कि का अवतार विक्रम से लगभग 1800 वर्ष पूर्व हुआ। अतः पुराणों के अनुसार भारतीय इतिहास की जो तिथियां निश्चित होती हैं, उनमें और पाश्चात्य लेखकों द्वारा निर्धारित तिथियों में बहुत अन्तर है। इस विषय के विवेचन के लिये यहां अवसर नहीं हैं। हमें तो यहाँ वैदिक साहित्य का इतिहास लिखना है। परन्तु इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि भारतीय इतिहास में इस समय बुद्ध, महावीर नन्द, मौर्य, सातवाहन, शुङ्ग, गुप्तादि राजाओं का जो समय निर्धारित किया है, वह सर्वथा प्रामाणिक नहीं है। विलियम जोन्स ने मैगस्थनीज के आधार पर चन्द्रगुप्त मौर्य का समय 323 ई० पू० निश्चित किया था, लेकिन पुराण गणना से चन्द्रगुप्त मौर्य का समय 1400 वि. पू. निश्चित होता है, इसी प्रकार अन्य वंशों के राजाओं की तिथियों में अन्तर आजायेगा। अतः इस समय अंग्रेजों द्वारा लिखित और प्रचारित इतिहास हमें पढ़ाया जा रहा है, उसे हमें आँख मूंदकर नहीं मानना चाहिये, उसकी प्रामाणिकता जाँचने की महती आवश्यकता है।

यही बात शंकराचार्य आदि की तिथियों के सम्बन्ध में है, इनकी तिथियां निर्धारित करने में भारतीय परम्परा की घोर उपेक्षा हुई है, अब समय आगया है कि भारतीय विद्वान अपनी भूलें सुधारें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितोय अध्याय

ऋग्वेद

(कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास कृत चरण प्रवर्तन)

पूर्व व्यास—वर्तमान वेदसंहिताओं का रूप पाराशर्य व्यास और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का बनाया हुआ है। ये 28 व्यासों में अन्तिम व्यास थे। पाराशर्य व्यास का परिचय लिखने से पूर्व कुछ प्रमुख व्यासों का संक्षिप्त विवरण जिज्ञासुओं की सन्तुष्टि के लिए श्रेयस्कर होगा। भारतीय शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा प्राणियों में सर्वप्रथम उत्पन्न हुए।[1] सभी प्रमुख शास्त्रों-यथा-ब्रह्मविद्या योगशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्पशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, मोक्षशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष शास्त्र, इतिहास पुराण, गणित, नाट्यवेद-इत्यादि के प्रवक्ता ब्रह्मा थे। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मा-स्वयम्भू ने सर्वप्रथम ब्रह्मविद्या अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को पढ़ाई।[2] इस सृष्टि में ईश्वर की प्रेरणा से ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान हुआ।[3] इस प्रकार ब्रह्मा वेदों के आदि प्रवक्ता माने जाते हैं। ब्रह्मा का एक नाम 'आत्मभू' (स्वयम्भू) था। इसी 'आत्मभू' को बाइबिल में 'आदम' कहा गया है, जिससे समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। आचार्य चतुरसेन के मतानुसार ब्रह्मा, वरुण, जो अदिति के प्रथम पुत्र थे, का नाम था। वरुण के पुत्र भृगु ऋषि हुए। भृगु का ही एक नाम अथर्वा था। इन्हीं भृगु या अथर्वा ने अपने पिता से वेदों का अध्ययन करके उनका संसार में प्रचार किया।

---

1. भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे (अथर्ववेद)
2. ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
   स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह (मु०उ० 1/1)
3. यो ब्रह्माणां विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वेता०उ०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहास पुराणों में द्वितीय व्यास मातरिश्वा या वायु थे। तैत्तरीय संहिता के अनुसार वायु और इन्द्र ने व्याकरणशास्त्र की रचना की। वायुप्रोक्त पुराण[1] अब तक मिलता है। इस समय वायु के नाम से कोई वेदसंहिता नहीं मिलती। तृतीय व्यास उशना काव्य थे। भृगु का एक नाम 'कवि' था। कवि (भृगु) के पुत्र होने से वे काव्य उशना कहलाये। वे भार्गव वंशियों के प्रथम अधिपति भी बने।[2] अथर्ववेद के प्रधान कर्त्ता उशना काव्य ही थे। पारसियों के धर्मग्रन्थ 'जेन्दावेस्ता' में अथर्वा और उशना काव्य का प्रचुर उल्लेख मिलता है 'जेन्दावेस्ता' अथर्ववेद का ही एक विकृत (भाषा की दृष्टि से) रूप है। 'जेन्दावेस्ता' शब्द 'छन्दोवेद' शब्द का अपभ्रंश है। प्राचीन भारत में 'अथर्ववेद' को छन्दोवेद' भी कहते थे (छन्दांसिजज्ञिरे-पुरुषसूक्त)। उशना काव्य बलि, प्रह्लाद वृषपर्वा, विरोचनादि अनेक असुर सम्राटों के पुरोहित थे—

'वृहस्पतिर्देवाना पुरोहित आसीद्। उशना काव्योऽसुराणाम्।

(जै ० ब्रा० 1/८25)

उशना को भिषक् भी कहा जाता था, वे सर्वश्रेष्ठ वैद्य थे। इन्होंने 'अर्थशास्त्र' आदि अनेक शास्त्रों का प्रणयन किया। अथर्ववेद के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था, उसी प्रसंग में इनका अधिक वर्णन किया जायेगा।

चतुर्थ व्यास बृहस्पति थे, ये देवों के पुरोहित थे। आङ्गिरस बृहस्पति के अनेक मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं। मन्त्रों के अतिरिक्त इनके 'अर्थशास्त्र' आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध थे।

वेदों के पाँचवे व्यास विवस्वान् आदित्य थे। ये अदिति के पुत्र होने से 'आदित्य' कहे जाते थे। शुक्लयजुर्वेद के आदि प्रवक्ता विवस्वान् आदित्य थे। परम्परा से यह आदित्यवेद (शुक्लयजुर्वेद) याज्ञवल्क्य ने प्राप्त किया-[1] शतपथ ब्राह्मण में विवस्वान् आदित्य की शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—

(1) आदित्य
(2) अम्भिणी वाक्

---

(1) एतत्तेसर्वमाख्यातमतीतानागतं तथा।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणामृषिसंस्तुतम्॥ (वनप० 191/16)

(2) भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्'। (वायु० पु० 70/4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3) नैध्रुवि काश्यप
(4) शिल्प काश्यप
(5) हरित काश्यप
(6) वार्षगण असित
(7) वाच्योग जिह्वावान्
(8) वाजश्रवा
(9) कुश्रि
(10) उपवेशि
(11) आरुणि उद्दालक
(12) वाजसनेय याज्ञवल्क्य

अतः शुक्लयजुर्वेद के मूल प्रवक्ता विवस्वान् आदित्य थे। इस प्रकार पञ्चम व्यास का कृतित्व हमें उपलब्ध है।

छठे युग में छठे व्यास वैवस्वत यम हुए, ये उपर्युक्त विवस्वान् के पुत्र थे। यम का चाचा इन्द्र, जो सातवाँ व्यास था, आयु में यम से छोटा था, उसने (इन्द्र ने) यम से वेद और पुराण पढ़ा था अर्थात् इन्द्र यम का शिष्य था, यद्यपि वह उसका चाचा था। पारसी धर्मग्रन्थ यम को 'यिम खिस्त ओस्त' कहते हैं। इसी शब्द का उत्तरकालीन रूप 'जमशेद' है। ऋग्वेद, अथर्ववेद और अवेस्ता में यम और उसके वंशजों के मन्त्र मिलते हैं, जिनका विस्तृत विवरण आगे के अध्यायों में लिखा जायेगा।

सप्तम व्यास इन्द्र था, यह बारह आदित्यों में, विष्णु को छोड़कर सबसे छोटा था।[1] इन्द्र के चार गुरु थे—कश्यप, बृहस्पति, यम और विश्वामित्र। इन्द्र प्रजापति कश्यप, जो उसके पिता भी थे, के पास 101 वर्ष ब्रह्मचर्य का

---

(1) यथाऽऽर्षेयेणेह विधिना चरताऽवनतेनह।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥ (महा 12/318/2)
यहाँ 'आदित्याद्' के स्थान पर 'आदित्यानि' (यजूंषि) पाठ अधिक उपयुक्त है। इसी परम्परा का गीता में उल्लेख है—
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ (4/1)
(2) प्रजापतिरिन्द्रमसृजत-आनुजावरं देवानाम् (तै० ब्रा० 2/2/10)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालन करते हुए, शिष्यरूप में रहा और वेद तथा अन्य शास्त्रों में पढ़ता रहा। प्रह्लाद पुत्र विरोचन उसका सतीर्थ्य (सहपाठी) था। यम से इन्द्र ने इतिहास पुराण का अध्ययन किया। बृहस्पति से व्याकरणादि शास्त्रों का अध्ययन किया। इन्द्र जन्म से ब्राह्मण था, लेकिन कर्म से वह क्षत्रिय हो गया और 99 बार उसने असुरों से युद्ध किया।[1] इनमें से 12 देवासुर-महासंग्राम थे। वृत्रवध के पश्चात् इन्द्र की "महेन्द्र" संज्ञा हुई। इन्द्र ने भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों को वेद तथा आयुर्वेदादि शास्त्र पढ़ाये। लेकिन महासंग्रामों को करते हुए इन्द्र वेदों को भूल गया, पुनः उसने विश्वामित्र कौशिक से वेद पढ़े, जिससे इन्द्र भी 'कौशिक[2] कहलाया। वेद मन्त्रों के अतिरिक्त इन्द्र ने एक महान व्याकरण शास्त्र की रचना की, जो विद्वानों में 'ऐन्द्र व्याकरण' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मित्रावरुण और उर्वशी के पुत्र वसिष्ठ ऋषि अष्टम व्यास थे। अथर्ववेद से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इनको आथर्वण ऋषि भी कहा जाता था। अथर्ववेद के मन्त्रों का उद्धार वसिष्ठ ने किया-"अथर्वणा वसिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः चतुर्थ वेद इत्यर्थः। अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठकृत इत्यागमः।" (मल्लिनाथ-किरातार्जुनीय टीका, 10/10)। वसिष्ठ के वंशज चारों वेदों के विद्वान होते थे, इसलिए यज्ञों में 'ब्रह्मा' ऋत्विक् 'वासिष्ठ' बनाया जाता था। इसी वंश में आगे चलकर शक्ति, पराशर और कृष्णद्वैपायन हुए, जो विभिन्न युगों के व्यास थे।

नवम व्यास, 'अपान्तरतमा-सारस्वत' का इतिवृत पूर्व (श्रुतिप्रणाश कथा-प्रसंग में) लिखा जा चुका है। ये पाराशर्य व्यास के समान ही प्रसिद्ध व्यास थे। दसवें से अठारवें व्यासों तक का कोई विशेष विवरण ज्ञात नहीं है, अतः उन्नीसवें व्यास भरद्वाज का यत्किंचित विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

---

(1) इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्र कर्मणा क्षत्रियोऽभवत्।
ज्ञातीनां पापवृत्तीनां जघान नवतीर्नव॥ (शा० 22/11)

(2) 'तान् ह विश्वामित्राद् अधिजगे। ततो हैव कौशिक ऊचे।
(जै० ब्रा० 2/79)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र और इन्द्र के शिष्य थे। भरद्वाज ने चार आयुओं तक वेद का अभ्यास किया, ऐसा तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण (1/2/2) के अनुसार भरद्वाज अनूचानतम (अतिविद्वान), दीर्घजीवितम और तपस्वितम थे। भरद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेदशास्त्र सीखकर उसका भारतवर्ष में प्रचार किया।

बीसवें व्यास वाजश्रवा का कठोपनिषद् में उल्लेख है, इनके पुत्र नचिकेता को वैवस्वत यम ने ब्रह्मज्ञान दिया। वाजश्रवा गौतमवंशीय थे। इनका ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र तत्र उल्लेख आता है, परन्तु इनकी कोई वेदसंहिता इस समय प्राप्त नहीं है।

तेइसवें व्यास 'तृणविन्दु' वैशाली के राजा और अगस्त्य के मित्र थे। तृणविन्दु का रावण के पूर्वज पुलस्त्य और विश्रवा से विशेष सम्बन्ध था। इन्होंने वेद की किस संहिता का प्रवचन किया, ज्ञात नहीं।

चौबीसवें युग[1] में दाशरथि राम के समकालीन वाल्मीकि ऋषि चौबीसवें व्यास[2] थे। इन्होंने मन्त्रों की रचना भी की थी।[3] वाल्मीकि का एक नाम ऋक्ष था। इन्होने आदिकाव्य के नाम से प्रसिद्ध रामायण इतिहास का प्रणयन किया। वाल्मीकि के श्लोकों का उल्लेख महाभारत में भी है।[4] वाल्मीकि भार्गव वंशीय ऋषि थे। पुराणों में इनके ये चार शिष्य-शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व और शरद्वसु-कहे गये हैं। वाल्मीकि के वेद प्रवचन सम्बन्धी नियम तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में मिलते हैं।[5] अतः वाल्मीकि का सम्बन्ध यजुर्वेद की किसी प्राचीन शाखा से था, अर्थात उन्होंने यजुर्वेद का प्रवचन किया था, इस समय वह अनुपलब्ध है।

---

(१) "चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः।" (हरि० पु०)

(२) "परिवर्त्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति" (वायु० पु०)।

(३) "सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ।" (रघुवंश)।

(४) अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि' (द्रोण० 143/85)

(५) गुरु और शिष्य का एक ही सूत्र में मत मिलता है—

'कपवर्गपरश्चाग्निवेश्यवाल्मीक्यिोः; (तै० प्रा० 9/4)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति वासिष्ठ पच्चीसवें व्यास, ऐक्ष्वाक राजा सौदास कल्माषपादके समय में हुये थे ।[1] यह समय दाशरथि राम और बाल्मीकि से कुछ शती पूर्व निश्चित होता है ।

शक्ति के पुत्र पराशर छब्बीसवें व्यास थे । इनका एक नाम 'शतयातु' था । यह नाम ऋग्वेद में मिलता है ।

पराशर के वंश में सत्ताइसवें व्यास जातूकर्ण और अट्ठाइसवें व्यास कृष्ण-द्वैपायन पाराशर्य हुए । इतिहास के अनुसार पराशर और कृष्णद्वैपायन में लगभग 2000 वर्षों का अन्तर था, क्योंकि आदि पराशर त्रेता के अन्त में हुये और कृष्णद्वैपायन द्वापर युग के अन्त में हुये, अतः कृष्णद्वैपायन आदि पराशर के पुत्र नहीं वंशज थे, इनके मध्य में अनेक पीढ़ियों का अन्तर था । वसिष्ठ के सभी वंशज 'वसिष्ठ' या 'वासिष्ठ' और पराशर के वंशज 'पराशर' या 'पाराशर' कहे जाते थे । इसी नामसाम्य से इतिहास में भ्रम उत्पन्न होता है ।

कृष्णद्वैपायन पराशर्य व्यास का चरणप्रवर्तन काल—"राथ, मैक्समूलर, मैकडानल कीथ प्रभृति पाश्चात्य लेखकों को सबसे अधिक भय व्यास जी और महाभारत से था । इस हेतु इन्होंने व्यास जी को मिथिकल और उनके ग्रन्थ को बहुविध कालों में रचित माना (पं० भगवद्दत्त भा० वृ० इ० भा 1, पृ0196) । हाप्किन्स नाम के अमेरिकन विद्वान् ने लिखा कि वैशम्पायन और व्यास का उल्लेख तैत्तिरीयारण्यक जैसे प्राचीन ग्रन्थ में है, लेकिन वह उल्लेख महाभारत के रचयिता या सम्पादक के रूप में नहीं है, जो वर्तमान में उनकी प्रसिद्धि का कारण है ।"[2] कीथ के मत में व्यास एक काल्पनिक ऋषि का नाम था ।[3] जब

(1) "सौदासस्य महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे ।,, बृहद्देवता, 4/112)

(2) Vaishampayana and Vyasa are mentioned as early as the Taittiriya Aranyaka, but not as authors or editors of epic which is now their chief claim to recognition (combridge History of India Vol 1. p. 252).

(3) Vyas Parasarya is the name of a Mythological sage (Vedic Index p. 399).

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाश्चात्य लेखकगण पाराशर्य व्यास की ऐतिहासिकता को ही नहीं स्वीकार करते, तो वे पूर्व व्यासों की ऐतिहासिकता को कैसे मानेंगे । उपलब्ध वैदिक वाङ्मय के मूल प्रवर्तक कृष्णद्वैपायन व्यास ही थे। जब मूल को उखाड़ दिया जाय तो उसकी शाखा प्रशाखायें किस प्रकार रह सकती हैं। अतः पाराशर्य व्यास न केवल भारतीय इतिहास के एक प्रधान पुरुष वरन् वैदिक साहित्य के प्रधान स्तम्भ थे। पाराशर्य व्यास का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[1] (बृहदारण्योकोपनिषद्) गोपथ ब्राह्मण,[2] तैत्तिरीयारण्यक,[3] बौधायन गृह्यसूत्र जैसे वैदिक ग्रंथों में मिलता है।

व्यास समस्त वेद वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ थे :

'सर्ववदेविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवती सुतः।' (शा० 2/9)

वेद व्यास अद्वितीय यज्ञवेत्ता (ऋत्विक) थे, जिनके शिष्य सब यज्ञ कर्मों में निपुण होकर पृथ्वी पर विचरण करते थे :

ऋत्विक् समो नास्ति लोकेषु चैव ।
द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ॥
एतस्य शिष्याः क्षितिमाचरन्ति ।
सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः ॥ (आदि० 55/9)

इनके विषय में कहा गया है कि समस्त वेद ब्राह्मणभागसंहित इनके पास उपस्थित हो गया, केवल लोकधर्म का पालन करते हुए इन्होंने गुरू जातूकर्ण से वेद पढ़ा।

जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम् ॥ (वायु० 1/43)

वेदों का विस्तार (व्यास) करने के कारण ही इनका नाम 'वेदव्यास' प्रसिद्ध हुआ···

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः। (आदि 63/88)

---

(1) पाराशर्यो जातूकर्ण्याद् (श० ब्रा० 14/4/6/3)
(2) एतस्माद् व्यासः पुरोवाच (गो० ब्रा०)
(3) स होवाच व्यासः पाराशर्यः (तै० आ० 19/35)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनका जन्म शन्तनु के राज्य काल में हुआ था, इनके पिता पराशर गोत्रीय ऋषि थे, इसलिए पाराशर्य कहलाये। इनकी माता उपरिचर वसु की पुत्री सत्यवती थी, जिसका पालन दाशराज ने किया, ये कुमारी कन्या से यमुना के द्वीप में उत्पन्न हुए, अतः द्वैपायन कहलाये। शरीर का रंग काला था, अतः इनका नाम 'कृष्ण' हुआ। व्यास जी का जन्म वर्तमान झांसी के निकट कालपी गाँव में हुआ था। इनके गुरु जातूकर्ण भी पराशर गोत्रीय ऋषि थे। इस तथ्य से भी यही प्रकट होता है कि व्यास के पिता, 'आदि पराशर' नहीं उन पराशर के कोई वंशज थे। प्रतीत होता है कि पाराशर्य व्यास से पूर्व वेदमन्त्रों की अनेक अस्त व्यस्त शाखायें थीं।' उन्होंने उनको सम्यक् व्यवस्थापित करके चार संहिताओं में सम्पादित किया और अपने पुत्र सहित पांच शिष्यों को पढ़ाया—

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ॥
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ॥ (म० आदि० 63/87-90)

व्यास जी ने ऋग्वेद को विशेषतः पैल को पढ़ाया, यजुर्वेद वैशम्पायन को' जैमिनि को सामवेद, और सुमन्तु को अथर्ववेद पढ़ाया। ये चारों व्यासशिष्य —सूत्राचार्य, भाष्याचार्य, भारताचार्य और महाभारताचार्य भी कहे जाते थे।[1]

पं० भगवद्दत्त जी के अनुसार व्यास जी ने वेद शाखा प्रवचन शन्तनु के राज्यकाल में, विचित्रवीर्य की पत्नियों में नियोग करने से किया था। भगवद्दत्त जी के शब्दों में—"युधिष्ठिर राज्य की समाप्ति पर कलि का प्रारंभ माना जाता है। युधिष्ठिर राज्य तक द्वापर अथवा २०० वर्ष का सन्धिकाल था। सब शास्त्रों का मत है कि शाखा प्रवचन द्वापरान्त में हुआ। ईश्वर को धन्यवाद है कि महाभारत आदि पर्व 99/14-22 में शाखा प्रवचन का काल मिलता है। वहाँ लिखा है कि विचित्रवीर्य की पत्नियों में नियोग करने से पूर्व व्यास जी शाखा प्रवचन कर चुके थे।······वेद शाखा प्रवचन कलि से कोई १५० वर्ष पूर्व हुआ शाखा प्रवचन के समय व्यास जी ५० वर्ष के थे।[2] अन्यत्र उन्होंने लिखा है—

---

(1) "सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारताचार्याः
(आश्व गृ० 3/3/5) (कौ० गृ० 2/5/3)

(2) वै० वा० इ० (पृ० 171)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"शन्तनु के राज्यारम्भ से लेकर भारत युद्ध तक 163 वर्ष बीते थे। इसका ब्यौरा निम्नलिखित है।

शन्तनु	=50 वर्ष राज्यकाल
विचित्रवीर्य	=12 वर्ष
भीष्मनेतृत्व	=20 वर्ष
पाण्डु	=5 वर्ष
धृतराष्ट्र	=40 वर्ष
दुर्योधन	=36 वर्ष
भारत युद्ध तक कुल	=163 वर्ष

इसमें युधिष्ठिर राज्यकाल के 36 वर्ष जोड़ने पर 199 वर्ष हुए। व्यास जी ने वेदशाखा प्रवचन शन्तनु राज्यकाल में किया था। यदि शन्तनु राज्यकाल के 50 वर्ष कम कर दिये जायें तो 150 वर्ष बचते हैं। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पार्जीटर यद्यपि पूर्ण तथ्य को नहीं जान सका, लेकिन इतना वह भी जान गया कि व्यास का वेद चरण प्रवर्तन महाभारत युद्ध से एक चौथाई शती पूर्व हुआ था।[1]

कीथ मैकडानल आदि व्यास को ऐतिहासिक व्यक्ति ही नहीं मानते, अतः उन्होंने और उनके अनुयायियों ने इस सम्बन्ध में प्रायः कुछ लिखा ही नहीं या काल्पनिक या इतिहास विरुद्ध बातें लिखीं।

ऋग्वेद की शाखाएं

आचार्य पैल—आचार्य व्यास ने ऋग्वेद विशेषतः पैल को पढ़ाया। इनकी माता का नाम पीला था, अतः पैल कहलाये, पैल के पिता का नाम वसु था। पैल के दो प्रधान शिष्य हुए—वाष्कल और इन्द्रप्रमति। यह समस्त पैलशिष्य परम्परा पुराणों में इस प्रकार दी हुई है,—

(1) He (Vyas) would probably have completed that work (of Vedic recensions) about a quarter of a century before Bharat Battle (A. G. H. T. P. 318)

(1) पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत् (सभा० प० 36/35)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

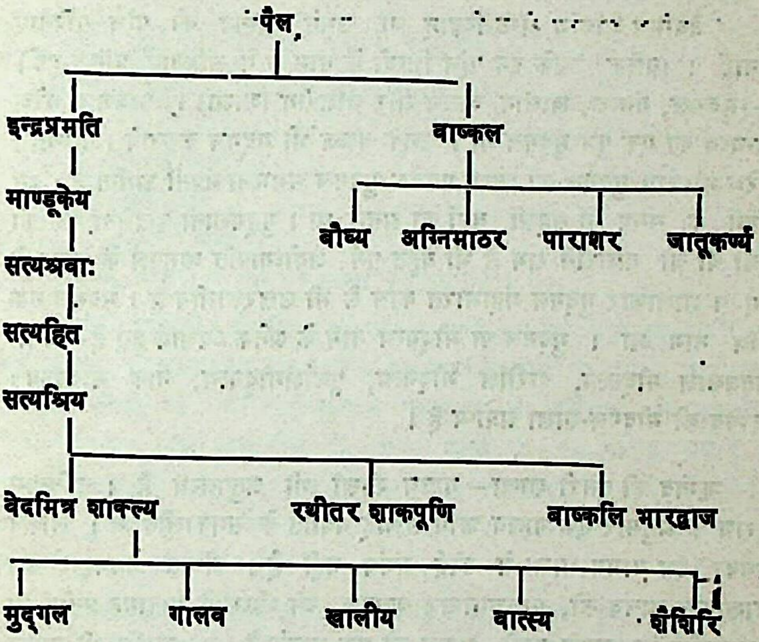

इस प्रकार पैल की शिष्य परम्परा में ऋग्वेद की अनेक शाखायें बनी। ये शाखायें स्वल्प पाठान्तर मात्र थीं। मूलमन्त्र समान थे।

प्राचीन-विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद की 21 शाखायें थी। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी ऐसा ही लिखा है—'एकविंशतिवा बाह्वृच्यम्'। अर्थात् ऋग्वेद की 21 शाखायें हैं। इन इक्कीस शाखाओं के मुख्य पाँच विभाग थे—'शाकलाः, बाष्कलाः, आश्वलायनाः, शांखायनाः, माण्डूकेयाश्च, (चरणाव्यूह) इनमें से देवमित्र शाकल्य या वेदमित्र शाकल्य की शाखाऐं बहुत प्रसिद्ध हुईं, वायुपुराण में लिखा है :—

देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः। चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः। तच्छिष्या प्रभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्तथा। खालीयश्च तथा वात्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः॥ (वायु० 60/63-64)॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"देवमित्र शाकल्य श्रेष्ठ विद्वान् था, उसने ऋग्वेद की पाँच संहिताएँ बनाईं। (वल्कि उसके इन पाँच शिष्यों के नाम से ये संहिताएँ प्रसिद्ध हुईं) —मुद्गल, गोलक, खालीय, वात्स्य और शैशिरीय (शाखा)।" पाञ्चाल नरेश भृम्यश्व का एक पुत्र मुद्गल था। उसके वंशज भी मुद्गल कहलाये। पाञ्चाल नरेश भार्म्यश्व मुद्गल को शाखा प्रवर्तक मुद्गल समझना महती भ्रान्ति है। इन दोनों के समय में सहस्रों वर्षों का अन्तर था। मुद्गलानी इन्द्रसेना नल की पुत्री थी जो दाशरथि राम से भी बहुत पूर्व अयोध्यापति ऋतुपर्ण के समय में हुए। शाखाकार मुद्गल महाभारत काल से भी उत्तरकालीन है। मुद्गल एक गोत्र नाम था। मुद्गल या मौद्गल्य नाम के अनेक आचार्य हुए हैं—यथा-शतबलाक्ष मौद्गल्य, पारीक्षि मौद्गल्य, पूर्णाक्षमौद्गल्य, नाक मौद्गल्य। ऋग्वेद की मौद्गल-शाखा अप्राप्य है।

ऋग्वेद की दूसरी शाखा—गालव शाखा भी अनुपलब्ध है। इतिहास पुराण के अनुसार एक गालव ऋषि सम्राट् ययाति के समकालीन थे। लेकिन उनका इस गालव शाखा से कोई संबंध नहीं है। पण्डित भगवद्दत्त इस शाखाकार गालव को, पाञ्चालराज ब्रह्मदत्त, जो भीष्म के पितामह प्रतीप का समकालीन था, उसके मन्त्री ाभ्रव्य को एक मानते हैं। यह भ्रान्ति भी गालव के नाम साम्य से हुई है। वाभ्रव्य गालव पाञ्चाल तो पाराशर्य व्यास से कई शताब्दी पूर्व हो चुका था। अतः वाभ्रव्य और शाखाकार गालव को एक मानना सर्वथा इतिहास विरुद्ध है।

खालीय या शालीय शाखा—इस शाखा के सम्बन्ध में कोई ग्रन्थ नहीं मिलता।

वात्स्य शाखा—वत्स्य गोत्र के ब्राह्मण वात्स्य कहलाते थे। वात्स्य के वंशज वात्स्यायन हुये। वात्स्यशाखा इस समय लुप्त है।

शैशिरीय शाखा—अपनी प्रधान शाकल्य शाखा के समान ही शैशिरीय शाखा थी। ऋग्वेद की एक मात्र यही शाखा उपलब्ध है। कुछ लोग इसको शौशिरीय, तो कुछ इसको शाकल्य शाखा मानते हैं। इस शाखा का पदपाठ शाकल्य का बनाया हुआ है और सायण का भाष्य भी इसी पर है। विद्वानों में शाकल्य संहिता का बड़ा मान था। महाभाष्य में शाकल्य की संस्तुति मिलती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि इसकी संहिता को सुनकर मेघों से वृष्टि हुई ।[1]

सर्वानुक्रमणी के अनुसार शैशिरीय शाखा में—

85 अनुवाक;
1017 सूक्त;
2006 वर्ग;
10417 मन्त्र हैं ।

शाकल्य संहिता में पदों की संख्या 153826 है ।

वाष्कल शाखायें—पैलशिष्य वाष्कल के चार प्रधान शिष्य हुए—वौध्य, अग्निमाठर, पाराशर और जात्कर्ण्य । इन चारों आचार्यों के नाम से ये चार संहितायें प्रसिद्ध हुईं । श्री सूरम चन्द्र ने 'आयुर्वेद का इतिहास' में वाष्कल शिष्य-पाराशर और जातूकर्ण्य को व्यास माना है, वह महान भ्रम है । पाराशर्य व्यास के प्रशिष्य वाष्कल के शिष्य पाराशर और जातूकर्ण्य पाराशर्य व्यास के पूर्वज कैसे हो सकते हैं । ये गोत्र नाम थे । यह महती भ्रान्ति नाम-साम्य के कारण होती है ।

आचार्य वौध्य के वंशज वौधायन नाम के अनेक आचार्य हुए, इनमें एक वौधायन ने कल्पसूत्र की रचना की, इसका इतिवृत्त आगे उल्लिखित होगा ।

वौध्यादि सभी शाखाएँ अनुपलब्ध हैं ।

जातूकर्ण्य—इस गोत्र के मूलप्रवर्तक 'जतूकर्ण' थे । इनके वंशज जातूकर्ण या जातूकर्ण्य कहलाये । जतूकर्ण पराशर गोत्रीय थे । एक जातूकर्ण कृष्णद्वैपायन के गुरु थे । एक जातूकर्ण सत्ताइसवें व्यास थे । कृष्णद्वैपायन गुरु और व्यास जातूकर्ण एक ही थे—यह कहना संभव नहीं । क्योंकि यह गोत्र-नाम था और नाम साम्य से सदा भ्रम उत्पन्न होता है । एक जातूकर्ण्य आचार्य का नाम शांखायन श्रौतसूत्र में चार बार आया । शांखायन ब्राह्मण में भी उसका बहुधा उल्लेख है । एक स्थान पर उसे जड़ (जल) जातूकर्ण्य कहा है । वाष्कल का शिष्य जातूकर्ण्य एक अवर ऋषि था, जिसके नाम से ऋग्वेद की एक शाखा प्रसिद्ध हुई ।

---

(1) "शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्……शाकल्येन सुकृतां संहितामनु-निशम्य देवः प्रावर्षत् ।" (महाभाष्य 1/4/84) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाष्कल शाखा—इस शाखा में शाकल शाखा से 8 सूक्त अधिक हैं। अर्थात् बाष्कल शाखा में 1125 सूक्त हैं। यह शाखा अप्राप्य है।

आश्वलायन शाखा—ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा बहुत प्रसिद्ध थी, यह इस समय अप्राप्य है। आश्वलायन, शौनक (संभवतः माण्डूकेय शौनक) के शिष्य थे, आश्वलायन श्रौतसूत्रादि इस समय प्रकाशित मिलते हैं, इनका विवरण कल्पसूत्र प्रकरण में लिखा जायेगा। बृहदारण्यकोपनिषद् में (3/3/1) वैदेह जनक के होता अश्वल का उल्लेख है, इसी अश्वल का पुत्र या वंशज आश्वलायन था। वैसे अनेक आश्वलायन हो चुके हैं। पुराणों में आश्वलायन शाखा का उल्लेख नहीं है। लेकिन चरणव्यूहादि बहुत से ग्रन्थों में इसकी चर्चा मिलती है, अतः प्राचीनकाल में आश्वलायन शाखा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

शांखायन शाखायें—इसकी संहिता नहीं मिलती, परन्तु शांखायन ब्राह्मण और कल्प मिलते हैं। शांखायन शाखा के चार भेद थे—शांखायन, कौषीतकि महाकौषीतकि और शाम्बव्य शाखा (चरण)।

भारतीय इतिहास में शंख नाम के अनेक ऋषि हुए हैं। प्रसिद्ध धर्मशास्त्रा-कार शंख पाञ्चाल नरेश ब्रह्मदत्त का मंत्री था।[1]

महाभारत आदिपर्व (60/25) के अनुसार देवल के पुत्र शंख और लिखित थे। शंख का पुत्र और वंशज शांख्य या शांखायन कहलाये। शांखायन ब्राह्मण का प्रणेता शांखायन ऋषि था और शांखायन श्रौत का कर्त्ता सुयज्ञ शांखायन था। इनका एक पूर्वज गुणाख्य शांखायन शांखायनारण्यक में स्मृत हैं।

कुछ लोग शांखायन शाखा और कौषीतकि शाखा को एक ही मानते है, यह भ्रम है। दोनों ही पृथक्-पृथक् आचार्यों द्वारा प्रवर्तित पृथक्-पृथक् चरण थे। यद्यपि दोनों शाखाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध था। सम्भवतः शांखायनों ने कौषी-तकि शाखा का अनुकरण किया था।

कौषीतकि शाखा के प्रवर्तक कहोड या कहोल थे। इनके पिता का नाम कुषीतक था, जिससे वे कहोल कौषीतकि कहे जाते थे। यह कहोल प्रसिद्ध

---

(1) ब्रह्मदत्तश्च पाञ्चाल्यो राजा धर्मभृतां वरः।
निधिं शंखमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम्॥ (अनु० प० 200/17)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औपनिषदिक ऋषि और वाजसनेय याज्ञवल्क्य के गुरु उद्दालक का शिष्य और जामाता था। कहोल का पुत्र अष्टावक्र और उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु उपनिषद् युग में प्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता थे।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में कहोल-कौषीतकि और श्वेतकेतु का बहुधा उल्लेख है।

कौषीतकि शाखा के समान अन्य महाकौषीतकि शाखा थीं।

शाम्बव्य शाखा—प्राचीन काल में ऋग्वेद का शाम्बव्य चरण प्रसिद्ध था। पाणिनीय गर्गादि गण में 'शम्बु' नाम पठित है। इसका पुत्र 'शाम्बव्य' कहलाया। इसने अपने चरण की स्थापना की, जिसका महाभारत, आश्रमवासिक पर्व, अ० 10, श्लोक 11 में इस प्रकार उल्लेख है—

ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः।
शाम्बव्यो बह्वृचो राजन्वक्तुं समुपचक्रमे॥

जब कुरुराज धृतराष्ट्र वानप्रस्थ आश्रम में जाने लगे तो कुरुदेश के मार्ग में शाम्बव्य ने धृतराष्ट्र को उपदेश दिया। अतः शाम्बव्य शाखा कौरव पाण्डवों के समय प्रवर्तित हुई।

माण्डूकेय शाखायें—मण्डूक सम्भवतः शौनकगोत्रीय ऋषि था। शायद कुलपति शौनक यही मण्डूक ऋषि ही हों। इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। शौनक एक प्राचीन गोत्र था, जो भार्गवों के अन्तर्गत था। कुलपति शौनक का नाम इस समय अज्ञात है। एतरेयरण्यक (3/1) में माण्डूकेय को 'शूरवीर' नाम से कहा गया है। उसके तीन पुत्र थे दीर्घ, ह्रस्व और मध्यम। माण्डूकेय को बह्वृच कहा जाता है और शौनक भी बह्वृच थे।[2] अतः दोनों का

---

(1) उद्दालकस्य नियतः शिष्य एको नाम्ना कहोलेति बभूव राजन्।
तस्मै प्रादात्सद्य एव श्रुतं च भार्यां च वै दुहितरं स्वां सुजाताम्॥
अस्मिन् युगे ब्रह्मकृतां वरिष्ठावास्तां मुनी मातुलभागिनेयौ॥
अष्टावक्रश्च कहोलसुनुरौद्दालकिः श्वेतकेतुः पृथिव्याम्॥
अष्टावक्रः प्रथितो मानवेषु अस्यासीद्वै मातुलः श्वेतकेतुः॥
(वन० प० 134/8,9, 12)

(2) इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत्। (1/4/1 श्रीमद्भागवत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐक्य सम्भव है। प्राचीनकाल में बह्वृच शाखा और बह्वृच ब्राह्मण बहुत प्रसिद्ध थे। आपस्तम्ब श्रोतसूत्र में बह्वृच ब्राह्मण बहुधा उद्धृत है।

शाकपूणि की शाखायें—यास्क ने अपने निरुक्तशास्त्र में शाकपूणि रथीतर का मत उद्धृत किया है। मण्डूकेय की परम्परा में शाकपूणि के शिष्यों ने तीन संहितायें प्रवर्तित कीं। स्वयं शाकपूणि ने निरुक्त शास्त्र का प्रणयन किया। शाकपूणि के चार शिष्य थे—पैङ्ग्य, शैलालक, औद्दालकि, शतवलाक्ष। पिङ्गि का पुत्र हुआ पैङ्ग्य, इसका नाम मधुक था। शतपथ, ऐतरेय, कौपातकि ब्राह्मण तथा बृहद्देवता (1/24) में आचार्य मधुक का मत उद्धृत है। आचार्य मधुक बहुत ही प्रसिद्ध ऋग्वेदीय आचार्य था। आचार्य शौनक ने इन्हें पुराण कवि माना है और बड़ी श्रद्धा से इनका मत उद्धृत किया है। पैङ्ग्य मधुक वाजसनेय का शिष्य भी था। पैङ्ग्य शाखा इस समय अनुपलब्ध है। किसी समय पैङ्ग्यकल्प बहुत प्रसिद्ध था। काशिकावृत्ति में इसका उल्लेख है। शेष, औद्दालकि शाखा, शैलालक शाखा और शतवलाक्ष शाखा के नाम मात्र मिलते हैं।

ऋग्वेद की निम्नशाखायें और थीं—बाष्कलभारद्वाजीयशाखा, (तीन भेद—आपनीय, नन्दायनीय वालायनि), ऐतरेयशाखा, महैतरेय शाखा, वासिष्ठ शाखा, सौलभशाखा और शौनक शाखा। इनमें से सुलभाशाखा की प्रवर्तिका सम्भवतः सुलभा मैत्रेयी ऋषिका थी, जिसका महाभारत में जनक से संवाद होता है। इनमें ऐतरेयशाखा का ऐतरेयब्राह्मण मिलता है। इसके रचयिता महिदास ऐतरेय थे, इनका विशेष परिचय ब्राह्मण प्रकरण में लिखा जायेगा। यहां पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'ऐतरेय' ऋषि व्यास के समकालीन या कुछ पूर्ववर्त्ती थे और व्यास की शिष्यपरम्परा में नहीं हुए, इनका चरण स्वतन्त्र था। ऐसे कई प्राचीनतर स्वतन्त्र वैदिक चरण थे, जिनका पाराशर्य व्यास की शिष्य परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐतरेय चरण भी ऐसा ही एक प्राचीन वैदिक चरण था।

ऋग्वेद का आकार-प्रकार—प्रकाशित ऋग्वेद संहिता में तीन प्रकार से अध्यायादि का वर्गीकरण मिलता है—

प्रथम विभाग में—8 अष्टक, प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय, इस प्रकार कुल 64 अध्याय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय विभाग में—10 मण्डलों में ऋग्वेद विभाजित है।
प्रथम विभाग में 64 अध्याय, 2024 वर्ग और 10552 मन्त्र हैं।
द्वितीय विभाग में 10 मण्डल, 1028 सूक्त और 10552 मन्त्र हैं।

इनमें मण्डलात्मक ऋग्वेद का विभाग अधिक प्रसिद्ध है।

प्रत्येक मण्डल एक ऋषि और उसके वंशजों का बनाया हुआ है। प्रथम और दशम मण्डल में विभिन्न ऋषियों के मन्त्र सङ्कलित हैं। शेष द्वितीय से नवम मण्डल किसी विशिष्ट ऋषि या उसके वंशजों के नाम से प्रसिद्ध है। इन मण्डलों के ऋषि, सूक्तादि का विवरण, निम्न तालिका से ज्ञात होगा—

मण्डल	ऋषि	सूक्त संख्या
प्रथम	अनेक ऋषि	191
द्वितीय	गृत्समद और वंशज	43
तृतीय	विश्वामित्र और वंशज	62
चतुर्थ	गौतम वामदेव ,,	58
पञ्चम	अत्रि ,, ,,	87
षष्ठ	भरद्वाज ,, ,,	75
सप्तम	वसिष्ठ ,, ,,	104
अष्टम	कण्व ,, ,,	103
नवम	अनेक ऋषि ,,	114
दशम	,, ,, ,,	191
—	—	1028 सूक्त

ऋक् संख्या—ऋग्वेद की ऋचाओं की संख्याओं के विषय में भी प्राचीन काल से मतभेद चला आ रहा है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति की रची हुई द्वादशसहस्र ऋचायें हैं॥[1]

(1) द्वादश बृहतीसहस्राण्येतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः।
(श० ब्रा० 10/4/2/23)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शौनक के अनुसार ऋग्वेद में 10580 ऋचायें हैं ;

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।

ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम् ॥ (अनुवाकानुक्रमणी, 43)

एक अन्य मत से ऋग्वेद में 10569 ऋचायें हैं। पुराणों के अनुसार ऋचाओं की संख्या 8635 है। इस गणना में एक ही प्रकार का मन्त्र जो दो तीन बार आया है, उसे एक मानकर ऐसी ही गणना की है।

आचार्य शौनक ने वृहद्देवता (3/130) ग्रन्थ में लिखा है कि ऋग्वेद 1/9 से आरम्भ होकर एक सहस्र सूक्त (1000) और थे, जो कश्यप ऋषि के वनाये हुये थे, वे लुप्त हो गये, उन सूक्तों में 500499 मन्त्र थे।

ऋग्वेद के प्रधान ऋषि—मन्त्रों के रचयिता को मन्त्रद्रष्टा कहते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार ऋषि केवल मन्त्र को देखने वाले थे, रचयिता नहीं, ऋषियों को तप करते हुए असन्तोष, भय, दुःख, सुख और शोक के कारण अकस्मात् देवेच्छा से मन्त्रों के दर्शन हुए। मन्त्रों में किसी देवता की स्तुति, प्रशंसा, निन्दा, संशय, परिदेवना, स्पृहा, आशीः, दम्भ, याचना, प्रश्न, प्रैष या प्रवह्लिका (प्रहेलिका-पहेली) मिलती है।

इन सात ऋषियों और इनके वंशजों ने मन्त्रों का दर्शन किया—भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, कौशिक (विश्वामित्र) और अगस्त्य। इनका विवरण पुराणों में इस प्रकार है—

भार्गव वंशीय 19 ऋषि—(1) भृगु (2) उशना काव्य (3) प्रचेता (4) दध्यङ् आथर्वण (5) आप्नवान् (6) ऋचीक और्व (7) जमदग्नि (8) विद (9) सारस्वत अपान्तरतमा (10) आर्ष्टिषेण (11) च्यवन (12) वीतहव्य (13) सुमेधा (4) पृथुवैन्य (15) दिवोदास (16) बध्र्यश्व (17) गृत्समद (18) शौनक (शुनहोत्र)। इनमें उन्नीसवाँ नाम नहीं मिलता। यह पाठान्तरों के कारण गड़बड़ है। भृगु और भार्गव ऋषियों का वैदिक वाङ्मय के निर्माण में सर्वाधिक योगदान था। भगवान् कृष्ण ने गीता में महर्षियों में अपने को भृगु कहा है—'महर्षीणां भृगुरहम्' इससे भृगु का महत्व स्पष्ट है। भृगु के पूर्वज प्रचेता प्रजापति की वेदों के आदिप्रवक्ता थे, इन्हीं प्रचेता को पुराणों में ब्रह्मा कहा गया। वरुण का नाम भी प्रचेता है। आदि भृगु प्रचेता के ही पुत्र थे। इन प्रचेताओं के दक्ष आदि पुत्र हुए। पुराणों में भृगु आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तऋषियों की दो बार उत्पत्ति बताई है। प्रथम जन्म में भृगु प्रचेता के पुत्र थे, द्वितीय जन्म में वरुण के पुत्र हुए। यह एक जटिल ऐतिहासिक समस्या है, जिस पर यहां विस्तार से विचार नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना स्पष्ट है कि न केवल भारतवर्ष के इतिहास में वरन् प्राचीन विश्व के इतिहास में भृगु और भार्गव ऋषियों का अपूर्व एवं अद्वितीय योगदान था। इन भार्गव ऋषियों (आथर्वण) का सम्बन्ध प्राचीन आर्य क्षत्रियों से ही नहीं, बल्कि ईरान, कालडिया बैबीलोनिया, मिस्र अरबादि देशों के असुरों और गन्धर्वों से भी था। वरुण गन्धर्व देश के राजा थे, जिनकी प्रजायें अप्सरा और गन्धर्व कहलाती थीं। भृगु का एक नाम अथर्वा भी था, जिससे उनके वंशज आथर्वण कहलाये। उशना शुक्र इन्हीं के वंश में उत्पन्न हुये, जो महान् असुर पुरोहित थे। उशना और अथर्ववेद का सम्बन्ध फारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता और कालडिया आदि असुर भाषाओं पर अब भी देखा जा सकता है। अथर्ववेद में प्राप्त शब्द आलिगी, विलिगी, प्राचीन कालडिया भाषा में थे, इस विषय पर श्री लोकमान्य तिलक ने एक लेख लिखा था, जो विद्वानों में अति प्रसिद्ध है।

दध्यङ् आथर्वण को पुराणों में दधीचि कहा है, यह कथा प्रसिद्ध है कि वृत्रासुर को मारने के लिए इन्द्र ने दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया था। ब्राह्मण ग्रन्थों में मधु विद्या के प्रसङ्ग में अश्विनीकुमारों द्वारा अश्वशिर से विद्या ग्रहण करने की कथा मिलती है, जिसमें इन्द्र दधीचि का अश्वशिर काट देते हैं, अश्विनीकुमारों ने दध्यङ् का शिर पुनः जोड़ दिया।

जमदग्नि वेदों के प्रसिद्ध ऋषि हुये थे। इनके पुत्र जामदग्न्य परशुराम का इतिहास पुराणों में मिलता है, जहाँ वे अर्जुन हैहय का विनाश करते हैं। सारस्वत अपान्तरतमा नवम व्यास थे, जिनका इतिवृत पहिले लिखा जा चुका है। च्यवन भार्गव अति प्राचीन ऋषि थे। शतपथ ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण में शर्यात मानव के पुरोहित के रूप में इनका वर्णन है। शर्याति की कन्या सुकन्या का इनसे विवाह हुआ। ऋग्वेद में इनके अनेक मन्त्र मिलते हैं। वीतहव्य, पहिले क्षत्रिय थे, जो हैहयों के आक्रमण से परिश्रान्त होकर भार्गवों के शरण में जा कर ब्राह्मण हो गये। पृथुवैन्य आदि राजा था, इसको भार्गव ऋषियों में परिवर्तन किया गया है। ऋग्वेद में दिवोदास का बहुधा उल्लेख मिलता है। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी एक प्रसिद्ध ऋषि था। गृत्समद और शौनक काशि वंशीय क्षत्रिय थे, जो बाद में ब्राह्मण हो गये। इनके मन्त्र द्वितीय मण्डल में मिलते हैं।

अङ्गिरा कुल के 33 ऋषि पुराणों में उल्लिखित हैं। अङ्गिरा ऋषि प्रचेता के वंशज और पृथुवैन्य के समकालीन थे। अङ्गिरा का यथार्थ इतिहास प्रायः पुराणों में भी विस्मृत सा है। अङ्गिरा के वंश में सबसे अधिक प्रसिद्ध ऋषि बृहस्पति और भारद्वाज थे, इसी वंश में कण्व ऋषि हुये जिनके वंशजों ने ऋग्वेद, अष्टममण्डल के मन्त्रों का निर्माण किया। 33 आङ्गिरस ऋषियों के नाम ये हैं—(1) अङ्गिरा (2) त्रित (3) भरद्वाज (4) ऋतवाक् (5) गर्ग (6) शिनि (7) संकृति (8) गुरुवीत (9) मान्धाता (10) अम्बरीष (11) युवनाश्व (12) पुरुकुत्स (13) त्रसदस्यु (14) सदस्युमान् (15) आहार्य (16) अजमीढ़ (17) ऋषभ (18) कपि (19) पृषदश्व (20) विरूप (21) कण्व (22) मुद्गल (23) उतथ्य (24) शरद्वान् (25) वाजश्रवा (26) अयास्य (27) सुवित्ति (28) वामदेव (29) असिज (30) बृहदुक्थ (31) दीर्घतमा (32) कक्षीवान्। यहां भी पुराणों में एक नाम रह गया है।

अङ्गिरा गोत्र बहुत विशाल था, इस कुल के अनेक पक्ष बन गये। इस कुल में अनेक क्षत्रिय कुल भी सम्मलित हो गये जैसा कि पूर्वोक्त सूची से स्पष्ट है। इनमें गर्ग, शिनि, संस्कृति, गुरुवीत मान्धाता, अम्बरीष, पुरुकुत्स आदि चन्द्र-वंशीय और सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे। कण्व के पूर्वज भी चन्द्रवंशीय क्षत्रिय थे। कण्व के पिता का नाम नृपद् था। कण्व की गणना प्राचीनतम ऋषियों में होती है। इनका बनाया हुआ अष्टम मण्डल है। उपर्युक्त सूची में बृहस्पति का नाम नहीं मिलता। वाजश्रवा एक वेदव्यास भी थे। अयास्य ऋषि ऐक्ष्वाक राजा हरिश्चन्द्र के ऋत्विक् थे। मुद्गल एक पाञ्चाल राजा और ऋषि थे। वामदेव ऋषि और उनके वंशजों का ऋग्वेद का चतुर्थ मण्डल है। दीर्घतमा मामतेय और उनके पुत्र कक्षीवान् के मन्त्र प्रथम मण्डल में मिलते हैं, 'अस्य वामस्य' प्रसिद्ध आध्यात्मिक सूक्त के द्रष्टा दीर्घतमा थे, इसका विशेष विवरण आगे लिखा जायेगा।

कश्यप वंश के छः मन्त्रद्रष्टा ऋषि पुराणों में उल्लिखित हैं— (1) कश्यप (2) वत्सार (3) नैध्रुव (4) रैभ्य (5) असित (6) देवल। इस समय कश्यप कुल के ऋषियों के मन्त्र ऋग्वेद में बहुत कम मिलते हैं। कश्यप देवों और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असुरों के जनक (प्रजापति) थे। शौनक ने इनके एक सहस्र सूक्तों (जिनमें 500499 मन्त्र थे) का वेद लुप्त है। सम्भवतः यही आद्यवेद था, इसका कुछ अंशमात्र ही वर्तमान वेद है। इन्हीं मन्त्रों के आधार पर उत्तरकालीन ऋषियों ने अपने अपने मन्त्र बनाए। कश्यप कृत वेद का ही नाम सम्भवतः 'प्राजापत्य श्रुति' था। कश्यप को भी यह 'प्राजापत्यश्रुति' प्रचेता आदि पूर्व ऋषियों से प्राप्त हुई थी।

अत्रि वंश के ये ऋषि प्रधान हैं—(1) अत्रि (2) अर्चनाना (3) श्यावाश्व (4) गविष्ठर (5) आविहोत्र (6) पूर्वातिथि। इनमें से अर्चनाना आदि पांच ऋषि उत्तरकालीन ऋषि थे, अत्रि के वंश में ही सोम और बुध के मंत्र ऋग्वेद में मिलते हैं, सोम और बुध बहुत प्राचीन क्षत्रिय ऋषि थे।

वासिष्ठ वंश के केवल सात मन्त्रद्रष्टाओं का पुराणों में उल्लेख है—(1) वसिष्ठ (2) शक्ति (9) पराशर (4) इन्द्रप्रमिति (5) भरद्वसु (6) मैत्रावारुणि वसिष्ठ (7) कुण्डिन।

तृतीय मण्डल के द्रष्टा कौशिक विश्वामित्र के वंशज पुराणों में इस प्रकार उल्लिखित हैं—(1) विश्वामित्र (2) देवरात (3) उद्धल (4) मधुच्छन्दा (5) अघमर्षण (6) अष्टक (7) लोहित (8) कत (9) कील (10) देवश्रवा (11) रेणु (12) पूरण (13) धनञ्जय।

अगस्त्य सहित दृढ़द्युम्न और इध्मवाह ये तीन आगस्त्य ऋषि पुराणों में उल्लिखित हैं। पुराणों में वैवस्वत मनु और पुरूरवा ऐल—दो क्षत्रिय तथा भलन्दन, वत्स और संकील—ये तीन वैश्य ऋषि कहे गये हैं।

अब मण्डल क्रम से कुछ महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध ऋषियों की सूची प्रस्तुत की जाती है :—

ऋग्वेद प्रथम मण्डल के प्रसिद्ध ऋषि ये हैं—मधुच्छन्दा, जेता, मेधातिथि काण्व, शुनशेप आजीगर्ति, हिरण्यस्तूप आङ्गिरस, कण्व घोर, प्रस्कण्व काण्व, सव्य आङ्गिरस, नोधा गौतम, पराशर शाक्त्य, गोतम राहूगण, कुत्स आङ्गिरस, कश्यप मारीच, कुत्स आङ्गिरस, कक्षीवान्, परुच्छेप दैवोदासि, दीर्घतमा, अगस्त्य मैत्रावरुणि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय मण्डल के ऋषि—गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र), भार्गव शौनक, सोमाहुतिर्भार्गव और कूर्म गार्त्समद।

तृतीय मण्डल के ऋषि—विश्वामित्र गाथी, ऋषभ वैश्वामित्र, कात्य उत्कील, कत वैश्वामित्र, कौशिक गाथी, देवश्रवा, देववात, कुशि ऐषीरथि, प्रजापति वैश्वामित्र।

चतुर्थ मण्डल के ऋषि—वामदेव गौतम, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य, पुरुमीढ़, अजमीढ़।

पञ्चम मण्डल के ऋषि—बुध, गविष्ठिर, कुमार, वसुश्रत, इष, गय, सुतंभर, धरुण, पुरु, द्वित, वव्रि, प्रयस्वान्, सस, विश्वसामा, द्युम्न, वसुयव, त्रैवृष्णस्त्र्यरुण, विश्ववारा, (सभी आत्रेय वंशीय ऋषि), गौरवीतिशाक्त्य, बभ्रू अत्रेय, अवस्यु, गातु, प्राजापत्य संवरण, प्रभुवसु आङ्गिरस, भौम, काश्यप अवत्सार, सदापृण आत्रेय, प्रतिक्षत्र आत्रेय, प्रतिरथ, प्रतिभानु, प्रतिप्रभ, स्वस्त्यात्रेय, श्यावाश्व आत्रेय, अर्चनाना, रातहव्य, यजत, उरुचक्रि, बाहुवृक्त, पौर, अवस्यु, सप्तवध्रि, सत्यश्रवा, एवायामरुत्।

षष्ठ मण्डल के ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्य, वीतहव्य, सुहोत्र भारद्वाज, शुनहोत्र, नर, शंयु, गर्ग, ऋजिश्वा, पायु।

सप्तम मण्डल के ऋषि—मैत्रावरुणि वसिष्ठ, शक्ति वासिष्ठ।

अष्टम मण्डल के ऋषि—प्रगाथ घौर काण्व, मेधातिथि, प्लायोगि आसङ्ग, शश्वती, प्रियमेध, देवातिथि, ब्रह्मातिथि, वत्स, पुनर्वत्स, सध्वंस, शशकर्ण, पर्वत, नारद, गोषूक्त, अश्वसूक्त, इरिम्बिठि, सोभरि, विश्वमना, मनुर्वैवस्वत, कश्यप मारीच, नीपातिथि, श्यावाश्व, नाभाक, अर्चनाना, विरूप, त्रिशोक, वश, त्रित, प्रस्कण्व, पुष्टिगु, श्रुष्टिगु, आयु, मेध्य, मातरिश्वा, कृश, पृषध्र, सुपर्ण, भर्ग, प्रगाथ, मत्स्य, साम्मद, पुरुहन्मा, सुदीति, पुरुमीढ़, हर्यत, गोपवन, कुरुसुति, कुत्नु, एकद्यू, कुसीदी, उशना काव्य, कृष्ण आङ्गिरस नोधा, नृमेध, पुरुमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, तिरश्ची, रेभ, नेम, जमदग्नि, प्रयोग।

नवम मण्डल के ऋषि—मधुच्छन्दा, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, देवल, दृढच्युत, इध्मवाह, नृमेध, प्रियमेध, बिन्दु, गोतम, श्यावाश्व, त्रित, प्रभु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसु, रहूगण, बृहन्मति, अयास्य, कवि (भार्गव) उचथ्य, अवत्सार, अमहीयु, जमदग्नि, निध्रुवि, कश्यप, भृगु, वैखानस, भरद्वाज, वत्सप्रिभालन्दन, हिरण्यस्तूप, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, पवित्र, कक्षीवान्, वसु, वाच्य, वेन भार्गव, प्रतर्दन दैवोदासि, इन्द्रप्रमीतिवसिष्ठ, वृषगण, मन्यु, उपमन्यु, व्याघ्रपाद्, शक्ति, कर्ण-श्रुत्, मृडीक, वसुक्र, पराशर, कुत्सअम्बरीष, रेभ, सुनु, अन्धीगु, ययाति, नहुष, मनुसंवरण, वाच्य वैश्वामित्र, त्रित, द्वित, पर्वत, नारद, अग्नि, चक्षु, मनु (चाक्षुष), गौरवीति, त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण, अनानत, शिशु आङ्गिरस।

दशम मण्डल के ऋषि—त्रित आप्त्य, त्रिशिरास्त्वाष्ट्र, सिन्धुद्वीप, वैवस्वती यमी, आङ्गि हविर्धान, वैवस्वत यम, शङ्ख यामायन, दमन यामायन, देवश्रवा, यामायन, संकुसुक यामायन, मथित यामायन, विमद ऐन्द्र, वासुक्र, वसुक्र वसुक्रपत्नी, कवष ऐलूष, लुश धानाक, सौर्य, मुष्कवान्, घोषा, कृष्ण आङ्गिरस, वत्सप्रि, सप्तगु, वैकुण्ठ इन्द्र, बृहदुक्थ, वन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु (गौपायना), नाभानेदिष्ठ मानव, गय प्लात, वसुकर्ण, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, लौक्य, गौरवीति, सिन्धुक्षित्, ऐरावत, स्यूमरश्मि, विश्वकर्मा भौवन, मन्यु तापस, सावित्री, इन्द्र, पायु, मूर्धन्वान्, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व अर्बुद, पुरूरवा, वरु, आथर्वण भिषक्, देवापि, वम्र, दुवस्यु, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दुर्मित्र, भूतांश, दिव्य, पणि, जुहु, जमदग्नि, अष्टादंष्ट्र, नभःप्रभेदन, शमप्रभेदन, सध्रि, उपस्तुत, स्थौर, भिक्षु, उरुक्षय, लव, बृहद्दिव, हिरण्यगर्भ, चित्रमहा, वेन, वागाम्भृणी, शैलूषि, कुशिक सौभर, विहव्य, परमेष्ठी, सुकीर्त्ति, शकपूत, सुदास, मान्धाता, कुमार यामायन, जूति, ऋष्यशृङ्ग आदि वातरशना ऋषि, भरद्वाजादि सप्तर्षि, अङ्ग, विश्वावसु, अत्रि, तार्क्ष्य, इन्द्राणी, ऐरम्मद, सुवेद, पृथु वैन्य, अर्चन्, मृडीक, श्रद्धा, शास, शिरिम्बिष्ठ, शची, पूरण, प्रचेता, अनिल, शबर, इट, संवर्त, ध्रुव, अभीवर्त, ऊर्ध्वग्रावा सर्प, पतङ्ग, अरिष्टनेमि, शिबि औशीनर, काशिराज प्रतर्दन, रौहिदश्व वसुमना, जय ऐन्द्र, प्रथवासिष्ठ, तपुर्मूधा, त्वष्टा, वातायन उल, वत्स, श्येन, सार्पराज्ञी, अघमर्षण, संवनन।

ऋग्वेद के देवता (दैवतविज्ञान)—ऋग्वेद ऋक् या ऋचाओं का संग्रह है ऋचा, का मूलार्थ है स्तुति। अतः ऋग्वेद का मुख्य विषय है देवों की स्तुतियां।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः इस प्रकरण में ऋग्वेद में उल्लिखित देवताओं और उनकी स्तुतियों पर विचार करेंगे।

ऋग्वेद के प्रत्येक मण्डल में क्रमशः—अग्नि, इन्द्र, आदित्य, वरुण विश्वेदेव, द्यावापृथिवी, रुद्र, मरुत्, सविता, अश्विनौ, सोम, पूषा, अदिति, विष्णु, वायु, मित्रावरुण, सरस्वती, उषा, ऋभु इत्यादि देवों की स्तुतियाँ की गई हैं। पहिले अग्नि की स्तुति है, फिर इन्द्र की सर्वाधिक स्तुतियां हैं, इसके पश्चात् अन्य देवताओं की स्तुतियाँ हैं। थोड़े से अन्तर के साथ प्रत्येक मण्डल में प्रायः यही क्रम है।

प्राचीन भारतीय नैरुक्तिक या याज्ञिक विधान के अनुसार प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई देवता होता है। आचार्यों के मत में वेदवेत्ता को प्रत्येक मन्त्र के देवता या देवताओं का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। दैवतज्ञ ही मन्त्रों के अर्थ को समझ सकता है। कहा भी है—

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति ।। (बृहद्दे 1/2)

याज्ञिकों के मत में मन्त्रों से सम्बन्वित देवताओं को ठीक-ठीक जाने विना लौकिक या वैदिक कृत्य का फल प्राप्त नहीं होता।

अग्नि—वैदिक शास्त्रों के अनुसार ऋग्वेद में प्रमुखतः अग्नि की ही स्तुति है। ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र ही अग्नि की स्तुति करता है—

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।।

"मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ, जो पुरोहित और यज्ञ का देव तथा ऋत्विक् है, वही श्रेष्ठ रत्नों का धाता या धारक होता (हवनकर्त्ता) है।" यज्ञ और अग्नि का घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्राचीन भारत में यज्ञ जीवन का एक प्रधान अङ्ग था, अथवा भारतीयों की जीवन पद्धति का नाम ही यज्ञ था। यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म माना जाता था। वैदिक ऋषि 'अग्नि' को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ शक्ति मानकर उसकी विविध रूपों में उपासना करते थे। अग्नि का एक रूप भूत, वर्तमान और भविष्यत् का कर्त्ता के रूप में द्युलोक में सूर्य है, यही प्रजापति है, यही संवत्सर है, सबके प्रभव और प्रलय का कारण यही सूर्यरूपी अग्नि है। सत और असत् की योनि यही प्रजापति रूपी सूर्य है। इसी सूर्य के तीन रूप तीनों लोकों में विभिन्न नामों से स्तुत किये हैं। नैरुक्तिकों के मत में भी तीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही प्रधान देवता हैं—अग्नि पृथ्वी स्थान, वायु या इन्द्र अन्तरिक्ष स्थान, सूर्य द्युलोकस्थ। इनके महान् गुणों के कारण अनेक नाम और अनेक स्तुतियाँ की गई हैं। ऋषिगण पृथ्वी में अग्नि को 'पवमान', मध्यलोक में 'अग्नि वनस्पति और दिव्यलोक में 'अग्नि शुचि' कहते हैं। अग्नि देवताओं में अग्रणी है, इस लिए इसका यह नाम पड़ा। वेदमन्त्रों में अग्नि की जातवेद, वैश्वानर, इन्द्र, सूर्य, वायु, द्रविणोदा, तनूनपात्, नाराशंस, वनस्पति, इत्यादि नामों से स्तुति की है। अग्नि के साथ ही ऋग्वेद में वनस्पति, स्वाहाकृति, अश्व, पक्षी, मण्डूक ग्रावा, अक्ष, रथ, दुन्दुभि, इषु हस्तघ्न, धनु, अश्वाजनी, वृषभ, उलूखल, नदी, आप, औषधि, रात्रि, अग्नायी, अरण्यानी, श्रद्धा, इला, पृथ्वी, द्यावा पृथ्वी, मुसल, हविर्धान, आदि की भी स्तुति की गई है। यज्ञ में इह लोक, प्रातः सवन, वसन्त, शरद्, अनुष्टुप्, त्रिवृत्, गायत्री, रथंतर साम, आप्त्यगण और वसुगण का भी अग्नि से सम्बन्ध है। अग्नि के साथ इन्द्र, मरुत, सोम, वरुण, पर्जन्य, ऋतु और विष्णु की भी यज्ञ में स्तुति होती थी।

पाश्चात्य वैदिक मनीषी मैकडानल कीथादि ऋचाओं में स्तुत अग्नि को साधारण अग्नि मानते थे, उनके विचार में आर्यों ने भय और उपयोग के कारण अग्नि की स्तुतियां बनाईं। प्राचीन याज्ञिक विद्वानों के अनुसार अग्नि केवल पार्थिव अग्नि नहीं है, यह वैश्वानर अग्नि सब लोकों का राजा है जो सब लोकों का आश्रयभूत है।[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती 'अग्नि' को ईश्वर की पर्यायवाची मानते थे। उसके प्रमाण में यह मन्त्र उदाहृत किया जाता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।

(ऋ॰ 1/164/46)

'इसी अग्नि को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुवर्ण गरुत्मान्, इत्यादि नामों से कहते हैं। विद्वान् एक ही शक्ति को बहु प्रकार सम्बोधित करते हैं, वही अग्नि-यम और मातरिश्वा भी है।"

---

1. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ (ऋ॰ 1/98/1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगी-अरविन्द अग्नि को मानव का प्रकाशपूर्ण दिव्य संकल्प मानते थे।[1] शुनशेप ऋषि अग्नि को अमृत-देवों में प्रथम मानते हैं, जिनकी कृपा से वह पुनः अपने पितृलोक (जन्म-स्थान) और माता-पिता के दर्शन कर सकें।[2]

ऋग्वेद के मन्त्रों में अग्निदेव को बार-बार देवताओं का दूत कहा गया है। यह देवताओं का मुख है, इसके माध्यम से सभी देव भोजन (हविः) प्राप्त करते हैं। अग्नि की अपांनपात् (जलों का पुत्र), सहस्पुत्र, द्रविणोदाः जातवेदाः, वैश्वानर, रुद्र, आदि अनेक नामों से स्तुति की है। सबसे प्रथम भृगु या अथर्वाङ्गिरसों ने अग्नि को खोज निकाला था। अग्नि तीनों लोकों का देवता है और तीनों लोकों में उत्पन्न होता है, पृथ्वी में वनस्पति से अन्तरिक्ष में जल से विद्युत रूप में, और दिव्यलोक में सूर्य रूप में स्थित है। यह यज्ञों में प्रशस्ति प्राप्त करता है, इसलिए इसको ऋषि 'नाराशंस' कहते हैं। गृहों का अधिष्ठाता होने के कारण 'गृहपति' यज्ञों में आह्वान होने से 'आहवनीय' और पाक क्रिया में कुशल होने से 'दक्षिणाग्नि' कहते हैं। अग्निहोत्र, अग्न्याधेय आदि यज्ञों का मुख्य देवता अग्नि ही है और श्रौतयज्ञ सर्वदा 'आहवनीय अग्नि' में किये जाते थे। गृहकर्म गार्हपत्याग्नि में सम्पन्न होते थे, पाकयज्ञ दक्षिणाग्नि में किये जाते थे। अग्नि के द्वारा ही देवों के साथ पितृयज्ञ (पितृपूजन, श्रद्धादि) होते थे। अग्नि को ही हव्यवाहन और कव्यवाहन कहते थे।

सोम का पाता भी अग्निदेव ही था। अतः प्राचीन आर्यों का सर्वस्व अग्नि ही था। अग्नि ही ब्राह्मण और पुरोहित, कवि और ऋत्विक् सब कुछ था। यही श्येन, गरुत्मान्, घृतपृष्ठ, हंस, शोचिष्केश, तीक्ष्णदंष्ट्र, रुक्मदन्त, गोपा, पुरन्दर, आदि अनेक नामों और विशेषणों से सम्बोधित किया गया है।

अग्नि के मुख कर्म हविः का वहन और देवों का आह्वान था। निरुक्तकार ने लिखा है—'अथास्य कर्म—वहनञ्च हविषामावाहनञ्च देवानां, (नि० 7/3/1) अग्नि से धूम उत्पन्न होता है, धूम से अभ्र (मेघ) और अभ्र से वृष्टि उत्पन्न होती है (श० ब्रा० 5/3), अतः समस्त जगत् का प्राण व जीवन अग्नि है, अतः ऋग्वेद में अग्नि की इतनी महिमा गाई है।

---

1. द्रष्टव्य—वेदरहस्य, द्वि० खण्ड।
2. अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
   स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च। (ऋ० 1/24/2)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्र—सूक्तों की दृष्टि से ऋग्वेद में सर्वाधिक स्तुत देव 'इन्द्र' है। इसकी स्तुति ऋग्वेद के 256 सूक्तों में है, जोकि इस वेद का चतुर्थांश है। भाषा-विज्ञान, नैरुक्तिक वृत्त एवं ऋग्वेद के अनुशीलन से सिद्ध होता है कि 'इन्द्र' अग्नि का ही एक प्राचीन नाम था। उत्तरकाल में यह अन्तरिक्ष का देवता 'वायु' या विद्युत् या पर्जन्य का पर्यायवाची भी माना गया। प्राचीनतम ऋषि कश्यप ने एक सहस्र सूक्तों में अग्नि की 'इन्द्र' नाम से स्तुति की थी, जबकि कश्यप के पुत्र ऐतिहासिक देव (भारतवासी) इन्द्र का जन्म भी नहीं हुआ था। निरुक्तकार यास्क ने 'इन्द्र' शब्द की 32 व्युत्पत्तियाँ बतलाई हैं, उनसे भी यह सिद्ध होता है कि यह 'अग्नि' का ही 'पर्याय' था। अग्नि के समान तेजस्वी होने से देवराज (कश्यप पुत्र) का 'इन्द्र' नाम हुआ, इसका जन्म का नाम कुछ और ही होगा, जो अज्ञात है।

'इन्द्र' का निवास अन्तरिक्ष लोक माना गया है। यज्ञसवनों में माध्यदिन सवन का यह देवता होता है क्योंकि मध्यदिन में सूर्य (इन्द्र) सर्वाधिक तेजस्वी होता है। ऋतुओं में ग्रीष्म, छन्दों में त्रिष्टुप् स्तोत्रों में पञ्चदश स्तोम, सामों में वृहत्साम का इन्द्र से सम्बन्ध है। निरुक्त के अनुसार रसानुप्रदान, वृत्रवध और जो कुछ भी बलकृति है, वह सब इन्द्र का कर्म है।[1] इन्द्र के आश्रय में ही पर्जन्य, रुद्र, वायु, वृहस्पति, वरुण, क, मृत्यु और वृह्मस्पति रहते हैं। इनके अतिरिक्त मन्यु, विश्वकर्मा, मित्र, क्षेत्रपति, यम, तार्क्ष्य, वास्तोष्पति, सरस्वान्, अपांनपात् दधिक्रा, सुपर्ण त्वष्टा, सविता, मरुत, अङ्गिरा इत्यादि का भी इन्द्र से ही सम्बन्ध है।

ऋग्वेद में (वृहद्देवता के अनुसार) छब्बीस नामों से इन्द्र की स्तुति की है—वायु, वरुण, रुद्र, इन्द्र, पर्जन्य, वृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, क्षेत्रपति, ऋत, ऋतस्य श्लोक, वास्तोष्पति, वाचस्पति, अदिति, क, यम, मित्र, विश्वकर्मा सरस्वान्, वेन, मन्यु, असुनीति, अपानपात्, दधिका, धाता, तार्क्ष्य, पुरूरवा, मृत्यु, सविता, भग, पूषा, विष्णु केशी, विश्वानर, वृषाकपि, इत्यादि। इन नामों में से निदर्शनार्थ कुछ की व्युत्पत्तियाँ यहाँ दिखलाई जाती हैं। यास्क ने लिखा

---

(1) रसादानं तु कर्मास्य वृत्रस्य च निबर्हणम्।
स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य बलस्य निखिला कृतिः॥ (बृहद्दे० 2/6)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है—इन्द्र दूरां दृणातीति वा इरां ददातीति वा'[1] (नि. 10/1/18)। इरा (इला) अन्न का नाम है, क्योंकि वायुकृत वर्षा से ही जल और अन्न की उत्पत्ति होती है। अतः जलों का भेत्ता या अन्नों का दाता 'इन्द्र' है। 'इन्द्र' शब्द की एक व्युत्पत्ति 'इन्ध' (जलने) धातु से भी है, अतः जो पदार्थों का जलाता है, वह 'अग्नि' भी 'इन्द्र' पद से कहा गया है। यही सूक्ष्म रूप से तीनों लोकों को व्याप्त किये हुए है, इसलिए ऋषियों ने इसको 'वायु' कहा है। वायु-र्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान:) वायु ही वृष्टि का प्रदाता है, इसलिए तृप्तिकारक वर्षा का नाम ही पर्जन्य है। यही जलों का देवता इन्द्र 'वरुण' नाम से स्तुति किया गया है। क्योंकि यह तीनों लोकों को आद्रता से ढके हुए हैं।[2]

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों मैक्डानल, हिलब्रान्ट कीथ इत्यादि के अनुसार 'इन्द्र' आर्यों का राष्ट्रीय देवता था, जो युद्धों का विजेता था।

ऋग्वेद में इन्द्र, वृत्र, नमुचि आदि असुरों का वध करता है। इन्द्र का मुख्य शत्रु वृत्रासुर कहा गया है। निरुक्त में यास्क ने स्वयं प्रश्न किया है कि 'वृत्र' कौन है, यह मेघ है, ऐसा निरुक्तकारों का मत है, इतिहास में वह त्वष्टा का पुत्र है—'तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः जल और विद्युत के मिश्री भाव कर्म से वर्षा होती है। इसलिए मन्त्रों में इन्द्र-वृत्र युद्ध का औपमिक वर्णन है। मन्त्रों में ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन नहीं है। स्वयं ऋषि ने ऋग्वेद में कहा है—

न त्वं युयुत्से कतमच्च नाहर्न ते मित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रन्नु पुरा युयुत्से ॥ (ऋ)०

हे इन्द्र ! न तो तुम किसी से लड़े, न तुम्हारा कोई मित्र है, न तुम्हारा कोई शत्रु है, यह केवल माया है, जिनको मन्त्रों में युद्ध कहा गया है इस-

---

1. चतुर्विधानां भूतानां प्राणो भूत्वा व्यवस्थितः।
ईष्टे चैवास्य सर्वस्य तेनेन्द्र इति स स्मृतः ॥
इरां दृणाति यत्काले मरुद्भिः सहितोऽम्बरे।
रवेणा महता युक्तस्तेनेन्द्रमृषयोऽब्रुवन् ॥ (बृहद्दे॰ 2/35-36)
2. त्रीणीमान्यावृणोत्येको मूर्तेन तु रसेन यत्।
तयैनं वरुणं शक्त्या स्तुतिष्वाहु कृपण्यवः ॥ (तदेव 2/33)
3. इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (इन्द्र माया से बहुत रूप धारण करता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि मन्त्रों में उस देवासुर संग्राम का वर्णन नहीं है, जिसका इतिहास में वर्णन है—"तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्विते" (श० ब्रा० 11/1/6/9) मन्त्रों में इन्द्र द्वारा वृत्रवध, वज्र धारण, असुर संहार आदि से ऐतिहासिक इन्द्र का भ्रम होता है पर वास्तव, में वैसी बात है नहीं। यास्क ने कहा है कि ऋषियों को गाथामिश्र मन्त्रों से प्रीति होती थी, इसलिए ऐसी प्रतीति होती है।

ऋग्वेद में इन्द्र को हरिवाहन (हरे घोड़ों वाले रथ का स्वामी), शतक्रतु (सौ यज्ञकर्त्ता), मरुत्वान्, मरुत्पति इत्यादि नामों से सम्बोधित करके स्तुत किया है। इन्द्र के रथ के निर्माता विभवा' वाज और ऋभु नाम के श्रेष्ठ शिल्पी एवं अवर देव थे। अग्नि, वायु, पूषा आदि इन्द्र के भ्राता कहे गये हैं। इन्द्र की पत्नी का नाम शची है। 'शचिपति' नाम से इन्द्र का बहुधा उल्लेख है। शची का अर्थ कर्म, बुद्धि या शक्ति-निरुक्तादि में बतलाया गया है।

मन्त्रों में इन्द्र का प्रमुख शत्रु 'वृत्र' है। वृत्र ने जलों को रोक लिया जैसे पाणियों ने गायों को रोक था। तब जलों का बिल ढका हुआ था, इन्द्र वृत्र को मार दिया और तब जल बहने लगे—

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वां अप तद्ववार ॥ (ऋ० 1/32/11)

इस सम्बन्ध में विन्टरनीत्स ने पाश्चात्य मत का इस प्रकार दिग्दर्शन कराया है—"इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन्द्रवृत्र के इन युद्धों में कोई बड़ी प्राकृतिक घटना ही निबद्ध है। वृत्र की मृत्यु पर धरती-आकाश कांप उठते है। वृत्र की हत्या, एकही बार नहीं कितनी ही बार होती है।......वेद के प्राचीन भाष्यकार हमें बतलाते हैं कि इन्द्र बिजली और तूफान का देवता है।......वृत्र दुर्भिक्ष का अधिष्ठाता दैत्य है।......इन्डो यूरोपियन प्रागैतिहासिक युग में 'थुनार' भी एक वज्र सा हथौड़ा लेकर बिजली और तूफान के अधिष्ठाता रूप में उधर मिलता भी है।" (प्रा०भा०सा०प्रा० भाग पृ० 62)

इन्द्र ने वृत्र ही नहीं, नमुचि, चमुरि शम्बर, इत्यादि अनेको दैत्यों का वध किया। उसकी श्मश्रु श्वेत है, हरिवाहन है, योद्धाओं का योद्धा है। सोम के तीन सरोवरों को झट पी गया। इन्द्र की अतुलित शक्ति का वर्णन करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषि उसे एक ऐतिहासिक व्यक्ति के समान और ईश्वर के तुल्य वर्णन करता है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् । यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः । (ऋ० 2/12/1) "जो पैदा होते ही प्रथम (अग्रणी) मनस्वी था, जिसने अपने कर्म से देवों को विभूषित किया और जिसके बल से पृथिवी-आकाश कांपते हैं। हे लोगो वही इन्द्र है।"

वरुण—वरुण की स्तुति ऋग्वेद के केवल 12 सूक्तों में मिलती है । परन्तु इन सूक्तों का दार्शनिक आदि दृष्टि से पर्याप्त महत्व है। वरुण विश्व का नियामक या प्रशासक देव है, वह धर्मपति है, महान् असुर (शक्तिमान् परमात्मा है। वरुण के सहस्रों धर्मपाशों से कोई मुक्त नहीं हो सकता । वरुण पाप-पुण्य सत्या-सत्य, नियमानियम का प्रेरक एवं संचालक है। वरुण के गुप्तचर (स्पशः—सिपाही) चराचर संसार में घूमते हैं। वह पापों से क्रुद्ध हो जाता है और उस पापी को पाशों से जकड़ देता है। परन्तु जो उसकी भक्ति करते हैं उनके प्रति परम दयालु हो जाता है। शुनःशेप ऋषि वरुण की स्तुति करता हुआ उसके तीन प्रकार के पाशों का उल्लेख करता है—उत्तम, मध्यम और अधम पाश—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्वाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥

ऋग्वेद के मन्त्रों में वरुण के व्रत (नियम) का बार-बार उल्लेख है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् विन्टरनीत्स ने लिखा है—'वरुण के नाम से अधिक सूक्त हमें नहीं मिलते, और शायद वैदिक देवों में वरुण ही अकेला ऐसा देवता है जो मनुष्यों से ऊपर ही रहता है।''''''बाईबिल के 'साम्ज' की कुछ तुलना केवल इन्हीं वरुण गीतों के साथ हो सकती है।" (प्रा० भा० सा० भाग० 1, पृ०-60) । पुरातत्त्वविदों के अनुसार फारसी धर्म ग्रन्थ अवेस्ता का 'असुरमज्द' देव और ऋग्वेद का 'असुर महत्' यही वरुण है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी ईरान में 'यम से पूर्व 'वरुण' का साम्राज्य था।

ऋग्वेद में वरुण को विराट् भगवान् के रूप में वर्णित किया गया है । वरुण के नेत्र सूर्य चन्द्रमा हैं, वह इन नेत्रों द्वारा संसार को देखता है और उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप पुण्यों का फल देता है। वरुण कुशासन पर बैठता है। स्वर्णिम वसन धारण करता है वह ब्रह्माण्ड का प्रशासन करता है। वरुण ने ही सूर्य का निर्माण किया, पृथिवी को बनाया, पृथिवी पर नदी पर्वतों का निर्माण किया। पर्वतों पर वरुण ने सोम को उगाया। वरुण रात्रि और दिन का नियमन करता है, पक्षियों के मार्ग को अन्तरिक्ष और नावों के मार्ग को समुद्र में जानता है। समस्त विश्व उसका वशवर्ती है। वह शक्तिपुञ्ज मेघों को पृथिवी पर भेजता है, वह सूर्य की परिक्रमा द्वारा ब्रह्मांड को माप रहा है। उसके नियम से ही तारा नक्षत्र आकाश में रात्रि को चमकते हैं और दिन में न जाने कहां विलुप्त हो जाते हैं—

अमी हि ऋक्षा निहितास उच्चा ददृशे नक्तं कुहच्चिछिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि नक्तं चन्द्रमा अभिचाकशीति ॥

वरुण के व्रत (नियम अद्भुत हैं, रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशित होता है। यास्क ने निरुक्त में, वरुण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'वरुणो वृणोतीति सतः', इसका व्याख्यान शौनक के बृहद्देवता में इस प्रकार है—

त्रीणीमान्यावृणोत्येको मूर्तेन तु रसेन यत्।
तयैनं वरुणं शक्त्या स्तुतिष्वाहुः कृपण्यवः ॥ (बृ० 2/33)

'अपने मूर्त रस (जल) द्वारा यह तीनों लोकों को आवृत करता है। अतः कृपाकांक्षी ऋषिगण इस (मेघ-इन्द्र) को वरुण नाम से स्तुति करते हैं।" इसकी पुष्टि निम्न ऋचा से होती है—

नीचीनबारं वरुणः कबन्धं प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।

तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टि व्युनत्ति भूम ॥ (ऋ० 5/85/3)

'वरुण नीचे के द्वार से कबन्धरूपी मेघ का निर्माण करता है। इस द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष की उत्पत्ति होती है इसमें यह वरुण विश्व भुवन का राजा यव के समान भूमि को आर्द्र करता है।"

यही वरुण इतिहास पुराणों में समुद्र का अधिपति 'यादसांपति' है। मैकडानल कीथादि विद्वान् 'आकाश' को ही वरुण मानते हैं, वेद में आकाश को भी समुद्र कहते हैं। ऐतिहासिक वरुण कश्यप अदिति का ज्येष्ठ पुत्र था। पुराणों में इसकी राजधानी 'सुषा' नगरी का वर्णन है। वरुण की प्रजा अप्सरा और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गन्धर्व हैं, अश्व इनका मुख्य वाहन था। यह ऐतिहासिक वरुण देवाधिदेव वरुणों की प्रतिच्छाया के रूप में वर्णित है।

विष्णु—ऋग्वेद के केवल छः सूक्तों में विष्णु की स्तुति मिलती है। स्थान की दृष्टि से विष्णु का ऋग्वेद में बहुत कम महत्व है, परन्तु उत्तरकाल में इनका महात्म्य सब देवताओं से बढ़कर हो गया पुरुष या पुरुषोत्तम विष्णु की संज्ञा प्रसिद्ध हुई, अतः गीता में श्रीकृष्ण ने कहा कि 'मैं' ही लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहलाता हूं; (लोकेवदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः)। निघण्टु में द्युलोकवासी देवों में विष्णु की गणना है (निघण्टु 5/6/11)। श्रीसत्यव्रत सामाश्रमी ने ऐतरेयालोचन ग्रन्थ में लिखा है कि 'यह आदित्य सूर्य ही विष्णु है। अतः जितना भी प्रवह्लित (नियमन) कर्म है वह आदित्य का है। (नि॰ 7/3/4, ऐ अ॰पृ॰ 195)।

सायाणाचार्य ने ऋग्वेदभाष्य में निम्नलिखित मन्त्र की वामनावतार विष्णु परक ऐतिहासिक व्याख्या की है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।"

'वामन विष्णु ने अपने तीन प्रक्रमों से तीनों लोकों को नाप लिया। निरुक्त की दृष्टि में विष्णु के तीन पग सूर्य के तीन प्रहर (प्रातः मध्यदिन और सायं) हैं। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति भी 'विश्' या 'व्याप्लृ' धातु से की गई है यास्क ने विष्णु का ही नाम 'शिपिविष्टि' बतलाया है 'शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः' (नि 5/2/2)। 'शिपि' सूर्य की किरणों को भी कहते हैं, उनसे आविष्ट सूर्य की संज्ञा 'शिपिविष्ट' हुई। अतः विष्णु सूर्य का ही नामान्तर है। गीता में अर्जुन कृष्ण को सम्बोधित करता है'''प्रतपन्ति विष्णो !'

ऋग्वेद के मन्त्रों में विष्णु को त्रिविक्रम, उरुगाय और उरुक्रम भी कहा है। उस क्रम का अर्थ है तीव्रगति वाला और उरुगाय का अर्थ है बहुत ही स्तूयमान देव। त्रिविक्रम पुराणों में वामन विष्णु को ही कहते हैं, जिन्होंने अपने तीन डगों में तीनों लोकों को माप लिया था। विष्णु परमपद का स्वामी है, उसके लोक में मधु का क्षरण करती हुई गोयें रहती हैं। इन गायों को भूरि शृङ्गा कहा गया है। विष्णु को 'उपेन्द्र' भी कहते हैं। इतिहास में इन्द्र का अनुज विष्णु है। वृत्रवध के समय विष्णु ने इन्द्र की महती सहायता की थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराणों के अनुसार त्रिविक्रम विष्णु ने वलि को परास्त करके पाताल भेज दिया और इन्द्र को पुनः देवराज बनाया। इस कथा का स्पष्ट उल्लेख शतपथ ब्राह्मणादि में है। वेदों में तो सूर्य को ही विष्णु कहा है, यह सूर्य रूपी विष्णु त्रिविक्रम-पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को अपनी किरणों से नापते हैं।[1]

सूर्य—यह सूर्य समस्त स्थावर जङ्गम का आत्मा (सूर्य आत्म जगतस्तस्थुषश्च ऋ.) है[2], यही प्रजापति है, यही संवत्सर है, यही प्रत्यक्ष परमात्मा है, ऋषि शौनक ने लिखा है—'जो कुछ था, वर्तमान है, अथवा भविष्य में होगा, और जो कुछ स्थावर जंगम है, उस सबका कारण प्रभव तथा प्रलय का स्थान सूर्य ही है। सत् और असत् की योनि यही प्रजापति है, यही अक्षर, और वाच्य है, यही शाश्वत ब्रह्म है, यह सूर्य अपने को तीन भागों में विभक्त करके इन तीन लोकों में प्रतिष्ठित है एवं अन्य देवों को अपनी रश्मियों में निविष्ट करता है। यह सूर्य अग्नि रूप से तीनों लोकों में स्थित है, अतः ऋषिगण स्तुतियों द्वारा इसकी स्तुति करते हैं। (बृहद्दे. 1/61-64)।

'सूर्य' शब्द की 'सृ गतौ' या 'षु प्रेरणे' धातु से व्युत्पत्ति है। सूर्य को ही सविता, विवस्वान्, आदित्य इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है। यद्यपि सूर्य की स्तुति बहुत थोड़े मन्त्रों में है, परन्तु है बहुत मार्मिक। सूर्य की माता अदिति और पत्नी उषा है, सूर्य की सात किरणें उसके सात अश्व हैं। सूर्य द्युलोक का प्रधान देवता है। आदित्यगण में आदित्य, सप्तर्षिगण देवता हैं। रसादान, रश्मियों द्वारा रसादान और रसधारण सूर्य का ही कर्म है। गायत्री मंत्र सूर्य की स्तुति ही है।

रुद्र—ऋग्वेद में रुद्र को एक भयङ्कर देवता के रूप में चित्रित किया है। यह मरुद्गणों का पिता है, आँधी तूफान का प्रेरक है। यह भयङ्कर और अशिव देवता है, साथ ही रोगों का दूर करने वाला शंकर भी है। यह वृक्ष,

---

1. विष्णते विशतेर्वा स्याद् वेवेष्टे र्व्याप्तिकर्मणः।
   विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्वं सर्वान्तरश्च यः ॥ (बृहद्दे. 2/69)
2. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
   आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋ. 1/115/1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणिवर्ग एवं सृष्टि का संहारक है, तथा स्तुति करने पर दुःखों को दूर भी करता है।

ऋग्वेद में कण्व (1/43), कुत्स (1/114), गृत्समद (2/33) और वसिष्ठ (7/46) ने विशेषतः रुद्र की स्तुति की है। यह विद्युत् रूपी अग्नि अन्तरिक्ष में रोती या गर्जन करती है इसलिये इसको 'रुद्र' कहते हैं।[1] यास्क ने लिखा है—'रुद्रो रौतीति सतः रोरुयमाणो द्रवतीतिवा रोदयतेर्वा, 'यदरुदत् तद्रुदस्य रुद्रत्वम् (काण्ठक 25/1) (नि० 10/1/5)

ऋग्वेद में यह रुद्र स्थिरधन्वा और क्षिप्रेषुदेव है, यह अषाढ़ सहमान, वेधा, तिग्मायुध भी है। अग्नि की संज्ञा रुद्र है अग्निरपि रुद्र उच्यते वि० 10/1/7/, मन्त्र भी है—

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महः (ऋ० 2/1/6)।
'हे अग्नि ! तुम महान् असुर रुद्र (ईश्वर) हो।'

ऋग्वेद में मानवरूप से रुद्र का वर्णन मिलता है। वह पिनाकहस्त और कपर्दी है, गजचर्म का वसन शरीर पर लपेटे रहता है। उसका गौरवर्ण एवं तेजोमय शरीर है। इसकी उपमा मध्यदिन के सूर्य से दी है। यह रुद्र रुक्म और निष्क आभूषण धारण करता है। रुद्र ने मरुतों को पृश्नि गौ के स्तनों से उत्पन्न किया था। मन्त्रों में रुद्र से द्रोह का निषेध है, उसका क्रोध अत्यन्त विनाशकारी है। वह महान् वैद्य है। ऋग्वेद के वजाय यजुर्वेद में रुद्र की अधिक स्तुतियाँ हैं,—

मरुत्—ये रुद्र (विद्युत्) के पुत्र हैं मरुत् का अर्थ वायु होता है वेद में मरुद्गण 49 हैं। यह एक देवता नहीं कही ये रुद्र के पुत्र कहे गए हैं तो कहीं इन्द्र के भ्राता और प्रजा। अगस्त्य ने मरुतों को इन्द्र का भ्राता ही कहा है, जो दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

मरुतों की स्तुति 42 सूक्तों में हैं। 33 सूक्तों में स्वतन्त्र रूपों से एवं शेष

---

1. अरोदीदन्तरिक्षे यद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्।
चतुर्भिऋषिभिस्तेन रुद्र इत्यभिसंस्तुतः॥ (बृहद्० 2/34)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्तों में इन्द्रादि के साथ। मरुत् युद्ध के देवता हैं। यूनानियों का देवता मार्स (Mars—मंगल) इन्हीं मरुतों का अपभ्रंश रूप है। यह मार्स भी युद्ध का देवता है।

मरुत् प्रचण्ड वायु के साथ वृष्टि कराते हैं, वे बड़े सुन्दर शरीर वाले मनमोहक देवता है, उनको ऋग्वेद में रुकम वर्चस, भ्राजदृष्टय सुदानव इत्यादि विशेषणों से विभूषित किया है। वे समान आयु वाले इन्द्र के सहायक योद्धा, रुद्रपुत्र, पृश्निपुत्र हैं। रोदसी इनकी पत्नी है, अर्थात् पृथिवी आकाश दोनों लोकों में ये रहते हैं। मन्त्रों में इनकी ऋष्टि भाले आदि विद्युत् के समान कहे गये हैं, ये परशु, धनु भी सोने के धारण करते है। स्रज, सुशिप्र, भूषण, शिरस्त्राण धारण करते हुए मरुद्गण युद्ध के लिए निकलते हैं।

वे मरुत् अपने वेग से आंधी लाते हैं, पर्वतों को कम्पायमान करते हैं, द्यावापृथिवी को भयभीत करते हैं, वृक्षों को गिरा देते हैं, सूर्य को आवृत कर लेते हैं, इन्द्र के सहायक होकर असुरों का नाश करते हैं। वे इन्द्र के साथ सोमपान भी करते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में इनके 'प्रघासी' इत्यादि सप्तगणों के नाम मिलते हैं।

निम्न मन्त्र में इनका वर्णन द्रष्टव्य है—

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टि भिरश्वपर्णैः।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः। (ऋ० 1/88/1)

'हे मरुतो! तुम दीप्तिमान् रथों पर विद्युतमय रूप से आओ; अश्व पतनों द्वारा ऋष्टि युक्त होकर तुम अपनी सुमाया (कल्याणी प्रज्ञा) से पक्षियों के समान आकर बहुत अन्नों को प्रदान करो।"

उषा—ऋग्वेद के उषासूक्तों में काव्य का सर्वाधिक उन्मेष हुआ है। ऋषि के हृदय में उषा के गीतों को गाते हुए प्रकृति की सम्पूर्ण सुषमा पुष्पित हो उठी है। ऋग्वेद के 20 सूक्तों में उषा की स्तुति गाई गई है।

उषा प्रकाश और सौन्दर्य की देवी है। उषा सूर्य की प्रियतमा है, वह अर्जुनी श्वेत और उज्ज्वल वस्त्र पहिनकर सूर्योदय से पूर्व नृत्य करने से पूर्व ही आकाश पर छा जाती है। सूर्य एक प्रेमी के समान उसका अनुसरण करता है। उषा का रथ प्रकाशवान् है, उसके अश्व रक्ताभ हैं, सूर्य की प्रातः-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालीन रश्मियां ही उसके अश्व हैं, जिन पर सवार होकर उपादेवी मृत्यंलोक में पदार्पण करती है।

ऋग्वेद में उषा को कहीं सूर्य की पत्नी, कहीं रात्रि की भगिनी बतलाया है। उषा की प्रेरणा से चराचर पशु पक्षी और मनुष्य प्रेरित होकर कार्य में लग जाते हैं। उसको ऋषि मघोनी कहते हैं, अर्थात् वह धन की प्रदात्री और वृद्धि की प्रेरक देवी है। उषा शब्द की व्युत्पत्ति 'वस्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'निवास', 'कामना' या चमकना। उषा के विशेषणों का विशेष वर्णन उषा सूक्त में किया जायेगा।

सूर्या—उषा का ही एक रूप सूर्या है, यह भी सूर्य की पत्नी कही गई है। यास्क के अनुसार सूर्योदय के समय अभिसृष्टकालतमा उषा ही सूर्या है। इसका वर्णन द्रष्टव्य है—

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रम्।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥
(ऋ० 10/85/20)

"हे सूर्ये! पति को समर्पण करने के लिए तुम—सुप्रकाशित, निर्मल सर्वरूप हिरण्यवर्ण रूप से वर्तमान सुदीप्त सुखकर अमृतलोक में पधारें।

यास्क के मत में ही ऋग्वेद के अनुसार भी सविता ने सूर्या को सोम को विवाह के लिया दिया। सूर्या विवाह का सूक्त भी आगे उद्धृत किया जायेगा। सूर्य की पत्नी वृषाकपायी, सरण्यू आदि नामों से भी ऋग्वेद में वर्णित हैं।

अश्विनौ—इनका नासत्य नाम भी ऋग्वेद में बहुत प्रसिद्ध है। इतिहास में दो अश्विनीकुमार सूर्य के पुत्र हैं, और देवों के वैद्य हैं। परन्तु ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों या नासत्यों का यही रूप नहीं है। यास्क ने निरुक्त में अनेक प्राचीन मत दिये हैं, जिनमें बतलाया है कि अश्विनौ कौन हैं—

तत्कावश्विनौ ?
द्यावापृथिव्यावित्येके,
अहोरात्रावित्येके,
सूर्यचमसावित्येके,
राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिका;, (नि० 12/1/1)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"ये अश्विन् कौन है, एक मत में द्यावा पृथिवी अश्विन् हैं। एक मत में अहो रात्र अश्विन् हैं, एक मत में सूर्य चन्द्रमा अश्विन् है, इतिहास में अश्विन् पुण्यात्मा दो राजा (राजकुमार) हैं।" अतः यास्क के समय भी अश्विन् देवों का स्वरूप अस्पष्ट था। ज्योतिष ग्रन्थों में अश्विनी नक्षत्र है। इसी प्रकार नासत्य शब्द का व्याख्यान इस प्रकार है, न+असंत्य=अर्थात् सत्य—"नासत्यौ चाश्विनौ। सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णनाभ सत्यस्य प्रणेतारावित्याग्रयणः। नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा।" नि० 6/3/13) "नासत्य अश्विन् हैं। सत्य ही नासत्य है, यह औणंनाभ का मत है। सत्य के प्रणेता नासत्य है यह आग्रयण का मत है। अथवा इतिहास में नासिका से उत्पन्न होने के कारण वे नासत्य कहलाते हैं।

ऋग्वेद के 50 सूक्तों में नासत्यों की स्तुति है। इन्द्र, अग्नि और सोम के पश्चात् सर्वाधिक सूक्त अश्विनौ के हैं। ये दोनों देवता साथ-साथ ही रहते हैं, यज्ञादि में इनका आह्वान साथ साथ होता है। नासत्यौ की एक संज्ञा 'दस्र' है। अश्विनौ बड़े शीघ्रगामी हैं, इनका मार्ग हिरण्यवर्त्तनी (स्वर्णमय) है। इनका प्रभाव इन्द्र से भी अधिक वर्णित किया है।

अश्विनौ ने जो कर्म किये उनका विस्तार से ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है यथा अश्विनौ ने वृद्ध च्यवन ऋषि को पुनः युवा बना दिया, शर्याति के यज्ञ में। समुद्र में तुग्रय के लिये शतारित्रा नाव का निर्माण किया। वचस्यु को प्राणों का दान दिया। सूर्या का सोम से विवाह कराया। भुज्यु को समुद्र में डूबने से बचाया। अश्विनौ ने वर्ति की रक्षा की। इत्यादि बहुत से महान् कर्मों का वर्णन है।

अश्विनौ का त्रिबन्धुर शीघ्रगामी रथ आकाश से उतरता है। दोनों युवा अश्विनी स्वर्णिम रथ पर आसीन होकर भूलोक, द्युलोक, सूर्य और चन्द्रलोक की यात्रा करते हैं। इस रथ की गति अप्रितम है। इसका निर्माण ऋभु-भ्राताओं ने किया था। इतिहास में अश्विनीकुमार विवस्वान् (सूर्य) और त्वाष्ट्री सरण्यू का पुत्र बतलाया गया है। अश्विनी कुमारों को सोमरस और मधु से बहुत अनुराग है। उन्होंने चर्म की 100 थैलियाँ भरकर मधु एकत्रित किया था। इस प्रकार अश्विद्वय का ऋग्वेद में पर्याप्त वर्णन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सविता—'सविता सर्वस्य प्रसविता' सविता सब का उत्पादक देव है, यह सूर्य का ईश्वर के अर्थ में है। सविता का वर्णन भी एक आदित्य के रूप में हुआ है। उसका हाथ स्वर्णमय है। उसका रथ भी सोने का है। मन्त्रों के अनुसार सविता ने यन्त्रों के द्वारा पृथिवी का स्तम्भन किया, द्युलोक को स्थापित किया। मेघ को घोड़े के समान घुमाया।[1] सविता प्रकृति की उत्पादक या नियामक शक्ति का नाम है। सविता को मन्त्रों में मेधावी कवि बतलाया गया है जो द्विपद और चतुष्पाद प्राणियों में कल्याण का संचार करता है। जब सूर्य उदय से पूर्व आकाश में प्रकट होने लगता है, तब उसे सविता कहते हैं। सूर्या सविता की पुत्री कही गयी है।

बृहस्पति—इसको ब्रह्मणस्पति भी कहा जाता है। यह जगत का पालक देवता माना गया है (नि० 10/1/11, 12)। ऋग्वेद के 11 सूक्तों में बृहस्पति की स्तुति की गई है। बृहस्पति देवताओं के गुरु और आङ्गिरस ऋषि भी माने जाते हैं। परन्तु मन्त्रों में इनका यह रूप नहीं है। इनको मन्त्रों में योद्धा के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जो पणि असुरों के संहार में इन्द्र की सहायता करता है। बृहस्पति को ही सम्भवत: गणपति कहा गया है।

मित्र—ऋग्वैदिक मन्त्रों में सदा मित्र वरुण के साथ स्तुत किया गया है। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल की 59 सूक्त की प्रथम ऋचा में मित्र स्वतन्त्र देवता के रूप में स्तुत है। अन्य सभी स्थानों पम मित्रावरुणों के रूप में स्तुत है। मित्र भी आदित्य है और उसका (सूर्य का) एक रूप ही मित्र है। मित्र देवता सबका मित्र और परम दयालु है। स्वतन्त्र स्तुति का मन्त्र दर्शनीय है—

"मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्र: कृष्टीरनिमिषाभिचेष्ट मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोतन ॥

"मित्र लोगों को श्रेष्ठकर्म के लिए प्रेरित करता है, मित्र ही पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है। मित्र के प्रताप से मनुष्य कर्मशील होते हैं, अत: उसके लिए घृतवती आहुतियाँ प्रदान करो।" अन्यत्र मित्रावरुण की पर्याप्त स्तुतियां मिलती हैं।

1. सविता मन्त्रै: पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्ध सविता समुद्रम् ॥
(ऋ० 10/149/1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूषा—यह सूर्य का पोषक रूप है। इतिहास के अदिति के द्वादश पुत्रों में पूषा एक है। इसको अदन्तक, (विना दांत) कहा जाता है, इसलिए पिष्ट हवि इसको प्रदान की जाती है। यास्क ने लिखा है—'अथ यद् रश्मियोप पुष्यति तत् पूषा भवति, (नि० 12।2।10)। 'जो रश्मियों से पुष्ट करता है, वह पूषा है ऋग्वेद के एक मन्त्र (6/58/1) के अनुसार पूषा का रूप शुक्र (लोहित) है, वह यजनीय देव विषमरूप है। रात्रि दिन ही उसके रूप हैं। वहं पूषा हमको दान देवे।' पूषा का यह मन्त्र प्रसिद्ध है—

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्रविद्वाननष्ट पशु र्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥

(ऋ० 10/17/3)

यह अनष्टपशु पूषा (सूर्य) मृतक को गिराता है, भुवन का रक्षक इसको पितरों को देता है, और अग्नि मृतकों को मुक्त देवों को देता है। यह अग्नि और पूषा दोनों की स्तुति है।" पूषा देवता मनुष्यों और पशुओं का पालक है। उसके हाथ में तलवार, माला और अंकुश रहता है। इसके रथ में अज होते हैं। करम्भक इसका प्रिय भोजन है। क्योंकि यह विना दांत का था, अतः पेय भोजन इसके लिए निश्चित था। यह आघृणि (तेजस्वी) और गोपा (गोपाल) प्रेतात्माओं का वहन करने वाला देवता है।

पर्जन्य—यह मेघ का ही एक नाम है। अत्रि और औवंशवसिष्ठ ने पर्जन्य सूक्तों का प्रणयन किया था, (ऋ० 5/83/7/101/102)। शौनक और यास्क ने—

"यदिमां प्राजंयत्येको रसेनाम्बरजेन गाम्।
कालेऽग्निरौवंश्चर्षी तेन पर्जन्यमाहतुः॥ (वृहद्दे० 2/36)

यास्क के अनुसार पर्जन्य का अर्थ है तृप्ति इस धातु का आद्यन्त विपरीत करने से 'पर्जन्य' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है—पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्यः, परोजेता वा जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्, (नि० 10/10)। लेखक की तुच्छ बुद्धि में 'पयोजन्य (जल का उत्पादक) इस पयः और 'जन' से मिलकर 'य' प्रत्यय लगाकर 'पर्जन्य' की व्युत्पत्ति हुई है।

1. अदन्तक पूषा (श० ब्रा० 1/7/4/7)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्जन्य का स्वरूप निम्न ऋचा से प्रकट होगा—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥

(ऋ० 5/83/2)

"यह पर्जन्य वृक्षों को गिराता है, भुवन को डराते हुए राक्षसों को मारता है, इसके महान् वध से भयभीत अनपराध भी भागता है, जबकि वर्षणशील पर्जन्य शब्द करता हुआ पापियों को नष्ट करता है।" पर्जन्य पृथिवी का वृषा (पति) है। यह जलों का दाता है, इससे तृप्त होकर पृथिवी औषधि, वनस्पति, पशु-पक्षी समस्त चराचर को उत्पन्न करती है। इसको भी मन्त्रों में रुद्र के समान भयंकर रूप से चित्रित किया है।

वायु (वात)—वात ही वायु है। इसको शम्भु, मयोभू आदि विशेषणों से कहा गया है, जो भेषज से आयु को बढ़ाता है। इसका सम्बन्ध पर्जन्य, वरुण और इन्द्र से भी है। इसकी स्तुति ऋग्वेद के लघु सूक्तों में है।

सोम—ऋग्वेद के नवम मण्डल में सोम की स्तुतियां सङ्कलित हैं। वैसे सोम एक औषधि का नाम है, सोम चन्द्रमा को भी कहते हैं, परन्तु मन्त्रों में इसकी महिमा और शक्ति ईश्वर के समान वर्णित है— (ऋ० 9/96/5)।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

"सोम ही मति का उत्पादक है, सोम ही द्युलोक और पृथिवी का जनक है, सोम ही अग्नि का निर्माता है, सोम ही इन्द्र, सूर्य और विष्णु का जनक है।" इस मन्त्र से सोम की महिमा प्रख्यापित होती है। सोम शब्द अधिकांशतः सोमलता की औषधि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, यथा—

"स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ।" (ऋ० 9/1/1)

"स्वादिष्ठ और मदमत्त करने वाले सोम, इन्द्र को पीने के लिए सोम की धारा को पवित्र करते हुये प्रवाहित करो।"

और भी—"सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ऋ० (10/85/3)

"सोम को पी लिया है, ऐसा अन्यथा सुन दुर्बुद्ध समझता है, जो वास्तव में एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

औषधि को पीसते हैं। परन्तु जिस सोम को विद्वान् जानते हैं, उसको यज्ञ-हीन नर नहीं जान सकता।" ऋग्वेद में सोम का स्रोत मुञ्जवान् पर्वत कहा गया है, और श्येन पक्षी सोम को लाते हैं, इसका विशेष वर्णन आगे किया जायेगा।

यम—ऋग्वेद में यम के अनेक रूप हैं, अग्नि को भी यम कहते हैं—(अग्निरपि यम उच्यते, नि० 10/2/20)। यम पितरों का आदि पितर और राजा है। 'यच्छ' धातु से संयमन अर्थ में 'यम' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। यम, काल या सूर्य का भी पर्याय है। वायु का नाम भी यम है, जो लोकों को संयमित करता है

पितरों के अधिपति यम का वर्णन ऋग्वेद, दशम मण्डल के 14 से 18 सूक्तों तक मिलता है। इन सूक्तों का द्रष्टा भी विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र वैवस्वत यम है। एक अन्य सूक्त में यम यमी-संवाद है। किसी मत में यम यमी दिन रात्रि की संज्ञा है। ऐतिहासिक मत में यमी (यमुना) यम की भगिनी थी।

यम पितरों और प्रेतों का प्रशासक है। ऋग्वेद में अनेकविधि पितरों का वर्णन है—आङ्गिरस, नवग्वा अथर्वण आदि। ब्राह्मण ग्रन्थों में पितरों की सोमवन्त, बर्हिषद, अग्निष्वातादि संज्ञाएं हैं। वेद में क्रव्याद् या क्रव्यवाहन अग्नि का सम्बन्ध पितरो से है, जो उनको जलाती है। मृत्यु के पथिकों के लिए वेद में देवयान और पितृयान् का उल्लेख है—

'द्वेसृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।' (ऋ० 10/88/15)

ऋग्वेद में यम के दूत दो श्वानों का वर्णन भी है।

यम मृतकों के पुण्यपाप का विवेचन करके उनको यथानुसार फल प्रदान करता है। यम को काल और मृत्यु भी कहा गया है।

अदिति—अदिति शब्द का अर्थ और देवत्व भी ऋग्वेद में अस्पष्ट सा है। इतिहास में अदिति द्वादश—इन्द्र, विष्णु, वरुणादि की माता है। यह कश्यप

---

1. सूर्य को भी 'यम' कहा जाता था—'एष वै यमो य एष तपति; (श० ब्र० 14/1/3/4)।
   इह प्रजाः प्रयच्छन्स संगृहीत्वा प्रयाति च।
   ऋषिर्विवस्वतः पुत्रं तेनाहैनं यमो यमम्॥ बृहद्० 2/48)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की पत्नी दक्ष की पुत्री थी। परन्तु ऋग्वेद के मन्त्रों में इसका यही रूप नहीं है। यास्क 'अदिति को अदीना देवमाता कहता है। ऋग्वेद (10/90/1) में भी लिखा है 'स भूमिं विश्वतो वृत्वातिष्ठत्।' यह पृथिवी या संसार को आवृत करते हुए मध्यम स्थान (अन्तरिक्ष) में स्थित है। यह असीम है। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्त्रों में प्रकृति या माया को अदिति कहा गया है कहीं पृथिवी को भी अदिति बताया है। ऋग्वेद (1/89/10) के एक मन्त्र में अदिति ही सब कुछ है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

"अदिति द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति माता है, अतिति पिता है, वही पुत्र है। विश्वेदेव अदिति है, पञ्चजन अदिति है, अदिति ही उत्पन्न और जनिष्यमाण भी अदिति है।" अतः सबकी निर्मात्री अदिति है।

अदिति का सम्बन्ध दक्ष, मित्रावरुण, और आदित्यों से विशेषतः बनवाया गया है—कहा है—'अदितेर्दक्षो प्रजायत दक्षाददिदिः परि" (ऋ० 10।62।4) "दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष उत्पन्न हुआ।" यहाँ पृथिवी और प्राणि आदि को अदिति और दक्ष बतलाया है। आदित्य भी दक्ष कहा जाता है। अग्नि भी अदिति कही गई है। ऋग्वेद में (10/72/8) और (10/72/8) में सात पुत्र कहे गये हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और मार्तण्ड। मार्तण्ड ही सूर्य का नाम हुआ। इन्द्र, धाता, त्वष्टा और विष्णु को मिलाकर—द्वादश-आदित्य पुराणों में अदिति के पुत्र कहे गये है। ऋग्वेद में इतिहास और प्राकृतिक घटनाओं का मिश्रित वर्णन है, जबकि पुराणो में केवल शुद्ध इतिहास है, इसका भेद न समझने से भ्रम उत्पन्न होता है। इसी लिए कहा है—'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' इतिहास पुराण की सहायता से वेदार्थ का विस्तार करना चाहिए।

उषा को भी अदिति कहा गया है, इसलिए मन्त्रों में अदिति को असीम और ज्योतिष्मती कहा है।

ब्राह्मणग्रन्थों और कल्पसूत्रों में आदित्यों के साथ अदिति के लिये भी पुरोडाश हवि, आहुति आदि देने का विधान मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन देवताओं के अतिरिक्त ऋग्वेद में गृहदेवता वास्तोष्पति, नदी, सरस्वती, सरस्वान्, विश्वदेव, पुरुष, हिरण्यगर्भ, अप्रियः, तनूनपात्, इडा, नाराशंस, र्बाह:, द्वार, उषासानक्ता, त्वष्टा, वनस्पति, स्वाहाकृतयः, अश्व, शकुनि, मण्डूक, अक्ष, ग्रावा, दुन्दुभि, वृषभ, नदी, सरस्वती, वाक्, आपः, औषधि, रात्रि, द्यावापृथिवी, अरण्यानी, श्रद्धा, पृथिवी, अग्नायी, इन्द्राणी, वृषाकपायी, शची, वरुणानी, शुनासीर, क्षेत्रपति, वाचस्पति, अपांनपात्, क (प्रजापति), विश्वकर्मा, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, श्येन, मरुत्मान्, मन्यु, दधिक्रा, वेन, असुनीति, ऋत, इन्दु, प्रजापति, अहि, अहिर्बुध्न्य, सुपर्ण, पुरूरवा, उर्वशी, चन्द्रमा, मृत्यु, विश्वानर, धाता, विधाता, ऋभु, अङ्गिरस, पितर, अथर्वाण, भृगव, आप्त्य, मित, सरमा, पणि, अनुमती, राका, सिनीवाली, कुहू, यमी, गौ, गौरी, धेनु, समुद्र, पथ्या, स्वस्ति, रोदसी, सख्यू, भग, केशी, वृषाकपि, अज एकपात्, मनु दध्यङ्, सप्तऋषि, साध्यगण, वसव, देवपत्नी इत्यादि की स्तुति की गई है। इनमें कुछ प्रधान देवताओं के सूक्त आगे उद्धृत किये जायेंगे, उससे ही उनका स्वरूप स्पष्ट ज्ञात होयेगा।

तृतीय अध्याय

ऋग्वेद के कुछ महत्वपूर्ण सूक्त और मंत्र

अग्निसूक्त—पाठकों की जिज्ञासा के शमनार्थ अग्नि सम्बन्धी एक लघु-सूक्त का भावार्थ दिया जा रहा है, जिससे ज्ञात होगा कि वैदिक ऋषि किस प्रकार उदात्त भाव से अग्नि की स्तुति करते थे।

"हम अग्नि को कैसे हवि दें, कौन सी वाणी या पद इस देव के लिए उच्चारण करें, जो मर्त्यों (मनुष्यों) में अमर, ऋत और पूजनीय यज्ञ का साधक है, यह अग्नि देवों का निर्माण करता है" ॥1॥

"जो अग्नि यज्ञों में होता होता है, शांति और सत्य से युक्त, जिसको तुम अपने नमस्कारों से उत्पन्न करो, जब अग्नि मनुष्य के लिए देवों को प्रकाशित करता है, तो वह उनका ज्ञान भी रखता है और मन से यजन करता हुआ हवि देता है ॥2॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यही अग्नि ऋतु (कर्म) है, वह संकल्प है, वही बलरूप साधु (साधक) है, वही मित्र है, वह परम सत्ता का रथी हो जाता है उसको यज्ञों में देवत्व की इच्छा से आर्य जनता वाणी का उच्चारण करती है" ॥3॥

"वह नेताओं में वरिष्ठ, पापनाशक, अग्नि वाणी द्वारा ज्ञान को प्रकाशित करता है, और जो ऐश्वर्यवान् हैं, बलशाली हैं, बल प्रसूत विचारों को प्रेरणा देवें" ॥4॥

"इस प्रकार गोतमों विद्वानों (प्रकाश के स्वामियों) द्वारा स्तुत जातवेद अग्नि इन विद्वानों के अन्तःकरण में प्रकाश की शक्ति का संचार करें" ॥5॥

इन्द्रसूक्त (ऋ० 2/12)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥1॥

जो देवों में सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ और जिसने अपने कर्म से देवों को विभूषित किया और जिसके बल से पृथिवी और आकाश कांपते हैं वही, हे लोगो इन्द्र है ।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।

---

(१) कथा दाशेयमाग्नये कास्मै देव जुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥1॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिराकृणुध्वम् ।
अग्निर्यद् वेर्मताय देवान्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥2॥
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवेत दस्ममारीः ॥3॥
स नो नृणा नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥4॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥5॥
(ऋ० 1/77/1-5)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो अन्तरिक्षं विमम वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः ॥2॥

जिसने कम्पायमान व्याकुल पृथिवी को दृढ़ किया और जिसने प्रकुपित पर्वतों को चलने से रोका, जिसने असीम अन्तरिक्ष का निर्माण किया तथा दिव्यलोक को स्थिर किया हे लोगो, वही इन्द्र है।

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥3॥

जिसने वृत्रासुर (अहि) को मारा, तब सात नदियाँ बहने लगीं, बल (असुर) के द्वारा अपरुद्ध गायों को जो मुक्त करके लाया, जिसने पत्थरों से आग पैदा की वह युद्ध में पराक्रमी ही इन्द्र है।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्ष्मादददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥4॥

जिसने समस्त विश्व पदार्थों को विनश्वर बनाया, जिसने दासवर्ण को नीचा बनाया, जो सेहया के समान लक्ष्य को जीत लेता है, वही पुष्ट करने वाला ईश्वर (आर्य) इन्द्र है।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥5॥

जिसको कुछ लोग पूछते हैं कि वह भयंकर इन्द्र कहाँ हैं, कुछ लोग कहते हैं कि वह नहीं है, वह ईश्वर (अर्य) शत्रुओं का नाश कर देता है, उसमें श्रद्धा-विश्वास करो, वही हे लोगो इन्द्र है।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ॥
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥6॥

जो समृद्ध पुरुष का प्रेरक और दुर्बल का रक्षक है, प्रार्थना करने वाले, स्तुतिकर्त्ता विद्वान् और सोम निकालने वाले का रक्षक है, वह सुन्दर हनु वाला, हे लोगो वहीं इन्द्र है।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥7॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके प्रदिशाओं में अश्व है, जिसकी गाय और ग्राम (या समूह) हैं, जिसके समस्त रथ हैं, जिसने सूर्य और ऊषा को उत्पन्न किया, जो जलों का नेता है, हे लोगो। वही इन्द्र है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवरे उभया अमित्राः।

समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नानाहवेते स जनास इन्द्रः ॥8॥

जिसके नियन्त्रण में रहती हुई द्यावा पृथिवी नियमित है, मित्र-अमित्र सभी युद्ध में रथारुढ़ होकर जिसका आह्वान करते हैं, वही जन इन्द्र है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्र ॥9॥

जिसके बिना वीर विजय नहीं प्राप्त कर सकते, युद्ध करते हुए जिसको रक्षार्थ बुलाते हैं, जो अकेला ही विश्व के बराबर है, वह अच्युत को च्युत् करने वाला महावीर इन्द्र है।

यः शश्वतो मह्येनों दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।

य शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥10॥

जो सदा पाप करने वाले अभिमानियों को बाण से मार देता है जो अभिमानी को अभिमान नहीं करने देता, वह दस्युहन्ता, हे पुरुषो! इन्द्र है।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।

ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ 11 ॥

जिसने पर्वतों में रहने वाले शम्बर को चालीसवें वर्ष ढूँढ़ निकाला, बल प्रदर्शित करने वाले वृत्र दानव को मार डाला, वही पुरुष इन्द्र है।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान वासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।

यः रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्धामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ 12 ॥

जो सात रश्मियों वाला वर्षणशील, बलवान है, जिसने बहने के लिए सात सिन्धुओं को बनाया, जिसने रौहिण (या सूर्य) को ऊपर चढ़ाया, हे लोगो वही वज्रबाहु इन्द्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नयेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्र बाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ 13 ॥

द्यावापृथिवी जिसको नमस्कार करते हैं, जिसके वल से पर्वत कांपते हैं, वह सोमपाता वज्रबाहु, निचित वज्रहस्त इन्द्र है ।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ 14 ॥

सोम को निकालने वाले की, पकाने वाले की जो रक्षा करता है, जो स्तुति करने पर स्तुत इन्द्र रक्षा करता है, जिसका ब्रह्म या स्तोत्र ही बर्धन है, सोम और यह स्तोत्र ही जिसका वल है वही इन्द्र है ।

यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ 15 ॥

हे विश्वरक्षक इन्द्र ! तुम सोम निकालने वाले और पचाने वाले के लिए हे दुर्धर ! वल या अन्न देते हो और सत्य हो, हम तुम्हारे सर्वत्र प्रिय हैं, हम वीर होकर यज्ञ सभाओं में स्तुति करें ।

वरुणासूक्त के कुछ मन्त्र (ऋ० 1/25)

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्रदेव वरुण-व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ 1 ॥

हे वरुण ! देव ! प्रजायें तुम्हारे व्रत या नियम का प्रतिदिन उल्लंघन करती हैं ।

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥ 2 ॥

हे वरुण ! हमको अपने मारक क्रोध का लक्ष्य मत बनाओ, हमको नष्ट मत करो । हम पर क्रोधित मत होओ ।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ 7 ॥

जो वरुण पक्षियों के मार्ग को अन्तरिक्ष में जानता है, वह समुद्रिय नावों के मार्ग को भी जानता है ।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ 8 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह धृतव्रत वरुण बारह मासों और तेरहवें उपजायमान मलमास को भी जानता है।

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ 10 ॥

वह सुकर्मा वरुण साम्राज्य के लिए, व्रत का पालनकर्ता वरुणदेव घरों में बैठता है।

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परिस्पशो निषेदिरे ॥ 13 ॥

स्वर्णमय कवच और निर्मल वस्त्रों को धारण करता है, जिसके गुप्तचर सर्वत्र घूमते हैं।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो विपाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥ 21 ॥

हे वरुण! हमको जीवदान देने के लिए हमारे उत्तम, मध्यम और निम्न पाशों को काट दीजिये।

सूर्यसूक्त के मंत्र (ऋ० 1/50)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ 1 ॥

विश्व-दर्शन के लिए जातवेदा (अग्निस्वरूप) द्योतनशील देव सूर्य को किरणें वहन करती हैं।

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे ॥ 2 ॥

जिस प्रकार रात्रि में चोर घूमते हैं, उसी प्रकार रात्रि में नक्षत्र विश्वचक्षु सूर्य से छिपने निकलते हैं।

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ 3 ॥

जिस प्रकार अग्नियाँ चमकती हैं, उसी प्रकार सूर्य किरणें जनों का अनुगमन करती हैं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम् ॥ 4 ॥

हे सूर्य! तुम तरणि, विश्वदर्शनीय या विश्वद्रष्टा, ज्योतिष्कर्त्ता चमकने वाले समस्त विश्व में प्रकाश करते हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद् वयं तमस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ 10,11 ॥

हम अन्ध के परे सूर्य ज्योति को ऊपर उठते हुये देखते हैं, देखो सूर्य के ऊपर ज्योति का आगमन हो गया है, अब सूर्य प्रकाश आकाश में ऊपर उठ रहा है । हे सूर्य मेरे हरिमा रोग और हृद्रोग का नाश करो ।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषुमे हरिमाणं निदध्मसि ॥ 12 ॥

मेरी हरिमा रोग (यक्ष्मा) को पौधों और हरिद्रा में तथा तोतों में स्थापित करो ।

उषासूक्त के कुछ मंत्र (1/92)

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ 3 ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा पोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ॥
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ 4 ॥

सुकर्मा, सोमकर्त्ता, सुदाता, यजमान के लिए अन्न या बल को वहन करती हुई उषा आती है ।

नर्तकी के समान अनेक रूपों को धारण करती हुई उषा अभिगमन करती है । वह नववधू के समान अपने वक्षस्थल को प्रकट करती हुई अन्धकार को दूर करती है । उषा प्राची दिशा में प्रकट होकर समस्त विश्व को प्रकाशित करती है जिस प्रकार गायें व्रज में जाती हैं, उसी प्रकार उषा शीघ्र जाती है ।

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ॥ 7 ॥

इस भास्वती नेत्री सत्य वचनों की स्थान, द्युलोकगामिनी या द्युलोक की पुत्री उषा का स्तवन गौतमगण करते हैं ।

विश्वानि देवी भुवनमभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया विभाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥9॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्व भुवनों को दिखाने वाली चक्षुरूपा उषा विशाल रूप से भासित होती है समस्त जीवों को जगाती हुई गमन करती है और विश्व को या मनस्वी को वाणी प्राप्त कराती है।

पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।। 10 ।।

पुराणी होती हुई भी पुनः पुनः जन्म लेकर शुभरूपा नई नई दिखलाई पड़ती है।

प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा विभाति ।। 11 ।।

मानव युगों को मापती हुई जार की स्त्री के समान प्रकाश से चमकती है।

उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं वाजिनीवति। ये तोकं चतनयं चधामेह ।। 13 ।।

हे वाजवती उषा ! हमारे लिये तुम विचित्र या उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो, जिससे हम अपनी सन्तान पुत्रादि का पालन कर सकें।

आपः (10/9)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ।। 1 ।।

जल सुखों को प्रदान करने वाले हैं, वे हमारे अन्दर बल दें। जिससे हम रमणीय सुख को देख सकें।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ।। 2 ।।

हे आपो ! जो तुम्हारा शिवतम (श्रेष्ठतम) रस है, हम उसी का पान करें, जिस प्रकार मातायें अपने पुत्रों को पयोरस का पान कराती हैं।

यम यमीसूक्त के कुछ मंत्र (10/10)

यमस्य मा यम्यं ? काय आगन् त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्या वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ।। 7 ।।

(यमी कहती है)—यम के साथ शयन करने की कामना मुझ यमी को प्राप्त होवे जिस प्रकार पत्नी अपना सर्वस्व अंग पति को समर्पित करती है, उसी प्रकार मैं अपना शरीर यम को अर्पित करूँ। रथ के दो चक्रों की भांति हम वैवाहिक जीवन का भार उठावें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ 10 ॥

हे यमी ! उत्तर काल में ऐसे युग आयेंगे जब भगिनियां भाइयों को पति बनायेंगी। हे यमि ! तुम मेरे अतिरिक्त दूसरे पुङ्गव मानव की पति के रूप में इच्छा करो।

पुरूरवा उर्वशी संवाद (10/95)

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥ 1 ॥

हे पत्नि ! तुम मन से यहां रहो। हे कठोर चित्त वाली स्त्री हम दोनों आपस में बातचीत करें। हमारी बातचीत हम को क्या भविष्य में सुख प्रदान नहीं करेगी, वे अवश्य ही सुख देंगी।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामिग्रयेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ 2 ॥

हे पुरूरवः ! इन बातों को करने से क्या लाभ, मैं अग्रगामिनी उषा की तरह प्रगमन करूंगी। हे पुरूरवः ! तुम अपने घर जाओ। मैं वायु की भांति दुष्प्राप्य हूँ।

महे यत् त्वा पुरूरवो रणावर्धयन् दस्युहत्याय देवाः ॥ 7 ॥
सचा यदासु जहतीष्वत्कमयमानुषीषु मानुषो निषेवे ॥ 8 ॥

हे पुरूरव ! दस्युवध के लिए देवों ने तुम को महान् रमणीक सुख प्रदान किया, इन अमानुषी अप्सराओं में से मैंने मानुष का सेवन किया।

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥ 10 ॥

उर्वशी विद्युत् के समान चमकती है और मेरी इच्छाओं को उसने पूर्ण किया। जिसने मेरे पुत्र आयु को उत्पन्न किया जो दीर्घायु होवे।

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन् न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥ 11 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पुरूरवः ! मैंने तुम्हारी रक्षार्थं पुत्र रूप तेज को उत्पन्न किया जो मेरा ओज है। मैंने तुम्हारा अनुशासन किया और कहा था कि मैं तुम्हारे पास नहीं रहूंगी। तुमने मेरी बातों को नहीं सुना। अब तुम यह क्यों कहते हो ?

पुरूरवो मा मृथा मा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदान्येता ॥ 15 ॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ 16 ॥

हे पुरूरव ! तुम आत्महत्या न करो, न पतित होवो। क्रूर भेड़िये तुम्हारा भक्षण न करें। स्त्रियों की मैत्री स्थायी नहीं होती, उनके हृदय शालावृकों (भेड़िये, कुत्ते या राक्षस) के समान होते हैं।

मैं भेष बदलकर चार वर्षों पर्यन्त मनुष्यों में रही, दिन में मैंने एक बार घृत का पान किया, उसी से तृप्त होकर मैं भ्रमण करती हूँ।

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते ॥ 17 ॥

हे उर्वशी ! तुम मेरे मन में वास करती हो, अन्तरिक्ष को प्याप्त करती हुई तुम विद्युत् रूप होकर जल वर्षाती हो। मेरा हृदय जल रहा है, तुम मेरे पुण्यों की राशि हो और मेरे साथ रहो।

सरमापणिसंवाद (10/108)

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसाया अतरः पयांसि ॥ 1 ॥

हे सरमे ! तुम किस इच्छा से यहां आई हो ? तुम इस सुदूर स्थान पर कैसे आई ! तुम्हारा स्थान यहां से अदृश्य है, तुम को किसने भेजा है, तुम्हारी रात कैसे बीती और रसा नदी को कैसे पार किया ?

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि ॥ 2 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पणिगण ! मैं इन्द्र द्वारा प्रेषित उसकी दूती हूँ। मैं गौ रूपी धन को चाहती हूँ। जलों को पार करती हुई मैं भयभीत नहीं हुई और मैंने रसा के जलों को पार कर लिया।

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अवसृजादयुध्व्युता ऽस्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥ 5 ॥

हे सुभगे सरमे ! तुम दिव्यलोक से चलकर इतनी दूर आई हो, यदि तुम चाहो तो इन गायों को ले लो। विना युद्ध के इन गायों को कौन ले सकता है, क्योंकि हमारे आयुध अत्यन्त तीक्ष्ण हैं।

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥ 6 ॥

हे पणियो ! तुम्हारे वचन कायरतापूर्ण हैं, तुम्हारे पापी शरीर इन्द्र के बाण सहन नहीं कर सकेंगे। तुम्हारा मार्ग अधर्षणीय नहीं है, यह आक्रमण के लिये सुगम है। कहीं आङ्गिरस बृहस्पति तुम्हें नष्ट न कर दे।

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ 9 ॥

हे सरमे ! दैव्य से प्रबाधित होकर तुम सहसा यहां आई हो। हम तुम को अपनी भगिनी बनाना चाहते हैं। हे सुभगे ! तुम यहां से लौटकर मत जाओ। हम तुम को यही गाये देंगे।

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ 10 ॥

(सरमा कहती है)—हे पणियो ! न तो मैं तुम्हारे सौभ्रातत्व या सौभगिनत्व को नहीं जानती। इन्द्र और घोर आङ्गिरस इसको जानें या न जानें। गायों की इच्छा से ही उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है, इसीलिये मैं यहाँ आई हूँ। हे पणि असुरों तुम यहां से दूर भाग जाओ।

पर्जन्यसूक्त (मण्डूकसूक्त) (7/103)

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषुः ॥1॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक संवत्सर पर्यन्त होते हुए व्रतचारी ब्राह्मणों के समान मेघ से प्रीणित वाणी को मण्डूक (मेंढक) बोलने लगे।

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुमा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥6॥

एक गोमायु तुल्य ध्वनि करता है दूसरा अजमायु है, तीसरा पृश्नि है, अन्य हरित है, उनका नाम समान है, परन्तु रूप अनेक हैं तथा वाणी को बोलते हुए अनेक रूप धारण करते हैं।

ब्राह्मणसो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥7॥

जिस प्रकार अतिरात्रि सोमयज्ञ में सोम से भरे हुए सर (या घट) के सब ओर बोलते हैं उसी प्रकार जिस दिन वर्षा होती है, उस दिन मण्डूक वावदूक होते हैं।

गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो न वसूनि।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥10॥

गोमायु, अजमायु, पृश्नि और हरित मण्डूक ने हमको धनधान्य दिया। मण्डूक हमें सैकड़ों और सहस्रों गाये वर्षा में दें तथा आयु का वर्धन करें।

दानसूक्त (सौभरिकृत 8/19)

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्। मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः। उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।

तिसृणां सप्त तीनां श्यावः प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः।

(3·6-37)

(सौभरि ऋषि कहते हैं)—'मुझको त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य, जो महान् आर्य श्रेष्ठ राजा था, उसने पचास वधुयें दान में दीं। सुवास्तु नदी के तट पर तुग्व तीर्थ में गमनार्थी मुझ वृद्ध को धनों के पति दाता त्रसदस्यु ने दो सौ दस श्याम कर्ण अश्व भी दिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अक्षसूक्त (10/34) (द्यूत)

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीतको जागृविर्मह्यमच्छान् ।।1।।
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणाद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ।।3।।
अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ।7।।
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ।
तत्र गावः कितवस्तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ।।13।।

पर्वतीय इरिणो (गर्तों) में उत्पन्न द्यूत के पाश जब जूये खेलते हुए मैं फेंकता हूँ, तो वे कम्पायमान हुये मुझे उन्मत्त कर देते हैं, जिस प्रकार मुज्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम का भक्ष जाग्रत करता है, उसी प्रकार जूआ मुझे जगाता है। सास मुझसे द्वेष करती है, पत्नी रोकती है, मैं किसी कल्याण-कर्त्ता को नहीं पा सकता। मैं जुआरी बूढ़े अश्व के समान विक्रेय नहीं होता और न कोई घास डालता है। ये जुए के पासे अङ्कुश के समान चुभने वाले हैं।

ये मनुष्य का सर्वनाश कर देते हैं। ये मनुष्य को महान कष्ट देकर परि-तप्त कर देते हैं। ये कुमार देवण पासे पहिले जिताते हैं, फिर मधु से सने हुये पासे जुआरी का सब कुछ हरण कर लेते हैं।

(ऋषि कहता है) —'हे मनुष्य ! जुआ मत खेलो ! खेती ही करो। जो कुछ धन तुम्हारे पास है, उसी में आनन्दित रहो, इसी में गायादि पशुधन है, यहीं पर पत्नी है, यह सर्वेश्वर सविता (सर्वद्रष्टा सूर्य) ने मुझसे कहा है।

विवाहसूक्त (10/85)

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सूर्या यत्पत्ये शंसन्ती मनसा सवितादान् ।।9।।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेता पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन ।।33।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगोअर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।36।।
इमां त्वमिन्द्र: मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ।।45।।
सम्राज्ञी श्वसुरेभव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव अधि देवृषु ।।46।।

जब सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या, जो पति की कामना कर रही थी, उसका कन्यादान किया, तब सोम को भी वधू की इच्छा थी, अश्विनीकुमार भी उसका वरण करना चाहते थे ।

यह शुभ कज्जलमयी वधू है, इसको सब मिलकर आकर देखो । इसका सौभाग्य देकर अपने-अपने घर चले जाइये । हे वधू ! सौभाग्य के लिए मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, जिससे तुम मेरे साथ वृद्धावस्था तक रहो । मुझको भग, अर्यमा, सविता आदि बुद्धिमान् देवों ने तुमको दिया है, जिससे मैं गृहस्थ धर्म का पालन कर सकूँ । मादक सोम रूप हे इन्द्र ! तुम इस वधू को सौभाग्य-शालिनी और पुत्रवती करो । इसके दस पुत्र और एकादश (ग्यारहवाँ) पति बना रहे ।

हे वधू ! तुम अपने श्वसुर की साम्राज्ञी बनो । सासु की सम्राज्ञी होवो । ननद और देवरों की साम्राज्ञी बनो ।

पुरुष सूक्त [10/90]

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्य तिष्ठ-दशाङ्गुलम् ।

यह पुरुष सहस्र शिरों वाला, सहस्र आँखों वाला और सहस्रों (अनेकों) पैरों वाला है, वह समस्त भूमि को आवृत करके दशाङ्गुल भूमि पर बैठा हुआ है ।

पुरुषेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाऽतिरोहति ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कुछ भूत भविष्यत् और वर्तमान है, सब पुरुष ही है, वही अमृत का ईश्वर है, और जो कुछ अन्न से बढ़ता है, उसका भी स्वामी है।

एतवानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि।

पुरुष की इतनी महिमा है, बल्कि इससे भी बढ़कर है, एक पाद (अंश) में सब प्राणी रहते हैं और उसके तीन पाद दिव्यलोक में अमर हैं।

त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशनेअपि।

यह पुरुष (परमात्मा) तीनों पादों से ऊपर उठा हुआ है और केवल एक पैर इस लोक में है, इसने समस्त जगत् को आक्रान्त कर रखा है, वह चराचर का स्वामी है।

तस्माद्विराऴजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।

सनातन पुरुष से विराट् ब्रह्माण्ड पैदा हुआ और ब्राह्माण्ड से अधिपुरुष उत्पन्न हुआ, बचे हुये पुरुष से भूमि और पुर पैदा हुये।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।

पुरुष रूप हवि देवों ने यज्ञ किया। उस संवतरात्मक पुरुष का वसन्त आज्य (घृत) था, ग्रीष्म इंधन और शरद् हवि थी।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।

उस यज्ञरूप पुरुष को आकाशरूप कुश पर स्वपित किया, तब प्रोक्षित पुरुष से देवों, साध्यों और ऋषियों ने यज्ञ किया।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशून् तांश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्यांश्चये।

उस सर्वहुत यज्ञ रूप पुरुष से पृषदाज्य उत्पन्न हुये, पुनः उसने वायव्य आरण्य और ग्राम्य पशु उत्पन्न किये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्याद् यजुस्तस्मादजायत।

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋच और साम उत्पन्न हुये, उससे छन्द (अथर्वमंत्र), और यजु भी पैदा हुये।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो हजज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ 10 ॥

उस पुरुष यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुये, जो दोनों ओर दाँतों वाले हैं वे भी उत्पन्न हुये, उसी से गाय, भेड़ और बकरियां पैदा हुईं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादाउच्येत।

जिस विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई, वह कितने प्रकार का था। उसका मुख क्या था, क्या भुजायें थीं और पैर क्या थे।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रो अजायत ॥

ब्राह्मण उसका मुख था, भुजाये क्षत्रिय थे, जांघ उसकी वैश्य बने और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये (अर्थात् पैर शूद्र थे।)

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

उस पुरुष के मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुई।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिश ओत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥ 14 ॥

नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पैरों से भूमि, कान से दिशायें और अन्य लोकों की रचना हुई।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधःकृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ 15 ॥

उस पुरुष यज्ञ की सात परिधि और इक्कीस समिधायें थीं। देवों ने उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिरण्यगर्भं सूक्त (ऋ० 10/121)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 1 ।।

सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, वही इस संसार का एकमात्र स्वामी था। उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया, अतः उससे प्रजापति की पूजा करें।

यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 2 ।।

यह हिरण्यगर्भ शरीर और बल का दाता है, जिसकी विश्व उपासना करता है और देव जिसके शासन में है, जिसकी छाया अमृत और मृत्यु है, उसकी हवि द्वारा पूजा करें।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

स ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 3 ।।

जो श्वास और निमेष से एक मात्र महिमारूप स्थित है, जो जगत् का स्वामी है, वही द्विपाद और चतुष्पाद प्राणियों का स्वामी है, उसकी हवि द्वारा पूजा करें।

यस्य हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमे प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 4 ।।

जिसकी महिमा को हिमवन्त पर्वत, नदियों सहित समुद्र जिसकी महिमा को बताते हैं, यह प्रदिशायें जिसकी भुजायें हैं, हम उसकी परमात्मा की परि-चर्या करें।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृक्तहा येन स्वः स्तभित येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 5 ।।

जिसने उग्र, द्युलोक और पृथिवी को दृढ़ किया, जिसने स्वर्गलोक को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तम्भित किया, जो अन्तरिक्ष में लोक निर्माता है, उस के प्रजापति की हवि द्वारा पूजा करें।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षतां मनसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 6 ॥

जिसके द्वारा द्यावा पृथिवी संसार की रक्षार्थ स्तम्भित हैं, मन से काँपते हुये वे घूमते रहते हैं। जहाँ पर सूर्य उदित होकर चमकता है, उस हिरण्यगर्भ परमात्मा की हवि द्वारा पूजा करें।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥ 7 ॥

हिरण्यगर्भ (ब्रह्माण्ड) के गर्भ में समस्त विश्व को व्याप्त करने वाले आप (जल) थे, तब देवों का प्राण एक ही था, जिससे अग्नि हुआ, हम उसकी हवि द्वारा पूजा करें।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 8 ॥

संसार की निर्मात्री आप (शक्तियों) ने अपनी महिमा को यज्ञ उत्पन्न करते हुये स्वयं देखा। जो समस्त देवों का अधीश्वर है, हम उसको यज्ञ में हवि द्वारा पूजें।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 9 ॥

यह परमात्मा हमें मारे नहीं, जिसने पृथिवी को बनाया, उस सत्यधर्मा ने द्युलोक और आह्लादकारी आपों को बनाया, हम उसकी हवि द्वारा पूजा करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ 10 ॥

हे प्रजापते ! तुम्हारे अतिरिक्त इस संसार में कुछ भी नहीं है, जो अधिक महिमावाला हो। हमारी कामनायें आहुति द्वारा पूरी हों, हम धनों के स्वामी हों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संतान सूक्त (10/191)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ।। 1 ।।

हे वर्षणशील अग्ने ! हे अर्य (स्वामी) ! तुम समाज की एकता के प्रतीक हो । तुम इडस्पद (यज्ञवेदि) में प्रज्वलित होकर हमको धन दीजिये ।

संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ।। 2 ।।

हे जनो ! तुम सब मिल कर साथ-साथ चलो, साथ-साथ मिलकर बोलो, तुम्हारे मन एक हों, जिस प्रकार देवता पूर्व भाग को प्राप्त करते हैं, वैसे ही तुम भी विद्वान् होकर प्राप्त करो ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।। 3 ।।

तुम्हारा मन्त्र समान हो, समिति समान हो, मन चित्त सहित समान हों । हे लोगो (नागरिको) ! मैं तुम्हारी मन्त्रणा को समान बनाता हूँ । और मैं समानरूप से हविः की आहुति देता हूँ ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।। 4 ।।

हे प्रजागण ! तुम्हारी प्रेरणा समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, मन समान हों, सुसंगठित होकर भली प्रकार शासन चलाओ ।

सरस्वती

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ।। (ऋ० 1/3/10)

पवित्र करने वाली सरस्वती, अन्न या बलों से युक्त होकर कर्म सम्पत्ति सम्पन्न होकर यज्ञ में हमारी कामना पूर्ति करो ।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति ।। (ऋ० 1/3/12)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रज्ञा (बुद्धि) के द्वारा सरस्वती समस्त ज्ञान विज्ञान को प्रकाशित करती है तथा समस्त संसार को उद्धारित करती है।

वाक्

यद् वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।

चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्या परमं जगाम ॥ (ऋ० 8/100/10)

यह वाक् अविज्ञेय पदार्थों को बताती है, यह हर्षदात्री स्वामिनीरूपा वाक् चारों दिशाओं में सर्वत्र अन्तरिक्ष में पय या उदक का दोहन करती है, इसका परम रूप कहाँ चला जाता है, यह पता नहीं।

अतिस्तुति (आध्यात्मिक मन्त्र)

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु जातमष्ट रोदसी ॥ (ऋ० 8/70/5)

हे दिव्य परमेश्वर (इन्द्र)! तेरी दिव्यलोक में सैंकड़ों द्युलोक और भूमियां हैं। तुमको हे वज्रिन्! सैंकड़ों-सहस्रों सूर्य (नक्षत्र) भी या द्यावा-पृथिवी व्याप्त नहीं कर सकते। तुम असीम या अनन्त हो।

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।

उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥ (ऋ० 10/106/6)

भर्त्ता और हन्ता रूप सृणि रूप अशिवनौ तुम जगत के पालक हो। तुम नैतोश (हिंसक) शीघ्रहन्ता जयशील हर्षप्रद होते हुये मुझ मरणशील मनुष्य को अजर अमर कर दो।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ (ऋ० 4/58/3)

इस यज्ञ के चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, तीन स्थानों पर बंधा हुआ यज्ञ देव (महादेव) मनुष्यों में वृषभ तुल्य प्रविष्ट हुआ।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद् विदुस्तइमे समासते ।।
(ऋ० 1/ 164/39)

जिस अन्तःकरण (परमाकाश) में सभी देव स्थित हैं, जो ऋचा या ओम् का परमस्थान है, इसको जो नहीं जानता, वह केवल ऋचा को नाम मात्र से जान कर क्या करेगा। जो अक्षर (परमात्मा) को जानता वही सुखी रहता है।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ।। ऋ० 1/164/31)

मैंने जन्म धारण करते हुये और मोक्ष के प्रति गमन करते हुये इस परम-आत्मा (सत्त्व लक्षण आत्मा) का दर्शन किया है। यह जीवात्मा अनुकूल और प्रतिकूल वासनाओं को धारण करता हुआ पुनः पुनः भुवनों में जन्म लेता हुआ घूमता है।

गायत्री मन्त्र—ऊँ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। (ऋ० 3।62।10)

सबके स्रष्टा या प्रेरक परमात्मा के परम तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों के लिए प्रेरित करे।

एकेश्वरवाद—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निराहुरथो दिव्यस्सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।
(ऋ० 1।164।64)

इसी महान् परमात्मा को (अग्नि को) इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण गरुत्मान् कहते हैं। एक ही सत्य को विद्वान् बहुधा कहते हैं, उसी को याम, अग्नि और वायु कहते हैं।

परमात्मा—न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चाप्सुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।।
(ऋ० 10।82।7)

तुम केवल विद्या मात्र से इसको नहीं जान सकते, ब्रह्मज्ञानी ही इसको जानते हैं। अज्ञानान्धकार से आवृत वादरूक प्राणतर्पक मनुष्य ही संसार को प्राप्त होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्तत् सोमो महिषश्चकारापां यद् गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥
(ऋ० 9।97।41)

सोम (परमात्मा) ने महान् आपों (सृष्टियों) को बनाया, उसने हिरण्य-गर्भ का वरण किया, इन्द्र को देवराज, पवमान में बल और सूर्य में ज्योति उत्पन्न की।

जीवात्मा—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नयन्यो अभिचाकशीप्ति ॥
(ऋ० 164।20।1)

एक ही वृक्ष पर दो सुन्दर सखा, पक्षी समान रूप से बैठे हैं, इनमें से एक जीवात्मा वृक्ष के फल खाता है और दूसरा परमात्मा केवल उसका द्रष्टा मात्र है।

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समानः ॥
(ऋ० 10।55।5)

चलनशील चंचल दमनशील, इन्द्रियों के मध्य में युवा अमर आत्मा स्थित है, वह जागरशील है, परमात्मा के कौशल को देखो जो जीवात्मा रात्रि में सोकर पुनः दिन में जीवित हो जाता है, अर्थात् पुनः पूर्ववत् कार्य करता है।

आधिदैव पक्ष में यह चन्द्रमापरक मन्त्र है।

चतुर्थ अध्याय

(ऋग्वेद में वर्णित सभ्यता और संस्कृति)

भौगोलिक विवरण—ऋग्वेद में अनेक पर्वतों, नदियों, नगरों और जनपदों एवं जातियों का उल्लेख है। उन सबका संक्षिप्त विवरण यहाँ उपस्थित किया जाता है। ऋग्वेद में सप्तसिन्धु का बहुधा उल्लेख मिलता है। इन सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदियों में सिन्धु की प्रधानता है। 'सिन्धु' शब्द सामान्य नदी और समुद्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। परन्तु यह सिन्ध नदी के अर्थ में ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। सिन्धु पश्चिमी भारत की प्रसिद्ध सिन्ध ही है। इस नदी और इसकी सहायक नदियों का सिंचित प्रदेश 'सप्त सिंधु' था। परन्तु ऋग्वेद में ऐसे सप्त सप्त नदियों के त्रिक (अर्थात् 21 नदियों) का उल्लेख है—

'प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्र मुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ।। (ऋ०)

यहाँ त्रिसप्तक सिन्धु के साथ सिन्धु का प्राधान्य उल्लिखित है। इन 21 नदियों के नाम थे—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये ऋणोह्या सुषोमया ।।
तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयते ।।
(ऋ० 10।75।5-6)

ये चौदह नदियाँ थीं—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता, तृष्टामया, सुसर्त्वा, रसा, कुम्भ, श्वेता, गोमती और क्रमु। आगे नदी सूक्त के मन्त्रों में—ऊर्णवती, हिरण्यमयी, वाजिनीवती, सीलमावती, एनी, चित्रा और ऋजीती—इस प्रकार 21 नदियों का उल्लेख है। मन्त्रों में सरस्वती और दृषद्वती नदियों का विशेष माहात्म्य है—

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इडायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपगायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ।। (ऋ० 3।23।4)

"पृथिवी के उत्कृष्ट प्रदेश में हे समृद्ध अग्ने! मैं तुम्हें विशेषतः स्थापित करता हूँ जहाँ दृषद्वती और सरस्वती नदियाँ बहती हैं।"

उत्तर काल में इसी सारस्वत प्रदेश को 'आर्यावर्त' कहते थे, यही ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देश था। (मनुस्मृति अ. 2।17-19)।

ऋग्वेद में इनके अतिरिक्त—अंशुमती, कुलिशी, अज्जसी, सुवास्तु, सरयु, हरियूपीया—इत्यादि नदियों के नाम मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्वतों में हिमालय और मुञ्जवान् (सोम का स्थान) का उल्लेख है। सुवास्तु के निकट तुग्व तीर्थ उल्लिखित है। गन्धार देश की भेड़ों के ऊन का वर्णन है (गन्धारीणामिवाविका ऋ० 1।126।7)। ऋग्वेद (3।53।14 में कीकट देश का उल्लेख है, जहाँ यज्ञ नहीं होते थे—

"किं कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ॥"

यास्क ने कीकट को अनार्यनिवास बतलाया है. यह वर्तमान मगध (बिहार) था।

वर्णाश्रमधर्म—ऋग्वेद में 'पञ्चजन' शब्द का बहुधा उल्लेख है। 'पञ्च-जन' शब्द के अर्थ के विषय में प्राचीनकाल से ही बहुधा मतभेद है। कीथ और मैकडानल 'पञ्चजन' को यदु, तुर्वसु, पुरु, अनु और द्रुह्यु जनों को मानते थे। ये ययाति के पाँच पुत्र थे, जिनसे पाँच क्षत्रिय जातियाँ उत्पन्न हुईं। लेकिन प्राचीन वेदाचार्यों का इस सम्बन्ध में यह मत था—

मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः। गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः। यास्कौपमन्यवावेतान् आहतुः पञ्च वै जनान्। निषादपञ्चमान् वर्णान् मन्यते शाकटायन ऋत्विजो यजमानं च शाकपूणिस्तु मन्यते। होताध्वर्यु-स्तथोद्गाता ब्रह्माचेति वदन्ति तान् ॥ चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् च प्राणश्चेत्यात्म-वादिनः ॥ गन्धर्वाप्सरसो देवा मनुष्याः पितरस्तथा। सर्पाश्च ब्राह्मणे चैव श्रूयते ह्यैतरेयके।" (बृहद्० 7।68-72।।) "यास्क के मत में मनुष्य, पितर, देव, गन्धर्व, नाग-राक्षस, औपमन्यव के मत में गन्धर्व, पितर, देव, असुर और यक्षराक्षस, शाकपूणि के मत में होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा, यजमान सहित—पञ्चजन हैं। आत्मवादियों के मत में चक्षु, श्रोत्र, मन, वाक् और प्राण पञ्चजन हैं। ऐतरेयब्राह्मण में गन्धर्वाप्सरा, देव, मनुष्य, पितर और नाग—पञ्चजन माने हैं।"

सत्यव्रत सामाश्रमी के मत में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन आर्य तथा दास और दस्यु (शूद्र) ये पाँच मिलकर पञ्चजन थे—"मनुष्य शब्द पर्यायत्वमाप्तं पञ्चजन इति। तदेवमेषु पञ्चजनेषु कर्मादिभेदत एव ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्य इति त्रय आर्याः, दासो दस्युश्चेति द्वावनार्याविति स्थितम्।" (ऐतरेयालोचन, पृ० 15)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋग्वेद के मन्त्रों के निर्माण के समय यद्यपि चार वर्ण बन चुके थे, लेकिन वे कर्म के वरण('वर्णो वृणोतेः' यास्क) के अनुसार वर्ण बनते थे। जो ब्रह्मचर्य का वरण करता था, वही ब्रह्मचारी या ब्राह्मण था। कवष ऐलूष ऋषि शूद्र होते हुये ब्राह्मण ऋषि बन गया, विश्वामित्र कौशिक का इतिहास प्रसिद्ध है कि किस प्रकार वशिष्ठ से स्पर्धा करते हुए ब्रह्मर्षि बन गये। मरुत्त जन्म से क्षत्रिय होकर वैश्य कहलाये। स्वयं इन्द्र कश्यप ब्राह्मण का पुत्र देवयुग में सर्वाधिक तेजस्वी क्षत्रिय और सम्राट् बन गया—

इन्द्रो वै ब्राह्मणः पुत्रः कर्मणा क्षत्रियोऽभवत् ।।
ज्ञातीनां पापवृतीनां जघान नवतीर्नव ।। (म० शा० 22।11)

ऋग्वेद में बार-बार उल्लिखित है कि इन्द्र ने असुरों के पुरों का 99 बार विनाश किया, जिससे वह 'पुरन्दर' कहलाया। उस समय ब्राह्मण, ऋषि और राजा असुर कन्याओं से विवाह करते थे। यथा अखग असुर की कन्या का विवाह काण्व नार्षद से हुआ था, ययाति का विवाह वृषपर्वा असुर की कन्या शर्मिष्ठा से हुआ था। उस समय जाति प्रथा जन्म से नहीं थी और न उसका बन्धन इतना प्रबल था। ऋभुओं का इतिहास इसका साक्षी है। सुधन्वा अङ्गिरस ऋषि (प्रह्लाद के समकालीन, इन्द्र से एक पीढ़ी पूर्व, क्योंकि प्रह्लाद पुत्र विरोचन और इन्द्र साथ-साथ पढ़ते थे) के तीन पुत्र हुये—ऋभु, विभ्वा और वाज। ये अपने कर्म से शिल्पी (बढ़ई) बने और देवत्व को प्राप्त हुये। ऋग्वेद के मन्त्रों में इनकी स्तुति हुई है। अनेक क्षत्रिय राजा—मनु, यम, इन्द्र, मान्धाता, शौनहोत्र, वीतहव्य, काण्व, और वैश्य वात्सप्रि भलन्दन आदि भी ऋषि बन गये। अतः स्पष्ट है कि जातिप्रथा—जन्म से नहीं थी, वह परिवर्तनशील और कर्म से थी।

प्रसिद्ध पुरुषसूक्त (10।90।2) में चातुर्वर्ण्य का उल्लेख है—ब्राह्मण को समाज का मुख, राजन्य को भुजा, वैश्य को जांघ और शूद्र को पैर बतलाया गया है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रमधर्म—ऋग्वेद के मन्त्रों में चार आश्रमों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, केवल ब्रह्मचर्य और गृहस्थों का उल्लेख है। यद्यपि अन्य वेदों एवं इतिहास के पुराणों के प्रमाण से जानते हैं कि चातुराश्रम्य व्यवस्था भी अति प्राचीन युग में प्रचलित थी। ब्राह्मणों और उपनिषदों में भैक्षचर्या का स्पष्ट वर्णन मिलता है। बौधायन कल्पसूत्र के अनुसार प्रह्लाद के वंशज कपिल असुर ने आश्रम व्यवस्था की स्थापना की थी। ऋग्वेद में ब्रह्मचारी और गृहस्थ का वर्णन है। गृहस्थ का गृहपति कहते थे। ऋग्वेद के सूर्यासूक्त में सूर्या के विवाह का विस्तार से वर्णन है, वहाँ श्वसुर श्वश्रू, देवर, ननाह आदि कौटुम्बिक पद मिलते हैं और वैवाहिक जीवन के आदर्श का स्पष्ट चित्र मिलता है। ऋग्वेद में तापस, तपस्वी आदि का उल्लेख भी है। ऋग्वेद कोई इतिहास का ग्रन्थ नहीं और न उसके मन्त्रों की रचना एक काल में हुई, अतः उसमें यदि किसी घटना, तथ्य या वस्तु का उल्लेख न मिलने से उस वस्तु का अभाव सिद्ध नहीं होता।

स्वामी दयानन्द के मत में वेद की रचना और ज्ञान सभी के लिये है, उन्होंने मन्त्रों के ही प्रमाण से सिद्ध किया है कि वेदवादी मनुष्यमात्र के लिये है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय (य० 26।2)

इससे स्वामी जी के मत में शूद्र का वेदाध्ययन में अधिकार विहित होता है।

उस काल में यज्ञ होते थे, जिनमें एक से अधिक पत्नियों की आवश्यकता होती थी। कम से कम यज्ञशील पुरुष की तीन चार पत्नियाँ होती थीं और शूद्रा पत्नी को 'रामा' कहा जाता था। विवाहसूक्त के मन्त्र से ज्ञात होता है कि उस समय दशपुत्र होना श्रेष्ठ माना जाता था। स्त्रियों की स्थिति उस समय उत्तम थी। घोषा, अपाला, सार्पराज्ञी, विश्पला, इन्द्राणी आदि ऋषिकायें मन्त्रद्रष्टा हुई थीं। सरस्वती, वाक्, सूर्या, सावित्री, यमी आदि देवों के तुल्य पूजनीय देवता भी थीं। इससे नारी के प्रति पूजा भाव प्रगट होता है। वधू को सम्राज्ञी पद से विभूषित किया जाता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजनैतिक व्यवस्था—प्रारम्भ में राजा अपने प्रताप और बल के आधार पर राष्ट्र बनाता था, उत्तरकाल में यह वंशपरम्परा से राजपद मिलने लगा। यद्यपि ऋग्वेद में राजसूयादि यज्ञों का उल्लेख नहीं है, परन्तु उस समय भी राजा का अभिषेक होता था और उस कृत्य को ऐन्द्रमहाभिषेक या राजसूय कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा की प्रतिज्ञा का उल्लेख मिलता है जिसमें वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि मैं प्रजा से द्रोह करूँ तो मेरे इष्टापूर्त, लोक, सुकृत, आयु और प्रजा का नाश हो जाये। (ऐ० ब्रा० 8।3।15)। इस ग्रन्थ में आठ प्रकार के राजाओं का वर्णन भी है—अनुराज्य, भोज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य, माहाराज्य और आधिपत्य (सार्वभौम राजा)।

वैदिकग्रन्थों में सभा और समिति नाम की दो राजनैतिक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है—

'सभा च या समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।'

ऋग्वेद में 'विदथ' नाम की संस्था का बहुधा उल्लेख मिलता है, जिसमें विद्वान मनीषी अपनी वक्तृत्व-कला का प्रदर्शन करते थे। 'परिषद्' नाम की संस्था का उल्लेख भी मिलता है जिसमें शास्त्रार्थ होता था।

सभा को नरिष्ठा भी कहा जाता था। सभा राजसभा प्रतीत होती है जिसमें राजवर्ग एवं मन्त्रिवर्ग (पुरोहित आदि द्वादशरत्न) बैठते थे। समिति सम्भवतः पौरजनों की लोकसभा होती थी। सभासद भी राजा के साथ इष्टापूर्त का षोडश भाग प्राप्त करते थे—

"यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।"

दूत और चर—ऋग्वेद में दूत, दूती, चर (गुप्तचरों) का उल्लेख है। अर्थशास्त्र में आचार्य चाणक्य ने लिखा है कि इन्द्र के सहस्त्रों गुप्तचर थे, जिससे उसकी 'सहस्राक्ष' संज्ञा प्रथित हुई (अर्थ० 1।1।29)। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में अग्नि को देवों का 'दूत' बतलाया है। सरमा-पणि संवाद में सरमा अपने को इन्द्र की दूती कहती है—

इन्द्रस्य दूती रिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयोनिधीन्वः ।। (10/108/2)
वरुण के स्पशों (गुप्तचरों-सिपाहियों) का ऋग्वेद में उल्लेख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजनादि—अपूप, क्षीर, व्रीहियवा, उदमन्थ, आज्यमन्थ, सक्तु, पुरोडाश यवागू आदि आर्यों के प्रिय भोजन थे—

'यत्तेऽद्य कृणवद् भद्रशोचे। अपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।। (ऋ० 10।45।9)

इस मन्त्र में देवता के लिये घृतवान् अपूपं का उल्लेख है। अथर्ववेद में लिखा है कि राजा परीक्षित के राज्य में स्त्री पति से पूछती है कि मैं दधि या मन्थ क्या लाऊं—

कतरत्र आहराणि दधि मन्था परिश्रुतम्।
जाया पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परीक्षितः ।। (अथर्व० 20।126।9)

इन्द्र के लिये दधि दुग्ध मिश्रित सान्नाय हवि का विधान मिलता है।

ऋग्वेद के मन्त्र में केवल अश्वमेधसूक्त में अश्ववध के अतिरिक्त अन्य किसी पशु के वध या मांसभक्षण का उल्लेख नहीं मिलता। गौवध का तो विल्कुल ही उल्लेख नहीं है। गौ को मन्त्रों में 'अघ्न्या' संज्ञा दी है, जिसका अर्थ है न मारने योग्य। एक मन्त्र में लिखा है—

यो पौरुषेयेण पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते। यो अश्वेन पशुना यातुधानः। यो अघ्नाया भरति क्षीरमग्ने। तेषां शीर्षाणि हरसऽपि वृश्च।" इस मन्त्र में अश्व और गौ के हत्यारे को मारने का आदेश है।

ऋग्वेद में यद्यपि द्यूत (जुआ) का उल्लेख मिलता है, लेकिन उसकी निन्दा की है और उसके खेलने का निषेध किया गया है। उत्तरकाल में ब्राह्मण ग्रंथों में द्यूत (राजसूय यज्ञ में) और सुरापान (सौत्रामणी यज्ञ में) विधान बन गये।[1] ऋग्वेद में तो केवल सोमरस के पान का उल्लेख है।[2]

चार्वाक ने कहा है कि वेदों में मांसभक्षण असुरों और राक्षसों का चलाया

---

(1) सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः (ऋ० 10।5।6)

(2) पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।।
(ऋ० 3।52।7)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है। रघुनन्दन शर्मा ने 'वैदिक सम्पत्ति' ग्रन्थ में इस विषय की विस्तृत विवेचना की है, उन्होंने वेद और इतिहास पुराणों के प्रमाण से वैदिक यज्ञों में हिंसा का अभाव सिद्ध किया है—

श्रूयते पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोक परायणाः। (म० अनु० 115156)
सुरां मत्स्यान्म धुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदषु कल्पितम्।
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेनत्प्रकल्पितम्॥ (म० शा० 26519-10)

वस्त्र—ऋग्वेद में सिले हुये वस्त्रों का वर्णन है। रुद्र के गजचर्म पहिनने का उल्लेख है। उस समय यजमान तार्प्यवस्त्र, उष्णीष आदिवस्त्र धारण करते थे। कृष्णाजिनों का यज्ञों में वृषभचर्म का कृषि में बहुधा प्रयोग था।

अलङ्कार—ऋग्वेद में निष्क नाम के आभूषण का बहुधा उल्लेख है, जो सम्भवतः मुद्रा के रूप में भी प्रयुक्त होता था, यह ग्रीवा में भी धारण किया जाता। निष्क के अतिरिक्त रुक्म भी स्वर्णाभूषण था।

कृषि और पशुपालन—ऋग्वेद में यव, गोधूम आदि की कृषि का वर्णन है द्यूतसूक्त में ऋषि कृषि करने का आदेश देता है। ऋग्वेद में गौ, वृषभ चर्म, पयः, आदि का बहुधा वर्णन है, उस समय गाय और अश्व के अतिरिक्त महिषी (भैंस), हस्ति, गर्दभादि पशु भी पाले जाते थे। ऋषि और राजा सहस्त्रों गायों को पालते थे, यज्ञों में उनके दूध चर्मादि का उपयोग होता था। उष्ट्रादि पशु भी पाले जाते थे। अज और अवि भी बहुतायत से पाले जाते थे। यज्ञ में उत्तरकाल में अज (बकरा) प्रयुक्ततम पशु माना गया।

अरण्यपशु—वेद में पशुओं के दो विभागों का उल्लेख है, एक तो ग्राम्य पशु जो यज्ञिय पशु थे, दूसरे अरण्यपशु-यथा-सिंह, हस्ती, तरक्षु, शार्दूल-शरभ, व्याघ्र, महिष, द्विप, वृक, वराह (शूकर) इत्यादि।

औषधि-वनस्पति—ऋग्वेद में उदुम्बर, विभीतक, अश्वत्थ, खदिर, बिल्व सिध्रक आदि यज्ञिय वृक्षों का उल्लेख है। सोमलता का मूलोद्भव मुञ्जवान् पर्वत बतलाया है। सोमलता या कवक को लाने का अद्भुत कर्म श्येन पक्षी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते थे, यह निम्न मन्त्रों से सिद्ध है—

आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम्। (ऋ० 4/26/7)
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥
(ऋ० 1/32/14)

सोम को ऋग्वेद में एक औषधि माना गया है। ऋग्वेद में सोम का इतना महात्म्य है कि पूरा नवममण्डल सोमस्तुतियों से ही भरा पड़ा है। ऋषियों का विश्वास था कि सोमपान से अमरत्व प्राप्त होता है—

"अपाम सोमम् अमृता अभूम।" (ऋ० 8/48/3)

वाणिज्य—ऋग्वेद में धातुओं में सुवर्ण का बहुधा उल्लेख भी है, "इसको प्रायः हिरण्य कहा गया है। अयस् (लोहे) आदि का उल्लेख भी है, सीसा," ताम्रादि का उत्तरवर्ती वैदिक ग्रंथों में, वर्णन है, एवं रजत का भी उल्लेख है।

ऋग्वेद में रथनिर्माण, वस्त्रनिर्माण, भवननिर्माण, नौनिर्माण आभूषण-निर्माण, एवं चर्म वस्तुओं का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है। भिषक् और वैद्य भी उस समय होते थे, जो औषधियाँ बनाते थे। रथ शिल्पियों में ऋभुओं और वैद्यों में उशना और अश्विनीकुमारों का उल्लेख है। पशुपालन और कृषि ही मुख्य उद्योग धन्धे थे, परन्तु वाणिज्य भी पूर्ण विकसित था। 'पाणि' वणिक् को ही कहते थे। ये व्यापारियों का समूह था जो सुदूर देशों और द्वीपों में व्यापार करता था। ये पणि लोग रसा (रहा) नदी के पार ईराक (मैसोपोटामियां) में बस गये थे। इनको उत्तरकाल में फिनिशियन कहा गया। ऋग्वेद में शतारित्र वाली समुद्रिय नावों का भुज्यु अश्विनी और वरुण के प्रसङ्ग में उल्लेख है। अतः सामुद्रिक व्यापार भी दूर देशों से अवश्य होता था।

ज्ञान-विज्ञान और कला—स्वयं ऋग्वेद भाषा सौष्ठव, छन्दोज्ञान, दर्शन और धर्म, सभ्यता और संस्कृति की सर्वोच्चता का प्रमाण है। उस समय लिपिज्ञान, अक्षरज्ञान भाषा, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, विद्या, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिल्पविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान—सभी कुछ अपनी 'पराकाष्ठा' पर पहुंचे हुए थे। ऋग्वेद तो केवल स्तुतियों का संग्रह है, परन्तु उनके अध्ययन से उक्त विद्याओं की परमोच्चता सिद्ध होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञान के क्षेत्र में शिल्प (रथ, नाव और विमान-निर्माण) की कला उस समय ज्ञात थी। सम्भवतः ऋषिगण ग्रह नक्षत्रों की यात्रायें अथवा अंतरिक्ष यात्रायें करते थे, ऐसा आभास मन्त्रों के पठन से होता है। यद्यपि इसका अकाट्य प्रमाण नहीं है, केवल अनुमान ही अधिक है। ऋभुओं ने इन्द्र के लिये त्रिलोकगामी रथ का निर्माण किया। भुज्यु की नाव सौ डाड़ों वाली (शतारित्रा) थी। अश्वनीकुमारों का रथ भी त्रिलोकगामी था।

चिकित्सा विज्ञान—ऋग्वेद में औषधिविज्ञान और शरीरविज्ञानं के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री मिलती है। उस सबका संकलन इस पुस्तक में असंभव है। कुछ यज्ञ भी ऋतुयज्ञ या भैषज्य यज्ञ कहे जाते थे, अथर्ववेद और ब्राह्मणों में चिकित्सा का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में वैद्य को विप्र और भिषक् या विद्वान् कहा जाता, चिकित्सक का ही अपभ्रंश अंग्रेजी का 'डाक्टर' है। आज भी विद्वान् को डाक्टर की उपाधि दी जाती है, देखिये मन्त्र—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातन वैद्य शब्द का अर्थ भी विद्वान होता है। (ऋ० 10/97/6)

ऋग्वेद में शल्यचिकित्सा के अनेक उदाहरण मिलते हैं, यथा अश्विनी कुमारों ने बूढ़े च्यवन को चिकित्सा से जवान बनाया, खेल की पत्नी विश्पला की टूटी जाँघ लोहे से जोड़ी, ऋजाश्व को चक्षुदान दिया, इत्यादि अनेक घटनाओं का उल्लेख है।

ज्योतिषविज्ञान—ऋग्वेद में पृथिवी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा है—'भूर्जज्ञे उत्तानपाद भुव आशा अजायन्त' (ऋ० 10/72/4) उत्तानपाद पृथिवी हुई, पृथिवी से दिशायें उत्पन्न हुई।' इन्द्र (परमात्मा) ने चलायमान पृथिवी को सुदृढ़ किया—

'यः पृथिवीं व्यथमानामदृहद्यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्'।"

(ऋ० 2।12।1)

ऋग्वेद में सूर्य का वर्णन इस प्रकार है—

सप्त युञ्जति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्त नामा।

त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥ (ऋ० 2।12।1)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"एक चक्र रथ में सात अश्व जुते हुये हैं। सप्त नामों का एक ही अश्व रथ को खींचता है। उस चक्र में तीन नाभियां हैं। उस अजर और अनर्व रथ में सब भुवन (लोक) स्थित है।"

ऋग्वेद में मानुषयुग का अनेकश उल्लेख है —

देवानां पूर्व्ये युगे सतः सदजायत। ऋ० 10।62।2)

तदूचिषे मानुषेमा युगानि। (ऋ० 1।103।4)

विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः (ऋ० 5।52।4)

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान दशमे युगे।)ऋ० 1।158।6)

ऋग्वेद पञ्चसंवत्सरात्मक युग का संकेत भी मिलता है।

ऋग्वेद में चान्द्र मास, सौर मास, वर्ष, समा, संवत्सर, परिवत्सर, मलमास, द्वादशमास 720 अहोरात्रों का उल्लेख मिलता है—

सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः (ऋ० 1।164।11)

360 दिनों का वर्णन है—'त्रिशता न शंकवोऽपिताः षष्टिर्न चलाचलासः (ऋ० 1।164।48)। ऋग्वेद (10।85।2) में— फाल्गुनी व अर्जुनी (मघा) नक्षत्र वर्णित हैं। उत्तरायण, दक्षिणायन, षड्ऋतु दिवस, रात्रि आदि का उल्लेख है। वारों का वासर नाम से उल्लेख है सिनीवाली कुहू का उल्लेख है जो अमावस के नाम हैं।

"अमी हि ऋक्षा निहितास उच्चाः" (ऋ० 1।24।10) मन्त्र में सप्तर्षि नक्षत्रों का उल्लेख है पञ्चग्रह, शुक्र, वृहस्पति इत्यादि का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है। शुक्र को प्रायः वेन कहा गया है, जो Venus है।

पञ्चम अध्याय

यजुर्वेद

यजुर्वेद की प्राचीन काल में 101 शाखायें थीं। यह दो प्रकार का है— कृष्णयजुर्वेद और शुक्लयजुर्वेद। इनमें 86 शाखायें कृष्णयजुर्वेद की और 15 शाखायें शुक्ल यजुर्वेद की थीं। उपलब्ध शाखाओं का संक्षिप्त वर्णन आगे किया जाएगा। यजुर्वेद की उपलब्ध संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कल्पसूत्रों का वाङ्मय बहुत ही विशाल है। 101 शाखाओं का सम्पूर्ण वाङ्मय कितना विशाल होगा, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

यजुर्वेद में श्रौत यज्ञों-दर्शपूर्णमास से पुरुषमेध तक का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है। यजु की परिभाषा जैमिनि ने इस प्रकार की है—'अनियताक्षर पादावसानं यजुः।" अर्थात् अनियमित अक्षरों से पाद के समाप्त होने वाले वाक्य की संज्ञा 'यजु' है। यजुओं का एक भेद निगद है। जो वाक्य यज्ञ में उच्च स्वर से बोले जाते हैं, उन्हें 'निगद' कहते हैं, जैसे 'प्रोक्षणीरासद्य' 'अग्नीन् विहर' इत्यादि प्रैष वाक्य जो अध्वर्यु द्वारा यज्ञ में कहे जाते हैं। यज्ञ करने के लिए चार प्रधान ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ 'होता' ऋत्विक् करता है, यजुर्वेद के कर्मकाण्ड को 'अध्वर्यु' करता है, 'सामवेद' के सामों को उद् गाता गाता है, और अथर्ववेद सहित चारों वेदों के विधान को 'ब्रह्मा' बतलाता है—स्वयं ऋग्वेद के एक मन्त्र में इनका कर्त्तव्य निर्दिष्ट है—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥
(ऋ० 10।71।11)

"होता ऋचाओं का पोषण करता है, उद्गाता शक्वरी सामों का गान करता है, ब्रह्मा यज्ञकर्म के सम्पन्न होने पर बोलता है और अध्वर्यु यज्ञ में कर्त्तव्य का आदेश देता है।"

यजुर्वेद की संहिताओं में गद्य और पद्य दोनों मिश्रित मिलते हैं अर्थात् उनमें संहिता और ब्राह्मण मिश्रित है, बल्कि यजुर्वेद का अधिकांश भाग गद्य में है। मन्त्र भाग तो अधिकांश में ऋग्वेद की ऋचायें, जिनसे देवताओं का आह्वान, आहुति आदि दी जाती है। यजुर्वेद की संरचना यज्ञों में विनियोग आदि के लिये ही हुई थी।

यजुर्वेद के दो भेद—यह पहिले ही बताया जा चुका है कि यजुर्वेद दो प्रकार का मिलता है—कृष्ण और शुक्ल यजुः —

"शुक्लं कृष्णमिति यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"यजुर्वेद दो प्रकार का कहा जाता है—शुक्ल और कृष्ण; वाजसन के मन्त्रों को शुक्ल और तैत्तिरीय के मन्त्रों को कृष्ण कहते हैं।"

इनके इस नामकरण का कारण एक विद्वान् ने इस प्रकार बतलाया है—

"बुद्धिमालिन्य हेतुत्वाद्यजुः कृष्णमीर्यंते।

व्यवस्थितप्रकरणाद्यजुः शुक्लमीर्यंते।" (प्रतिज्ञासूत्रभाष्य)।

"बुद्धि की मलिनता के कारण एक यजुः को कृष्ण कहते हैं और प्रकरणों के व्यवस्थित रूप से होने के कारण दूसरे को शुक्ल यजुः कहा जाता है।" कृष्णयजुर्वेद में प्रकरण अव्यवस्थित अवश्य हैं, परन्तु उक्त नामकरण का हेतु समीचीन प्रतीत नहीं होता। हमारे मत में आदित्य के नाम से यजु 'आदित्यानि यजूंषि' वाजसनेय के नाम से 'वाजसनेयानि यजूंषि' कहलाते हैं, उसी प्रकार कृष्णद्वैपायन के नाम से 'कृष्णु यजुः' कहलाये। शुक्ल सूर्य या विवस्वान् का नाम था। अतः आदित्य यजुः शुक्ल कहलाये। सभी मन्त्रों और संहिताओं के नाम ऋषि और प्रवक्ता के नाम से ही प्रसिद्ध होते हैं, अतः शुक्ल तथा कृष्ण संज्ञा भी प्रवक्ता आचार्य के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई।

कृष्णयजुर्वेद का मूल—हिरण्यकशिपु, विप्रचित्ति, त्वष्टा, वृत्रासुर आदि असुर पूर्वदेव कहलाते थे। इन्द्र, विष्णु आदि देवों से पूर्व यज्ञ संस्था असुरों में प्रचलित थी। कृष्णयजुर्वेद के मन्त्रों के प्रवर्तक ये असुर और उनके गुरु भृगु (अथर्वा), उशना काव्य आदि ऋषि थे। असुरों के कारण ही अति प्राचीन काल से हिंसामय यज्ञ होते थे। श्री रघुनन्दन शर्मा का यह मत भ्रामक है कि कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीय संहिता रावण ने प्रवर्तित की। रावण तो बहुत उत्तर-काल का व्यक्ति था। स्वयं वैदिक ग्रन्थों के प्रामाण्य से सिद्ध होता है कि पहिले वेदमन्त्र और यज्ञ असुरों में अधिक थे —

"कनीयांसि वै देवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु," (तै. सं. 6।6।11)।

"देवों में थोड़े मन्त्र थे, असुरों के पास बहुत मन्त्र थे।"

"असुरेषु वा एष यज्ञ अग्र आसीत्," (श. ब्रा. 12।9।3।7)॥

"यह यज्ञ पहिले असुरों में प्रचलित था।"

"तैः पुनरसुरैर्यज्ञे कर्मण्यपभाषितम्" (महाभाष्य)

"असुरों ने यज्ञकर्म में अपभाषण किया।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः वैदिकवाणी पहिले असुरों में थी, आलस्यादि से अपभाषण करने के कारण उनकी भाषा म्लेच्छ कहलाई।

असुरों के प्रथम गुरु और पुरोहित भृगु ऋषि थे।

भृगु का ही नाम अथर्वा था, इनको कवि भी कहते थे, अतः इनके पुत्र उशना काव्य कहलाये। अथर्वा की शिष्य परम्परा इस प्रकार मिलती है—

अथर्वा
|
दध्यङ् आथर्वण
|
अश्विनीकुमार
|
विश्वरूप त्वाष्ट्र
|
आभूति त्वाष्ट्र (श० ब्रा० 14।4।6।3)

अतः अथर्वा (भृगु) के अधिकांश शिष्य असुर ब्राह्मण ही थे।

पुराणों के अनुसार उशना भार्गव तृतीय वेदव्यास थे—

"भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।" (वा० पु० 70।4)

"तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः।" (वा० पु०)

अतः तैत्तिरीय संहिता (कृष्णयजुर्वेद) में अधिकांशतः भार्गवों के ही मन्त्र हैं। अतः इसकी परम्परा अत्यन्त पुरानी है। व्यास परम्परा से मन्त्र कृष्णद्वैपायन को प्राप्त हुए। कृष्णयजुर्वेद का यथार्थ व्यवस्थापन, जो वर्तमान संहिताओं में मिलता है, वह इन्हीं कृष्णद्वैपायन व्यास का है, इसीलिये यह कृष्णयजुर्वेद कहलाया। इस यजुर्वेद को व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन चरकाचार्य को पढ़ाया, वैशम्पायन ने अपने शिष्य तित्तिरि को यह वेद पढ़ाया, जिससे वह 'तैत्तिरीय संहिता' कहलाई, इनका विस्तृत परिचय लिखने से पूर्व वाजसनेयिसंहिता (शुक्लयजुर्वेद) का मूल बतलाते हैं।

गोल्डस्टकर नाम के जर्मन विद्वान् के मत में पाणिनि के समय में वाज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सनेयिसंहिता का अस्तित्व नहीं था।[1] ऐसा ही प्राय: डा. वासुदेवशरण अग्रवाल का मत था कि पाणिनि के समय में शतपथब्राह्मण की भूयसी प्रतिष्ठा नहीं थी।[2] इन दोनों मतों में महती भ्रान्ति है। प्रथम, वाजसनेयिसंहिता के प्रवचन-कर्त्ता का वास्तविक नाम वाजसनेय था, याज्ञवल्क्य तो उनका गोत्र नाम था। याज्ञवल्क्य तो विश्वामित्र के सौ पुत्रों (या वंशजों) में से एक थे। याज्ञवल्क्य गोत्र का प्रत्येक पुरुष याज्ञवल्क्य कहला सकता था। अत: याज्ञवल्क्य के नाम से चरण का प्रवर्तन और प्रसिद्धि कैसे होती। शुक्लयजुर्वेद के चरण का प्रवर्तन वाजसनेय के नाम से हुआ और इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि कृष्णयजुर्वेद इससे पीछे रह गया, आज तक यज्ञों में शुक्लयजुर्वेद का ही अधिक प्रचलन है। वाजसनेय के मतों का उद्धरण आपस्तम्ब, जो प्राय: उनका समकालीन तैत्तिरीय आचार्य था, अपने कल्पसूत्र में बीसियों बार देता है। और पाणिनि का तद्-विषयकता सूत्र 'वाजसनेय' के साथ लागू होता है, न कि याज्ञवल्क्य के साथ वाजसनेय तो वैशम्पायन और आरुणि उद्दालक का शिष्य था, अत: जो समय वैशम्पायन (महाभारत युद्ध से पूर्व) का था वही वाजसनेय याज्ञवल्क्य का था, उसमें अन्तर करना इतिहास से खेलना है और जहां तक प्रतिष्ठा का प्रश्न है, सो याज्ञवल्क्य, शुक्लयजुर्वेद और शतपथब्राह्मण की जो प्रतिष्ठा वैदिक वाङ्मय में है, वह न तो (व्यास और ऋग्वेद को छोड़कर) किसी अन्य ऋषि

---

(1) I have adduced for the non-existence in Panini's time of Vajasaneya Samhita arranged by Yajñavalkya. (Panini : His Place in Sanskrit Lit. by T. H. Goldstucker, p. 154)

(2) यदि यह बात सत्य है कि याज्ञवल्क्य भी शाट्यायन आदि के समान ही प्राचीन आचार्य थे, तो प्रश्न होता है कि उनके ग्रन्थों में भी तद्विषयता का नियम लागू क्यों नहीं हुआ, "और याज्ञवल्क्य के नाम से ही चरण का नाम क्यों नहीं प्रवृत्त हुआ" जैसा कि समस्त प्राचीन छन्द और ब्राह्मण एवं कल्पसूत्रों के रचयिता ऋषियों के नाम से भी हुआ। ...इस निश्चित और स्पष्ट प्रश्न का उत्तर यही ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य तुल्यकाल (अचिरकाल) अर्थात् लगभग पाणिनि के आसपास होने वाले आचार्य थे।" (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ. 323)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की है और न किसी वैदिक ग्रन्थ की। प्राचीनकाल में इसकी प्रतिष्ठा को सिद्ध करने वाला तैत्तिरीय चरण का प्रधानतम आचार्य आपस्तम्ब था, जिसने सर्वाधिक प्रमाण वाजसनेय चरण को माना। अतः गोल्डस्टकर और डा. अग्रवाल के मत इतिहास विरुद्ध अतः भ्रामक हैं।

वाजसनेयचरण का मूल—अदिति और कश्यप के द्वादश पुत्र हुए, जिनमें विवस्वान् आदित्य (अदितिपुत्र) ज्येष्ठ थे। विवस्वान् के दो प्रसिद्ध पुत्र हुये—यम और मनु। यम और मनु के दृष्ट मन्त्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं। अवेस्ता में भी वैवस्वत यम के मन्त्र मिलते हैं। यम और मनु के पिता विवस्वान् ने आदिकाल (देवयुग) में शुक्ल-यजुओं का प्रवचन या निर्माण किया था। पुराणों में विवस्वान् को पाँचवा वेदव्यास बताया है—

"पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा" (वा० पु. अ. 23)। शतपथ-ब्राह्मण में विवस्वान् आदित्य की शिष्य-परम्परा के प्रधान आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) आदित्य (विवस्वान्)

(2) अम्भिणी वाक्

(3) नैध्रुवि काश्यप

(4) शिल्प काश्यप

(5) हरित काश्यप

(6) वार्षगण असित

(7) बाध्योग जिह्वावान्

(8) वाजश्रवा

(9) कुश्रि

(10) उपवेशि

(11) उद्दालक

(12) वाजसनेय याज्ञवल्क्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाजसनेय याज्ञवल्क्य पहिले वैशम्पायन के शिष्य थे। किसी कारण से वाजसनेय का गुरु वैशम्पायन से विवाद हो गया, अतः उन्होंने वैशम्पायन के वेदचरण का परित्याग कर दिया। वैशम्पायन का द्वितीय प्रधान शिष्य तित्तिरि था. उसने कृष्णयजुर्वेद को गुरु से ग्रहण कर लिया, अतः कृष्णयजुर्वेद के तित्तिरि प्रवर्तित चरण की संज्ञा तैत्तिरीय हुई और उसकी शाखा तैत्तिरीय संहिता कहलाई। वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने अपना दूसरा गुरु उस समय के प्रसिद्ध वेदाचार्य उद्दालक आरुणि को बनाया जो आदित्य शिष्य परम्परा में हुआ था। वाजसनेय ने आरुणि से आदित्य यजुओं को बड़े तपोयोग से ग्रहण किया, जिसको काव्यमय भाषा में इस प्रकार कहा है—

यथाऽऽर्येणेह विधिना चरताऽवनतेन ह।

मयाऽऽदित्यानि[1] अवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप।

याज्ञवल्क्य ने ये यजुः साक्षात् आदित्य से नहीं, शिष्यपरम्परा में उद्दालक आरुणि से प्राप्त किये। 'आदित्याद्' इस पाठ से यह भ्रम उत्पन्न किया गया। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।" (बृ. उ. 6।5।4)। "ये आदित्य प्रोक्त शुक्ल यजु वाजसनेय याज्ञवल्क्य द्वारा पुनः प्रोक्त हैं। अतः शुक्लयजुर्वेद की मूल परम्परा तैत्तिरीयसंहिता की परम्परा के समान ही अति प्राचीन है, यह देवों की परम्परा में निर्मित हुआ और कृष्णयजुर्वेद के मूल प्रवर्तक असुर गुरु थे। आदित्य परम्परा का उल्लेख गीता में भी द्रष्टव्य है—

इयं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गी. 4।1)।

विवस्वान् के अनेक शिष्य हुये, जिनमें उनके दोनों पुत्र—यम और मनु भी उनके शिष्य थे।

---

(1) इस समय 'आदित्यानि' के स्थान पर 'आदित्याद्' पाठ है जो भ्रष्ट और बाद का बनाया हुआ। मूल पाठ वही होना चाहिये और वह यजूंषि का विशेषण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णयजुर्वेद की संहितायें

चरकाचार्य वैशम्पायन—पाराशर्य व्यास ने वैशम्पायन को यजुर्वेद का अध्ययन कराया। वैशम्पायन का दूसरा नाम चरकाचार्य था—

"चरक इति वैशम्पायनस्याख्या" (काशिका 4।3।104)।

इस चरकाचार्य का उल्लेख शुक्लयजुर्वेद और शतपथब्राह्मण में अनेक स्थानों पर हुआ है, वहाँ इनको चरकाध्वर्यु कहा गया है। वैशम्पायन की प्रोक्त संहिता 'चरकसंहिता' (यजुर्वेद) कहलाई, जो इस समय अनुपलब्ध है, चरक ब्राह्मण के उद्धरण यत्र-तत्र प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। पुराणों के अनुसार वैशम्पायन की शिष्यपरम्परा में 86 यांजुष शाखाओं का प्रवचन हुआ—

वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत्।
षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः॥
षडशीतिस्तया शिष्याः संहितानां विकल्पकाः।
सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदाः प्रकीर्तिताः॥
उदीच्या मध्यदेश्याश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः। (वायु. पु.)

"वैशम्पायन ने यजुर्वेद का पाठ बनाया। इनके 86 शिष्यों ने इतनी ही संहिताओं का प्रवचन किया। उनके तीन विभाग थे—उदीच्य, मध्यदेशीय और प्राच्य।

काशिकावृत्ति में इनका स्पष्ट वर्णन है, जो कि वैशम्पायन के प्रधान शिष्य हुये—

आलम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्गकमलावुभौ॥
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयोऽपरे॥
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनौ॥

"प्राच्यदेशीय शिष्य—आलम्बि, पलङ्ग और कमल थे। ऋचाम आरुणि और ताण्ड्य मध्यदेशीय वेदाचार्य थे। श्यामायन, कठ और कलाप—उदीच्य चरकाचार्य थे।" वैशम्पायन के इन नौ शिष्यों के अनेक शिष्य-प्रशिष्य हुये, जिनके नाम से कृष्णयजुर्वेद की 86 शाखायें प्रसिद्ध हुई। वैशम्पायन चरक तो केवल एक ही चरक शाखा के प्रवर्तक थे, उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने 86 शाखायें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर्तित कीं। इन 86 शाखाओं में से केवल निम्न शाखाओं के नाम ज्ञात हैं—

(1) चरकशाखा
(2) पलङ्कशाखा
(3) आर्चभनीयशाखा
(4) ताण्ड्यशाखा
(5) काठकशाखा
(6) मैत्रायणीयशाखा
(7) छागलेयशाखा
(8) कपिष्ठलशाखा
(9) वारायणीयशाखा
(10) श्वेताश्वतरशाखा
(11) पाताण्डनीयशाखा
(12) वाराहशाखा
(13) ऐकेयीशाखा
(14) औखेयीशाखा
(15) वैखानस „
(16) कालेता „
(17) हिरण्यकेशीय शाखा
(18) आपस्तम्बीय „
(19) सत्याषाढ़ीय „
(20) कौण्डिन्य „
(21) हारीत शाखा
(22) आलम्बिनीय शाखा
(23) कामलीय „
(24) आरुणीय „
(25) श्यामामयनीय „
(26) कालाप „
(27) हारिद्रवीय „
(28) आह्वरक „
(29) चारायणीय „
(30) वारवन्तीय „
(31) औपमन्यव „
(32) मानवीय „
(33) दुन्दुभि „
(34) तैत्तिरीय „
(35) आत्रेयी „
(36) खण्डिकीय „
(37) शाट्यायनीय „
(38) भारद्वाजीय „
(39) वाघूल „
(40) बौधायनीय „
(41) आग्निवेशीय „

इनमें से केवल ये शाखायें उपलब्ध हैं—तैत्तिरीयसंहिता, काठकसंहिता, कपिष्ठल कठ्संहिता, मैत्रायणीसंहिता। इन संहिताओं का संक्षिप्त परिचय नीचे लिखा जाता है—

तैत्तिरीयसंहिता—यह कृष्णयजुर्वेद की प्रतिनिधि संहिता है, सम्भवतः चरकसंहिता भी इसके तुल्य ही होगी। ऋषि तित्तिरि वैशम्पायन का प्रधान शिष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था, उसके द्वारा प्रोक्त होने से यह तैत्तिरीयसंहिता कहलाई। आचार्य तित्तिरि युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित था, अतः यह महाभारत युद्ध से पूर्व संहिता का प्रवचन कर चुका था। हरिवंशपुराण (37।17-19) में एक यदुवंशी सात्वत तैत्तिरि का उल्लेख है, हो सकता है यही यजुर्वेद का प्रवचनकर्त्ता हो।

तैत्तिरीयसंहिता में मन्त्र और ब्राह्मण मिले हुए हैं। इस संहिता में सात काण्ड, चवालीस अध्याय, छः सौ इक्यावन अनुवाक और 2198 मन्त्र हैं। प्रथम काण्ड में आठ प्रश्न, दूसरे में पाँच प्रश्न, तीसरे और चौथे में सात-सात प्रश्न (अध्याय), पाँचवेंकाण्ड में छः प्रश्न, छठे में छः प्रश्न तथा सातवें में सात प्रश्न हैं। क्रमशः इनमें पौरोडाश, याजमान, होत्र और पितृमेध आदि का वर्णन है। छः काण्डों के नाम इस प्रकार हैं—प्राजापत्य, सौम्य, आग्नेय, वैश्वदेव, स्वायम्भुव और आरुण। ये नाम इष्टदेवता और ऋषियों के नाम पर हैं। इस संहिता में प्रजापति के यज्ञ अश्वमेध का अनेक अध्यायों में विशिष्ट वर्णन है। अन्तिम अध्याय तो अश्वमेध सम्बन्धी मन्त्रों से भरे पड़े हैं। वैसे जिन दर्शपूर्णमासादि यज्ञों का वर्णन शुक्लयजुर्वेद में है प्रायः वे ही यज्ञ इस संहिता में वर्णित हैं, परन्तु इसमें सावित्रादि इष्टियों और पितृमेध आदि का अधिक वर्णन है।

काठकसंहिता—कठ सम्भवतः किसी स्थान का नाम था। यह सम्भवतः उदीच्य जनपद था। यह सम्भवतः पंजाब का कोई स्थान था। वहाँ के निवासी कठ कहलाते थे। कठों द्वारा प्रणीत वैदिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल था। काठकसंहिता, काठक ब्राह्मण, काठक कल्पसूत्र, कठोपनिषद् आदि प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। पाणिनि व्याकरण के समान कठवाङ्मय की सुकीर्ति प्राचीन युग में समस्त देशों में फैल चुकी थी। महाभाष्य में पतञ्जलि ने लिखा है—

"यथेह भवति पाणिनीयं महत् सुविहितम् इत्येवमिहापि स्यात् कठं महत् सुविहितमिति।" (म. भा. 4।2।66)।

महाभारत (शा. 344।9) में आद्य कठ ऋषि का उल्लेख है, सम्भवतः यही काठकचरण का प्रवर्तक था। कठ के साथ कालपकचरण की भी बहुत प्रसिद्धि थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काठकसंहिता को जर्मन विद्वान् श्रोडर ने प्रकाशित करवाया। इस संहिता में 5 खण्ड, 18 भाग, 843 अनुवाक और 3061 मन्त्र हैं। इसमें मन्त्रों के साथ ब्राह्मण भाग भी मिला हुआ है। इस संहिता में वे ही विषय हैं जो तैत्तिरीय संहिता में हैं। काठकसंहिता में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है, इनमें एक वैचित्र्यवीर्य धृतराष्ट्र कौरव और बक दाल्भ्य की कथा मिलती है। महाभारतकालीन अन्य व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं।

काठकों के 40 ग्रन्थ प्राचीनकाल में प्रसिद्ध थे। इस समय कठोपनिषद् अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मैत्रायणीसंहिता—कृष्णयजुर्वेद की अन्य संहिताओं की भांति इसमें भी वे ही श्रौतयज्ञ—(दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्यादि) वर्णित हैं। इस संहिता में—4 काण्ड, 54 प्रपाठक और 3144 मन्त्र हैं, ब्राह्मण भाग का पर्याप्त विस्तार है। इस संहिता को भी श्रोडर ने सम्पादित किया था। मानव, वाराह, दुन्दुभि, वादरायण आदि सात ऋषियों ने इस शाखा का विस्तार करके अपने चरणों का प्रवर्तन किया। इनमें से मानव और वाराह के श्रौतसूत्र मिलते हैं, जिनका आगे वर्णन किया जायेगा।

कपिष्ठलकठसंहिता—यह कठ शाखा का ही एक अवान्तर भेद है, इसको डा. रघुवीर ने सन् 1932 में लाहौर से प्रकाशित किया था। कपिष्ठल ऋषि के नाम से स्थान का नाम भी कपिष्ठल प्रसिद्ध था, यह सम्भवतः कैथल हो।

कपिष्ठल कठसंहिता असम्पूर्ण रूप में ही प्राप्त हुई है। पूर्णसंहिता में 8 अष्टक और 64 अध्याय थे। इस समय केवल प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अष्टक ही प्रकाशित हैं। इसमें काठकसंहिता और मैत्रायणीसंहिता के समान ही श्रौतयज्ञों का वर्णन है।

शुक्लयजुर्वेद

वाजसनेय याज्ञवल्क्य—शुक्लयजुर्वेद का मूल पूर्व लिखा जा चुका है और यह भी लिखा जा चुका है कि द्वापरान्त में वैशम्पायन के शिष्य और भागिनेय वाजसनेय ने पुनः शुक्लयजुर्वेद के वाजसनेयचरण का प्रवर्तन किया। इतिहास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराणों में वैशम्पायन को याज्ञवल्क्य का मातुल और गुरु बतलाया है। याज्ञवल्क्य, वाजसनेय का गोत्र नाम था। उनकी माता का नाम वाजसना या पिता का नाम वाजसन था, जिससे वे 'वाजसनेय' कहलाये। पुराणों के अनुसार उनके पिता का नाम ब्रह्मरात या ब्रह्मवाह था। भागवतपुराण में वह नाम देवरात लिखा है। याज्ञवल्क्य विश्वामित्र कौशिक के पुत्र या वंशज थे। उन्हीं विश्वामित्रपुत्र याज्ञवल्क्य के वंश में वाजसनेय याज्ञवल्क्य का जन्म हुआ। इन याज्ञवल्क्यों का मूल निवास आनर्त (गुजरात) कहा गया है, वहाँ चमत्कारपुर के निकट याज्ञवल्क्य का आश्रम था। वाजसनेय का सम्बन्ध मैथिल जनक मिथिलापुरी से भी रहा। याज्ञवल्क्य और वैशम्पायन के विषय में महाभारत का यह वृतान्त महत्वपूर्ण है—

यथाऽऽर्षेयेणेह विधिना चरताऽवनतेन ह।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥
ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम्।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण हं।
कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम्।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः ॥ (शा. 323)

"आर्ष विधि से मैंने यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये (गुरु उद्दालक आरुणि से) आदित्य यजुओं को प्राप्त किया। इसके अनन्तर मैंने सरहस्य, संग्रह और आरण्यक तथा उपनिषद् सहित शतपथब्राह्मण का प्रणयन किया। इसका अध्ययन मैंने अपने सौ शिष्यों को कराया, यह बात सशिष्य मातुल (वैशम्पायन) को बुरी लगी।"

इसी वाजसनेय याज्ञवल्क्य के साथ जनक विदेह से अनेक बार संवाद हुआ जिनका बृहदारण्योपनिषदादि में इतिवृत्त मिलता है। ये घटनायें महाभारत युद्ध से कुछ काल पूर्व की हैं।

पं. भगवद्दत्त के मत में याज्ञवल्क्य की आयु 239 वर्ष थी। (द्र. वै. वा. इ. भाग 1, पृ. 262)

वाजसनेय याज्ञवल्क्य के महाभारत में सौ शिष्य उल्लिखित हैं। उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निम्न 15 शिष्यों ने शुक्लयजुर्वेद की 15 संहिताओं का प्रवचन किया—

याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते काण्ववैधेय शालिनः।
मध्यदिनश्च शापेयी विदग्धश्चाप्युद्दलः॥
ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैशिरी।
आवटी च तथा पर्णी वैणेयः सपराशरः।
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दश पञ्च च स्मृताः॥ (वा. पु. 61।24-26)

अन्य प्रमाणों से भी याज्ञवल्क्य शिष्यों की निम्न 15 शाखायें प्रसिद्ध हुईं—

(1) माध्यदिन शाखा
(2) काण्व „
(3) जाबाल „
(4) शापेय „
(5) बौधेय „
(6) ताम्रायण „
(7) कापोल „
(8) पौण्ड्रवत्स „
(9) आवटिक शाखा
(10) परमावटिक „
(11) पाराशर „
(12) वैणेय „
(13) वैधेय „
(14) कात्यायनीय „
(15) वैजवापीयं „

इस समय केवल माध्यदिनसंहिता और काण्वसंहिता मिलती है, इनका संक्षिप्त परिचय आगे लिखा जायेगा। इन दोनों शाखाओं के शतपथब्राह्मण के भी दो पाठ उपलब्ध हैं।

काण्वशाखा—सम्प्रति काण्वसंहिता और काण्वशतपथब्राह्मण प्रकाशित हैं। वाजसनेयि काण्वसंहिता नाम से इस संहिता का सम्पादन वेबर ने 1852 में किया था। इस संहिता में 40 अध्याय, 328 अनुवाक और 2086 मन्त्र हैं।

कण्व एक गोत्र नाम था, यह नृषद् ऋषि के पुत्र थे, जिनके वंशज काण्व कहलाये, इन्हीं का एक वंशज काण्व वाजसनेय का शिष्य था।

माध्यदिन संहिता—इसका वेदपाठियों में सर्वाधिक प्रचार है। मध्यदिन का कोई ऐतिहासिक वृत्त ज्ञात नहीं है। इस संहिता में 40 अध्याय, 303 अनुवाक और 1975 मन्त्र हैं। अध्याय क्रम से मन्त्रों का विषय इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय — दर्शपूर्णमास यज्ञ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय+तृतीय	—	पिण्डपितृ यज्ञ।
चतुर्थ से आठवें तक	—	अग्निहोत्र, अग्न्याधेय, पुनराधेय, चातुर्मास्य, निरूढपशु और सोमयज्ञ
नवम अध्याय में	—	वाजपेय और राजसूय यज्ञ।
दशम	—	सौत्रामणी यज्ञ।

एकादश से अष्टादश अध्याय तक—अग्निचयन नाम का अतियज्ञ।

इन्हीं के अन्तर्गत षोडश अध्याय में रुद्राध्याय है।

उन्नीसवें अध्याय में सोमयज्ञ वर्णन, बीसवें व इक्कीसवें में भी सोम-विधान है। बाईस से पच्चीस तक अश्वमेध यज्ञ। 26 से 29 अध्याय तक अनेक प्रकीर्ण विधान हैं। 30-31वें अध्यायों में पुरुषमेध, 32-33 अध्यायों से शिव-संकल्प मन्त्र हैं। 35वें अध्याय में पितृमेध मन्त्र और 36 से 39 अध्याय पर्यन्त अनेक यज्ञीय मन्त्र। अन्तिम 40वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् कहलाता है।

यजुर्वेद के कुछ अनमोल वचनामृत

सत्यपालन की प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि (य. 1।5)

"हे अग्रगामी अग्ने (ईश्वर)! व्रतों के स्वामी! मैं व्रत का पालन करना चाहता हूँ, अतः मैं व्रतपालन करने में समर्थ और सफल होऊँ, ऐसी शक्ति दो। मैं असत्य से सत्य को प्राप्त करूँ।

पापशमन की प्रार्थना

"यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे ॥" (य. 3।45)

"हम ग्राम में, अरण्य में, सभा में और इन्द्रियों में जो पाप करते हैं हे परमात्मा! तुम हमारे उन सब पापों को यज्ञ में नष्ट कर दो।"

दीर्घायुःकामना

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ (य. 3।62)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"जमदग्नि की जो तीन आयु हैं, कश्यप की जो तीन आयु हैं देवों का जो त्रि आयु है, वही हमारा त्र्यायुष्य हो अर्थात् हम अत्यन्त दीर्घजीवी होवें।"

ध्रुव-यजमान

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतेन प्रजया पशुभिर्भूयात्।
(य. 5।28)

"हे ध्रुवा! यह यजमान ध्रुव होकर इस यज्ञायतन में प्रजा, पशु से समन्वित हों।"

सुपथगमन की प्रार्थना

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।" (7।43)

"सब विद्वानों के विद्वान् हे अग्ने! हमें धन प्राप्ति के लिए सुमार्ग पर चलाओ।"

सर्वस्वदाता काम

"कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते।" (य. 7।48)

"काम ही दाता है, काम ही सब का प्रति ग्रहीता है।"

आत्मा

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वसुरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
(य. 10।24)

"यह सोम या आत्मा हंस, शुचिषत्, वसु अन्तरिक्षस्थ, होता, वेदिषत्, अतिथि, द्रोणस्थ, नरों में स्थित, वसु, व्योमस्थ, जलज, गोस्थित, ऋतुज और अद्रिज महान् है।

अमृत-पुत्र

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः" (11।5)

"हे अमृतपुत्र देवो! सुनो। तुम्हारे जो दिव्य लोक स्थिर हैं।"

यज्ञप्रसवन

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न स्वदतु।. (य० 11।7)

"हे देव सवित ! (परमप्रभो ।) ! यज्ञ को उत्पन्न या प्रेरित करो, यजमान को सौभाग्य दो। दिव्य गन्धर्व प्रकाशवान् सूर्य हमारी बुद्धि को पवित्र करे और वाचस्पति हमारी वाणी मधुर करे।"

दुर्मतिहनन—"व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीना निषीदन्नो अपदुर्मतिं जहि।"

"समस्त पापों या कीटाणुओं को मारते हुए हे ईश्वर हमारी दुर्मति को नष्ट करो।

शिवतमा आप—"आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महेरणाय चक्षसे ।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते नः उशतीरिव मातरः ॥" (य० 11।50-51)

"जल निश्चय कल्याणकारी होते हैं, वे हमारे में बल प्रदान करें, जिससे हम सुख भोग सकें। हे जलो ! तुम्हारा जो श्रेष्ठतम रस है, उसका हम सेवन करें, जैसे माताएँ अपने पुत्र को दुग्धपान कराती हैं।"

वाक्योवाक्यविद्या

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥
का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिपिपिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ (य० 23।9-12)

"कौन एकाकी चलता है, कौन पुनर्जन्म लेता है। हिम का उपचार क्या है, आवपन स्थान क्या है। सूर्य अकेला चलता है, चन्द्रमा पुनर्जन्म लेता है। अग्नि हिम का इलाज है, भूमि महान् उत्पादन स्थान है।"

पूर्वचित्ति कौन थी, बृहद्वयः कौन था, पिलिपिला क्या है पिशङ्गिला क्या है। द्युलोक पूर्वचित्ति (पूर्वज्ञान) था। अश्व (सूर्य) बृहद्वय (चिरजीवी) था,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवि (पृथिवी) पिलिपिला (पिलपिली) थी और रात्रि ही पिशङ्गिला (पीली) थी।

शिव-सकल्प—यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।
येन कर्म्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।
यस्मिन्नृचः साम यजूंषियस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।
(य० 34।1,2,3,5)

"जाग्रत पुरुष का मन दूर-दूर तक जाता है, तथा सुप्त मनुष्य का मन भी दूर तक जाता है, यह दूरगामी, प्रकाशकों का प्रकाशक मन शुभ संकल्प हो। इस मन के द्वारा मनीषी विद्वान् कर्मठ और बुद्धिमान् होकर यज्ञ में और सभाओं में चातुर्य प्रदर्शित करते हैं, प्रजाओं का अपूर्व प्रेरक मन शिवसङ्कल्प हो। जो चित्त का प्रज्ञान, जो धृति, प्रजाओं की अन्तरामृत ज्योति है, जिसके विना कोई काम नहीं हो सकता, वह मन शुभ संकल्प वाला हो। जिस प्रकार रथनाभि में अरे होते हैं, उसी प्रकार मन में ऋक्, साम और यजुः समाविष्ट होते हैं, जिसमें प्रजाओं का सब कुछ ओतप्रोत है, वह मेरा मन शिव-संकल्प युक्त बने।"

रुद्रस्तवः—नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ।।1।। या ते शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।।2।। यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ।।3।।

'हे रुद्र! महादेव! मन्युमान्! तुमको और तुम्हारे बाण को नमस्कार है। दोनों हाथों से तुम्हें नमस्कार! तुम्हारे कल्याणकारी घोर शरीर हैं, निष्पाप रुद्र! उस कल्याणकारी शरीरों से हमें देखो। जिस बाण को हे गिरिश! देव! हाथ में धारण करते हो, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, उस बाण को कल्याणमय बनाकर संसार का संहार मत करो।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठ अध्याय

सामवेद

महत्व—प्राचीन याज्ञिकों में सामवेद के सामगान का बड़ा महात्म्य था। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अपने को वेदों में सामवेद कहते हैं।[1] गीति या गीत या लय ही 'साम' कही जाती थी। ऋचा को लयपूर्वक ज्ञान की संज्ञा साम थी। सामवेद का इतना महत्व था कि प्राचीनकाल में वेदव्यास सामवेद संहिता की 1000 (एक सहस्र) शाखायें बन गईं। साम के बिना ऋचा अधूरी मानी जाती थी, अर्थात् बिना सामगान के यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता था।

प्राचीन वेदाचार्यों में साम के छन्दः, देवतादि के विषय में मतभेद था। निदानकार पतञ्जलि के मत में साम के छन्द और देवता होते हैं। गौतम के मत में नहीं होते। जिस छन्द में ऋचा गाई जाती है, वही साम का छन्द होता है, इसी प्रकार देवता समझना चाहिये।

सामवेद से सङ्गीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है और सङ्गीत से सप्तस्वरों (षडज, ऋषभ, गन्धर्व, निषाद आदि) का सम्बन्ध है। सामवेद से गान्धर्ववेद की उत्पत्ति हुई जो सङ्गीतशास्त्र ही था, इसी से नाट्यवेद की उत्पत्ति हुई अथवा नाट्यवेद सङ्गीत का ही एक अङ्ग था। नाट्यवेद के आदिप्रर्वतक भरतमुनि सङ्गीत के महान् आचार्य थे। अतः सामवेद या साम सङ्गीत पर ही आधृत है।

सामवेद का शाखा विभाग—इतिहासपुराण, महाभाष्य, प्रपञ्चहृदय, चरणव्यूह इत्यादि प्राचीन समस्त ग्रन्थों में सामवेद की एक सहस्र (1000) शाखायें बताई हैं। बौद्धग्रन्थ दिव्यादान में सामवेद की 1080 शाखायें बतलाई गई हैं। सामवेद के निम्न आचार्य प्रसिद्ध थे, जिन्होंने सामवेद की शाखाओं का प्रवर्तन किया। जैमिनि, कौथुमि, राणायन, सात्यमुग्र, कालाप, तवलकार लौगाक्ष, भाल्लवि, भागुरि, औपमन्यव, मशक, वार्षगण्य, शालिहोत्र, दुर्वासा शाट्यायन, ताण्ड्य, रुरुकि, गार्ग्य इत्यादि।

---

(1) 'वेदानां सामवेदोऽस्मि (गी० 10।22)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामशाखा प्रवर्तक जैमिनि ऋषि—भारतीय इतिहास में व्यासशिष्य प्रसिद्ध जैमिनि एक ही हुये हैं। पाश्चात्य विद्वान् कीथादि सामवेत्ता जैमिनि का या तो अस्तित्व ही नहीं मानते अथवा उनको मीमांसाकार जैमिनि से पृथक् मानते हैं। कीथ की दृष्टि में मीमांसाकार जैमिनि का समय ईस्वी सन् के प्रारम्भ के आसपास था। डा. पाण्डुरङ्ग वामनकाणे जैसे पाश्चात्य रङ्ग में रंगे भारतीय विद्वान् को भी मानना पड़ा कि आपस्तम्ब (कल्पसूत्रकार, जिसका समय पाश्चात्य दृष्टि में ईसा से 400 या 500 पूर्व था) को जैमिनीय मीमांसा सूत्रों का ज्ञान था, क्योंकि अनेक सूत्र आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में मिलते हैं (द्र० History of Dharmshāstra, p. 42)।

भारतीय इतिहास में आचार्य जैमिनि पाराशर्य व्यास में तृतीय प्रधान शिष्य थे, जिनको व्यासजी ने सामवेद के सम्पादन और प्रचार का भार सौंपा। आश्वलायनगृह्यसूत्र (3।3।5) में वैशम्पायन, सुमन्तु और पैल के साथ जैमिनि को भी सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत का आचार्य बतलाया है। इस समय भी जैमिनीय भारत का अश्वमेध भाग मिलता है, यद्यपि उसका मूल पाठ अत्यन्त भ्रष्ट और आधुनिक है। जैमिनि ऋषि ने भारत और मीमांसा सूत्रों से पूर्व सामसंहिता, जैमिनीय ब्राह्मण और जैमिनीय कल्पसूत्र की रचना की थी। उनका वेद में प्रधान शिष्य तवल्कार ऋषि था। जैमिनीयश्रौत के भाष्यकार ने व्यास, जैमिनि और तवल्कार का इस प्रकार स्मरण किया (यह श्लोक जैमिनीय ब्राह्मण में भी है)—उज्जहारागमाम्बोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा। न्यायैर्निमथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥ सामाखिलं सकलवेदमुनीन्द्राद् व्यासादवाप्य मुवियेन सहस्रशाखम्। व्यक्तं समस्तमणि सुन्दर गीतरागं तं जैमिनिं तवल्कारगुरुं नमामि॥ "जिन्होंने दर्शनशास्त्रों रूपी समुद्र को मथकर न्यायों के द्वारा धर्मामृत को निकाला, वह जैमिनि मुनि मुझ पर प्रसन्न हों। जिन्होंने सकलवेदों के ज्ञाता मुनीन्द्र व्यास से सम्पूर्ण सामों को प्राप्त करके सहस्रशाख सामवेद का प्रवर्तन किया, जो कि समस्त सुन्दर गीत रागों की मणियों से अलंकृत है, उन तवल्कार गुरु जैमिनि को नमस्कार है।"

महाभारत सभापर्व (4।9-10) के अनुसार युधिष्ठिर की सभा में बक दाल्भ्य, व्यासादि के साथ जैमिनि ने भी प्रवेश किया "बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णद्वैपायनः शुकः। सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम्।" यहाँ 'वयम्' से वैशम्पायन अभिप्रेत है, क्योंकि वही जनमेजय को महाभारत सुना रहे थे। जनमेजय के नागयज्ञ में भी जैमिनि उद्गाता बने थे—

"उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान् कौत्सार्यजैमिनिः।" (आदि० 48|6)

जनमेजय के समय में जैमिनि अत्यन्त वृद्ध थे, अतः दीर्घजीवी थे।

जैमिनि की शिष्य परम्परा इस प्रकार थी—

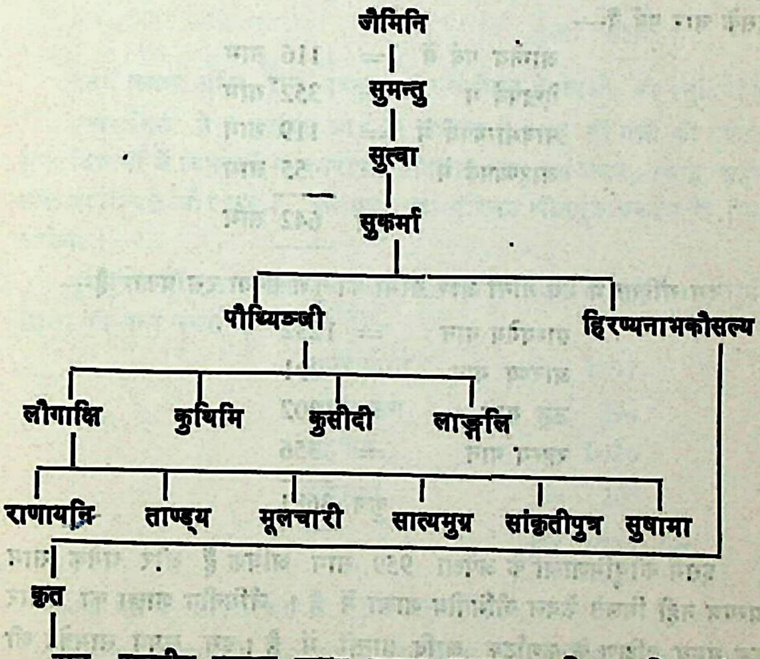

राड, राडवीय, पञ्चम, वाहन, तालक, माण्डूक, कालिक, राजिक, गौतम, अजवस्त, सोमराजायन, पुष्टि, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अंगुलीय, कौशिक, शलिमञ्जरि, सत्य, कापेय, कानिन, पाराशर (24 शिष्य)।

पुराणों में हिरण्यनाभ कौसल्य और राजा कृत को सम्मिलित किया है जो इतिहास की एक समस्या है, क्योंकि ये दोनों राजा महाभारतयुद्ध से कई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शताब्दी पूर्व हो चुके थे। पुराणों में लिखा है कि पौष्यञ्जि और हिरण्यनाभ के शिष्यों ने 500-500 शाखाओं का प्रवचन किया।

इस समय सामवेद की केवल तीन शाखायें मिलती हैं—जैमिनीयसाम-संहिता, कौथुमीयसामसंहिता और राणायनीय सामसंहिता। इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ लिखा जाता है।

जैमिनीयसंहिता—जैमिनीयशाखा केवल हस्तलेखों में मिलती है। अभी तक मुद्रित नहीं हुई विद्वानों ने खोज करके सामसंख्या लिखी है। तदनुसार इसके चार पर्व हैं—

आग्नेय पर्व में	=	116	साम
ऐन्द्रपर्व में	=	352	साम
पावमान्यपर्व में	=	119	साम
आरण्यपर्व में	=	55	साम
	कुल	642	साम

इस संहिता में गेय गानों और सामों की कुल संख्या इस प्रकार है—

ग्राम्यगेय गान	=	1232
आरण्य गान	=	291
ऊह गान	=	1802
रहस्य गान	=	356
	कुल	3681

इसमें कौथुमिशाखा के अपेक्षा 959 साम अधिक हैं और अनेक साम अन्यत्र नहीं मिलते केवल जैमिनीय शाखा में हैं। जैमिनीय शाखा का प्रचार इस समय दक्षिण के कर्णाटक आदि प्रान्तों में है। इस समय सामवेद की कौथुमीयसंहिता सर्वाधिक प्रचलित है, जिसको सातवलेकर आदि वैदिक विद्वानों ने प्रकाशित किया है और सायणाचार्य ने इस पर भाष्य भी लिखा है।

आगे कौथुमीय शाखा का परिचय लिखा जाता है।

कौथुमीय शाखा—सामवेद की प्रत्येक संहिता में दो प्रकार के साम मिलते हैं, अतः इस शाखा में भी वे ही दो विभाग हैं—गान और आर्चिक गान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को पूर्वार्चिक और दूसरे विभाग को उत्तरार्चिक भी कहते हैं। पूर्वार्चिक में 6 प्रपाठक हैं और 650 ऋचायें हैं। इसमें भी चार पर्व हैं, जिनकी साम संख्या इस प्रकार है—

आग्नेयपर्व या काण्ड की मन्त्र संख्या			=	114
ऐन्द्र काण्ड			=	352
पावमान काण्ड	"	"	=	119
आरण्य काण्ड	"	"	=	55
महानाम्न्यार्चिक	"	"	=	10
			कुल	650

इनमें क्रमशः अग्नि, इन्द्र, पवमान और विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ हैं।

उत्तरार्चिक में 9 प्रपाठक और 21 अध्याय हैं। यह भी यज्ञों की दृष्टि से सात विभागों में विभक्त है—दशरात्र (द्वादशाह यज्ञ), संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्र। इन यज्ञों का परिचय श्रौतसूत्र प्रकरण में लिखा जायेगा।

पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक में 226 ऋचाओं की द्विरुक्ति हुई है। कौथुमीय शाखा की मन्त्र संख्या इस प्रकार है—

ग्रामगेयगान	=	1197
आरण्यगान	=	294
ऊहगान	=	1026
ऊह्यगान	=	205
	कुल	2722 मन्त्र

एक मत से उत्तरार्चिक में 1225 मन्त्र हैं।

सत्यव्रत सामाश्रयी संस्करण में पूर्वार्चिक के पर्वों के नाम—अर्कपर्व, द्वन्द्वपर्व, व्रतपर्व और शुक्रियपर्व—हैं। आरण्यगान पाँच दशतियों में विभक्त हैं। राणायनीय शाखा में 1549 मन्त्र हैं। इसका विभाग भी पूर्वशाखा के समान है।

सामों का नामकरण और लय पद्धति—विन्टरनीत्स ने लिखा है—"शुरू-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुरू में, सचमुच, सामगान की लयें असंख्य (80001) ही होंगी।......बृहत् और रथन्तर का उपवर्णन और प्रयोग तो ऋग्वेद के युग से चला आता था। (प्रा. भा. सा., भाग 1, पृ. 138)। वास्तव में सामगान की पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। 'बृहत्साम' को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था, जैसा कि गीता (10।35) में भी उल्लेख है। सामवेद के ब्राह्मणों में सैकड़ों सामों के नाम हैं, यह नाम उस ऋषि के नाम पर है जो इस साम का द्रष्टा होता था, उदाहरणार्थ वामदेव ऋषि द्रष्ट साम वामदेव्य, कलि द्वारा द्रष्ट कालेय साम, वसिष्ठ द्वारा द्रष्ट वासिष्ठ साम। कुछ प्रसिद्ध सामों के नाम हैं—वैरूपसाम, अभीवर्त, अष्टा-निधनम्, महादिवाकीर्त्यम्, आमहीयम्, आसितम्, आयास्यम् इत्यादि। कुछ सामों के नाम विषय या देवता के नाम पर भी प्रसिद्ध हुये जैसे आग्नेय, राक्षोघ्न साम इत्यादि।

एक ही साम के एक से अधिक द्रष्टा ऋषि माने गये हैं। सामों के द्रष्टा कुछ ऋषि ये हैं—भरद्वाज, मेधातिथि काण्व, उशना काव्य, मधुच्छन्दा, शंभुर्बार्हस्पत्य, सौभरि काण्व, वसिष्ठ मैत्रावारुणि, प्रगाथ काण्व इत्यादि।

जैसा कि प्रायः सर्वविदित है कि सामगान में स्वरों और लयों का ही महत्व है। कुछ उपनिषदों (जैसे तैत्तिरीयोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद्) तथा शिक्षा ग्रन्थों में (जैसे पाणिनीयशिक्षा, नारदीयशिक्षा) स्वरों के उच्चारण सम्बन्धी नियम अभिहित हैं। सामगान में इन स्वरों का स्वर के वेगानुसार विधान है— क्रुष्ट, मन्द्र और अतिस्वर्य।

सामगान कुल चार प्रकार के होते हैं—ग्रामगेयगान, अरण्यगान, ऊहगान और ऊह्यगान। ग्राम (नगर) में जो स्वर गाया जाता था, उसे ग्राम गेयगान कहते थे, इसी प्रकार अरण्य (वन) में गाये जाने वाले साम आरण्य कहे जाते थे। छान्दोग्योपनिषद्-सामगान के पाँच रूप बताये हैं—हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन। इनके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार से उदात्त, अनु-दात्त और स्वरित—इन तीन स्वरों का समावेश होता है।

सामवेद के अनेक स्तोम और शस्त्रों, प्रतिगर आदि का ब्राह्मणों में विधान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तम अध्याय

अथर्ववेद

प्राचीनता—प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार चारों वेद अनादि और अपौरुषेय हैं, इनमें पौर्वापर्य-सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वान् अथर्ववेद को अन्य वेदों की अपेक्षा अर्वाचीन मानते हैं। वास्तव में मूल वेद एक ही था,[1] जिसके मन्त्रों का वर्गीकरण यज्ञों के विनियोग के लिए समय-समय पर 28 व्यासों ने किया।[2] वेदों के वर्गीकरण का तथ्य ऋग्वेद के इस मन्त्र से पुष्ट होता है कि इस मन्त्र के दर्शन-काल में चारों प्रकार के वेद थे—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥

(ऋ० 10।71।11)

इस मन्त्र में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—चारों वेदों के ऋत्विकों का कर्त्तव्य विनिर्दिष्ट है। ब्रह्मा अथर्ववेद—सहित चारों वेदों का ज्ञाता होता था। प्राचीनकाल में अथर्ववेद के निम्न चार नाम और थे—अथर्वाङ्गिरसवेद, भृग्वङ्गिरसवेद, ब्रह्मवेद और छन्दोवेद। ब्रह्मा के द्वारा प्रोक्त होने इसका नाम ब्रह्मवेद था और अथर्वा के नाम से अथर्ववेद—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

(मु० उ० 1।1।1)

भृगु और अथर्वा—एक ही ऋषि का नाम था, साथ ही अङ्गिरा ऋषि भी इनके समकालीन थे—अङ्गिरा और भृगु तथा इनके वंशज आङ्गिरस (बृहस्पति भरद्वाजादि) और भार्गवों (उशना, च्यवनादि) के मन्त्र इस वेद या

---

(1) एकवेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवोऽभवन्' (सनत्सुजातीयपर्व 2।37)।
(2) एको वेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरादिषु' (वि० पु० 3।3।20)।
"वेदं तावदेकं सन्तम्" (दुर्गटीका, निरुक्त 1।20)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलवेद में संग्रहीत थे, इसलिए वेद की प्राचीन संज्ञा-भृग्वङ्गिरस या अथर्वाङ्गिरस वेद थी। ब्राह्मणग्रंथों और छान्दोग्यादि उपनिषदों में इस वेद को इन्हीं दो नामों से अभिहित किया है। मूलवेद की यही संज्ञा थी, उत्तरकाल में ऋगादि संज्ञायें प्रसिद्ध हुईं। मूलवेद या अथर्ववेद की एक प्राचीनतम संज्ञा—छन्दोवेद थी, इसकी पुष्टि निम्नलिखित दो अकाट्य प्रमाणों से होती है. प्रथम,—पुरुषसूक्त के इस मन्त्र से सिद्ध होता है कि आदिकाल में छन्दोवेद या अथर्ववेद ही था—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ (ऋ० 10।90।9)

यहाँ पर 'छन्दांसि' (छन्द) मन्त्रों की ही संज्ञा है, जो मूलवेद की सम्पत्ति थे। मन्त्रों या छन्दों की ऋक्, साम और यजुः संज्ञायें तो प्रयोग, स्तुति, विनियोगादि के कारण उत्तरकाल में हुई, अतः प्राचीनतम और मूलवेद-छन्दोवेद (अथर्ववेद) ही था। यम के वंशज पितरों (ईरानियों) में भी इसकी यही (छन्दोवेद) संज्ञा थी, जिसका विकृत रूप जेन्दा अवेस्ता (जेन्द=छन्द, अवेस्ता=वेद) मिलता है। वरुण के वंशज गन्धर्वों (अरबों) में इसका विकृत रूप 'कुरान' के रूप में मिलता है। यह छन्दोवेद भृगु के पिता वरुण और सम्भवतः उससे पूर्व भी था। अतः अथर्ववेद ऋग्वेद से भी प्राचीनतर है, इसका आभास प्रकारान्तर से विन्टरनीत्स जैसे जर्मन विद्वान् को भी था—"अथर्ववेद का जो रूप हमें आज मिलता है, वह निस्सन्देह ऋग्वेद का समकालीन नहीं, यद्यपि उसका विषय कुछ अंशों में शायद ऋग्वेद से भी प्राचीनतर हो।" "...कुछ अंश अथर्ववेद का ऋग्वेद के अधिकांश से परतर है तो कुछ, समकालीन ही नहीं, पूर्वतर भी हो सकता है।" (प्रा० भा० सा० पृ० 101) अथर्ववेद के मन्त्रों का कोई न कोई रूप विन्टरनीत्स के अनुसार यूरोपियन किसानों, रेड इण्डियनों, हब्शियों, मलयों और जर्मनों आदि में पाया जाता है। इसका कारण था कि उनके पूर्वज असुर-दैत्य दानव थे, और इन दैत्य दानवों में छन्दोवेद के मन्त्र अधिक थे, वे असुर ही मन्त्रों (छन्दों) के मूल प्रवक्ता थे—"कनीयांसि वैदेवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु" (तै. सं. 6।6।11) "विश्वरूपुत्वष्टा, त्वष्टावरूत्री, शण्डामर्क, उशना काव्य और यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक कि वसिष्ठ (आदि वसिष्ठ मैत्रावारुणि) हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, विरोचन, बलि, वृषपर्वा आदि दैत्येन्द्रों और दानवों के पुरोहित अथवा मन्त्री थे। ये पुरोहित ही इन आसुर मन्त्रों के प्राचीनतम द्रष्टा थे। अथर्ववेद और अवेस्ता के पर्याप्त मन्त्र अब भी भृगु, उशना या उनके वंशजों के हैं। मल्लिनाथ तक को यह ज्ञात था कि अथर्ववेद का मन्त्रोद्धार वसिष्ठ ने किया था—"अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठकृत इत्यागमः।" (किरातार्जुनीय टीका 10।10)। वरुण के पुत्र और भृगु के भ्राता होने के कारण प्रारम्भ में वासिष्ठों का सम्बन्ध असुरों और गन्धर्वों से था, मानवों (मनु के वंशजों) से यह सम्बन्ध बाद के वासिष्ठों का हुआ।

अथर्ववेद की शाखायें—व्यासजी ने अथर्ववेद का सम्पादन करके उसे अपने प्रधान चतुर्थ शिष्य सुमन्तु को पढ़ाया। सुमन्तु की शिष्य-परम्परा इस प्रकार हुई—

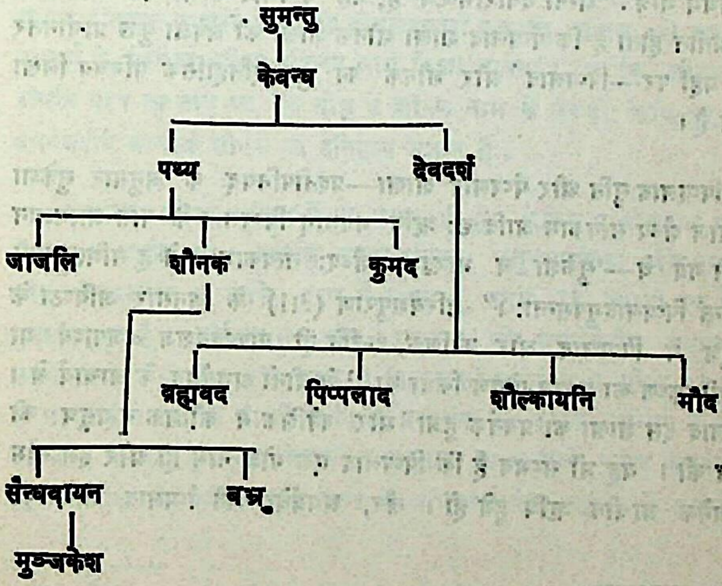

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरणव्यूह में अथर्ववेद की नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं—पैप्पलाद, मौद, शौनकीय, जाजल, देवदर्श, चारणवैद्य, स्तौद, जलद और ब्रह्मवद। इस समय अथर्ववेद की शौनकीय शाखा और पैप्पलाद शाखा ही उपलब्ध हैं। पहिले केवल शौनकसंहिता ही उपलब्ध, जिसका अब भी सर्वाधिक प्रचार है। उन्नीसवीं शती में कश्मीर में पैप्पलाद शाखा की प्राप्ति हुई। इसका प्रकाशन अमेरिका में 1901 में हुआ। बाद में इसकी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ और प्राप्त हुईं।

शौनक शाखा और पैप्पलाद शाखा में अन्तर—इन दोनों के मन्त्रपाठों में पर्याप्त अन्तर है। ह्विटने और राथ (जर्मन विद्वानों) के अनुसार पिप्पलाद शाखा में ब्राह्मण पाठ (गद्य) और आभिचारिक कर्म अधिक हैं। शौनक संहिता का प्रथम मन्त्र "ये त्रिषप्ता परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रत" है। परन्तु गोपथब्राह्मण (1।29) और महाभाष्य पस्पशाह्निक के मत में अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र—'शन्नो देवीरभिष्टये' है, यह पैप्पलाद शाखा का प्रथम मन्त्र है। प्रतीत होता है कि पैप्पलाद शाखा शौनक शाखा की अपेक्षा कुछ प्राचीनतर थी। यहाँ पर—पिप्पलाद और शौनक का कुछ ऐतिहासिक परिचय लिखा जाता है।

पिप्पलाद मुनि और पैप्पलाद शाखा—प्रश्नोपनिषद् के अनुसार सुकेशा भारद्वाज शैव्य सत्यकाम आदि छः ऋषि भगवान् पिप्पलाद के पास आत्मज्ञान सीखने गये थे—'सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यः सत्यकामः···ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।" हरिवंशपुराण (3।1) के अनुसार अविष्ठा के दो पुत्र थे पिप्पलाद और कौशिक, इन्होंने ही पाण्डववंशज अजपार्श्व या अधिसीयकृष्ण का पालन-पोषण किया था।[1] ये दोनों अथर्ववेद के आचार्य थे। पिप्पलाद इस शाखा का प्रवर्तक हुआ और कौशिक ने कौशिक गृह्यसूत्र की रचना की। यह भी सम्भव है कि पिप्पलाद एक गोत्र नाम हो और इस नाम के अनेक प्राचीन ऋषि हुये हों। खैर, अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा का

(1) अविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः। (हरिपु० 3।1।12)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचनकर्त्ता तो अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल में ही हुआ जो उसका मन्त्री भी था।[1]

पैप्पलाद शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ भी था, जो आठ अध्यायों में था। प्रश्नोपनिषद् भी इसी शाखा का उपनिषद् है। पैप्पलाद शाखा में बीस काण्ड हैं। पिप्लाद शाखा सर्वसुलभ न होने से इसका अधिक परिचय नहीं लिखा जा सकता।

शौनक संहिता (अथर्ववेद)—इस समय प्रकाशित शौनक शाखा को ही अथर्ववेद माना जाता है। इस संहिता में 20 काण्ड, 731 सूक्त और 5987 मन्त्र हैं। लगभग 1200 मन्त्र अथर्ववेद और ऋग्वेद में समान हैं। इस समानता का कारण हम पहिले बता चुके हैं कि मूल वेद एक ही था और उसका विभाजन यज्ञादि के उपयोग के लिये किया गया।

इस शाखा के प्रवचनकर्त्ता शौनक ऋषि का यथार्थ परिचय ज्ञात नहीं है, क्योंकि इतिहास पुराणों में प्रसिद्ध दीर्घसत्रकर्त्ता कुलपति शौनक तो ऋग्वेदीय आचार्य थे, जिनका अधिक परिचय आगे लिखा जायेगा। क्योंकि शौनक एक प्राचीन गोत्र का नाम था, इस गोत्र में शौनक नाम के सैकड़ों ऋषि हुए, अतः अथर्ववेदीय आचार्य शौनक का इतिहास अज्ञात है।

इस समय शौनक संहिता में 20 काण्ड ही हैं। लेकिन प्राचीनकाल में इस सम्बन्ध में मतभेद था। क्योंकि पञ्चपटलिका, चतुरध्यायिका जैसे ग्रन्थ जो स्वयं शौनकरचित या उनके चरण में रचित है, उनमें 18 काण्डों तक के ही मन्त्र उद्धृत हैं। कौशिक सूत्र और वैतानसूत्र, जो अथर्ववेदीय सूत्रग्रन्थ हैं, उनमें भी ऐसा ही है। कुछ पाश्चात्य विद्वान् तो अथर्ववेद में पहिले 13 काण्ड ही मानते हैं। इन 13 काण्डों के विषय प्रकीर्णक हैं, जबकि अन्तिम 7 काण्डों के विषय क्रमबद्ध हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार 19 व 20वें काण्ड अथर्ववेद में बाद में जोड़े गये, क्योंकि 20वें काण्ड के अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के समान हैं।

---

(1) वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ (हरिपु० 3।1।15)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरणव्यूह में अथर्ववेद की नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं—पैप्पलाद, मौद, शौनकीय, जाजल, देवदर्श, चारणवैद्य, स्तौद, जलद और ब्रह्मवद। इस समय अथर्ववेद की शौनकीय शाखा और पैप्पलाद शाखा ही उपलब्ध हैं। पहिले केवल शौनकसंहिता ही उपलब्ध, जिसका अब भी सर्वाधिक प्रचार है। उन्नीसवीं शती में कश्मीर में पैप्पलाद शाखा की प्राप्ति हुई। इसका प्रकाशन अमेरिका में 1901 में हुआ। बाद में इसकी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ और प्राप्त हुईं।

शौनक शाखा और पैप्पलाद शाखा में अन्तर—इन दोनों के मन्त्रपाठों में पर्याप्त अन्तर है। ह्विटने और राथ (जर्मन विद्वानों) के अनुसार पिप्पलाद शाखा में ब्राह्मण पाठ (गद्य) और आभिचारिक कर्म अधिक हैं। शौनक संहिता का प्रथम मन्त्र "ये त्रिषप्ता परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रत" है। परन्तु गोपथब्राह्मण (1।29) और महाभाष्य पस्पशाह्निक के मत में अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र—'शन्नो देवीरभिष्टये' है, यह पैप्पलाद शाखा का प्रथम मन्त्र है। प्रतीत होता है कि पैप्पलाद शाखा शौनक शाखा की अपेक्षा कुछ प्राचीनतर थी। यहाँ पर—पिप्पलाद और शौनक का कुछ ऐतिहासिक परिचय लिखा जाता है।

पिप्पलाद मुनि और पैप्पलाद शाखा—प्रश्नोपनिषद् के अनुसार सुकेशा भारद्वाज शैब्य सत्यकाम आदि छः ऋषि भगवान् पिप्पलाद के पास आत्मज्ञान सीखने गये थे—'सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यः सत्यकामः···ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।" हरिवंशपुराण (3।1) के अनुसार अविष्ठा के दो पुत्र थे पिप्पलाद और कौशिक, इन्होंने ही पाण्डववंशज अजपार्श्व या अविसीयकृष्ण का पालन-पोषण किया था।[1] ये दोनों अथर्ववेद के आचार्य थे। पिप्पलाद इस शाखा का प्रवर्तक हुआ और कौशिक ने कौशिक गृह्यसूत्र की रचना की। यह भी सम्भव है कि पिप्पलाद एक गोत्र नाम हो और इस नाम के अनेक प्राचीन ऋषि हुये हों। खैर, अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा का

(1) अविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः। (हरिपु० 3।1।12)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचनकर्त्ता तो अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल में ही हुआ जो उसका मन्त्री भी था।[1]

पैप्पलाद शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ भी था, जो आठ अध्यायों में था। प्रश्नोपनिषद् भी इसी शाखा का उपनिषद् है। पैप्पलाद शाखा में बीस काण्ड हैं। पिप्लाद शाखा सर्वसुलभ न होने से इसका अधिक परिचय नहीं लिखा जा सकता।

शौनक संहिता (अथर्ववेद)—इस समय प्रकाशित शौनक शाखा को ही अथर्ववेद माना जाता है। इस संहिता में 20 काण्ड, 731 सूक्त और 5987 मन्त्र हैं। लगभग 1200 मन्त्र अथर्ववेद और ऋग्वेद में समान हैं। इस समानता का कारण हम पहिले बता चुके हैं कि मूल वेद एक ही था और उसका विभाजन यज्ञादि के उपयोग के लिये किया गया।

इस शाखा के प्रवचनकर्त्ता शौनक ऋषि का यथार्थ परिचय ज्ञात नहीं है, क्योंकि इतिहास पुराणों में प्रसिद्ध दीर्घसत्रकर्त्ता कुलपति शौनक तो ऋग्वेदीय आचार्य थे, जिनका अधिक परिचय आगे लिखा जायेगा। क्योंकि शौनक एक प्राचीन गोत्र का नाम था, इस गोत्र में शौनक नाम के सैकड़ों ऋषि हुए, अतः अथर्ववेदीय आचार्य शौनक का इतिहास अज्ञात है।

इस समय शौनक संहिता में 20 काण्ड ही हैं। लेकिन प्राचीनकाल में इस सम्बन्ध में मतभेद था। क्योंकि पञ्चपटलिका, चतुरध्यायिका जैसे ग्रन्थ जो स्वयं शौनकरचित या उनके चरण में रचित है, उनमें 18 काण्डों तक के ही मन्त्र उद्धृत हैं। कौशिक सूत्र और वैतानसूत्र, जो अथर्ववेदीय सूत्रग्रन्थ हैं, उनमें भी ऐसा ही है। कुछ पाश्चात्य विद्वान् तो अथर्ववेद में पहिले 13 काण्ड ही मानते हैं। इन 13 काण्डों के विषय प्रकीर्णक हैं, जबकि अन्तिम 7 काण्डों के विषय क्रमबद्ध हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार 19 व 20वें काण्ड अथर्ववेद में बाद में जोड़ गये, क्योंकि 20वें काण्ड के अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के समान हैं।

---

(1) वेमक्यात्‌ः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ (हरिपु० 3।1।15)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ह्विटने ने अथर्ववेद के 18 काण्डों को तीन बृहद् विभागों में बाँटा था—

प्रथम भाग 1- 7 काण्ड
द्वितीय भाग 8-12 „
तृतीय भाग 13-18 „

अतः विद्वानों की सम्मति में मूल शौनक संहिता में 19 व 20वें काण्ड नहीं थे। पञ्चपटलिका के मत में इस संहिता में केवल 4627 मन्त्र थे। प्राचीन आचार्यों के एक मतानुसार अथर्ववेद के मन्त्रों की संख्या 12000 (द्वादश सहस्र) थी—

द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मत्वं साभिचारिकम्।
एतद्वेदरहस्यं स्यादथर्ववेदस्य विस्तरः॥ (चरणव्यूह)

इस समय अथर्ववेद में लगभग 6000 मन्त्र मिलते हैं।

अथर्ववेद के प्रधान ऋषि—अथर्ववेद, प्रथमकाण्ड के ऋषि—अथर्वा, सिन्धुद्वीप, चातन, भृग्वङ्गिरा, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शन्ताति।

द्वितीय काण्ड के ऋषि—वेन, मातृ, शौनक, भृगु, शुक्र, चातन, अथर्वा, कपिञ्जल, शम्भु, काण्व, पतिवेदन।

तृतीय काण्ड के ऋषि—अथर्वा, भृग्वङ्गिरा, वामदेव, ब्रह्मा, विश्वामित्र, वसिष्ठ, उद्दालक।

चतुर्थ काण्ड के ऋषि—वेन, अथर्वा, गरुत्मान्, भृगु, अङ्गिरा, ऋभु, शंताति, शुक्र, वसिष्ठ, मृगार, ब्रह्मास्कन्द, बादरायणि।

पञ्चम काण्ड के ऋषि—बृहद्दिवा, अथर्वा, अङ्गिरा, ब्रह्मा, गरुत्मान् इत्यादि।

षष्ठ काण्ड के ऋषि—अथर्वा, जमदग्नि, गरुत्मान्, बभ्रु पिङ्गल, उद्दालक, शौनक, शन्ताति, शुनःशेप, उपरिबभ्रु, कौशिक, प्रचेता, यम, भागलि इत्यादि।

सप्तम काण्ड के ऋषि—अथर्वा, शौनक, भृगु, यम, मेधातिथि, प्रस्कण्व आदि।

अष्टम काण्ड के ऋषि—ब्रह्मा, चातन, शुक्र, अथर्वा, कश्यप, अथर्वाचार्य।

नवम काण्ड के ऋषि—अथर्वा, भृगु, ब्रह्मा इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशम काण्ड के ऋषि—प्रत्यङ्गिरस, नारायण, अथर्वा, गरुत्मान्, बृहस्पति इत्यादि।

एकादश काण्ड के ऋषि—अथर्वा, कुत्स, कश्यप, कौरुपथि, कात्यायन आदि।

द्वादश काण्ड के ऋषि—अथर्वा, भृगु, यम, कश्यप, इत्यादि।

त्रयोदश काण्ड के ऋषि—ब्रह्मा, केवल।

चतुर्दश काण्ड के ऋषि—सूर्या सावित्री।

पञ्चदश काण्ड के ऋषि—अथर्वा, केवल।

षोडश काण्ड के ऋषि—अथर्वा, ब्रह्मा, यम।

सप्तदश काण्ड के ऋषि—ब्रह्मा।

अष्टादश काण्ड के ऋषि—अथर्वा।

उन्नीसवें काण्ड के ऋषि—ब्रह्मा, अथर्वाङ्गिरस, नारायण, गार्ग्य, वसिष्ठ, गोपथ आदि।

बीसवें काण्ड के ऋषि—विश्वामित्र, गोतम, इरिम्बिष्ठि, वामदेव, अयास्य, सौभरि, वसिष्ठ, कृष्ण, मेधातिथि, मिशोक, अष्टक इत्यादि।

अथर्ववेद का विषय-विस्तार—पाश्चात्य लेखक 'अथर्वा' शब्द का अर्थ 'जादू का पुरोहित' करते हैं, उनके अनुसार अथर्वाङ्गिस का अर्थ है जादू-टोने के मन्त्र। इन मन्त्रों में आशीर्वाद, इष्टवस्तु की प्राप्ति, शाप-शत्रु को हानि पहुंचाना, रोगों को दूर करना, जिनको भैषज्यानि कहते हैं। भूत-प्रेतों को भगाना, कीट-पतङ्गों का नाश इत्यादि का वर्णन है। अथर्ववेद में ऋग्वेद के देवता—इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम आदि की स्तुतियां भी हैं तथा पाप, पुण्य, धर्म, अध्यात्म और रहस्य का विवेचन भी है। भाषा और छन्द की दृष्टि से ऋग्वेद और अथर्ववेद प्रायः समान हैं, परन्तु नवीन भाषा और पदों का प्रयोग भी किया गया है। अथर्ववेद के अधिकांश ऋषि—भृगु, कश्यप, अङ्गिरा, इत्यादि प्राचीनतम हैं तो गोपथ, उद्दालक, बादरायण इत्यादि अर्वाचीनतम ऋषि भी हैं। अथर्ववेद—ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान का वेद भी माना जाता है, इस में ब्रह्मज्ञान का उत्कृष्ट रूप मिलता है, जिसका कुछ संकेत आगे किया जाएगा। अथर्ववेद के मुख्य विषय—चिकित्सा, वशीकरण, विवाह, ब्रह्मचर्य महिमा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृहस्थ जीवन वर्णन, राजधर्म, श्रेष्ठ आचरण-उपदेश, ब्रह्मचिन्तन, आयुष्यवर्द्धन, पौष्टिककर्म, स्त्रीकर्म, आभिचारिक कर्म, रहस्य विद्या आदि हैं। कृषि वाणिज्य, गोपूजा, इत्यादि विषय भी यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। पितृ पूजा का विधान भी मिलता है, यम सम्बन्धी सूक्त आगे उद्धृत किए जायेंगे। अथर्ववेद के विषयों की विस्तृत क्रमबद्ध सूची यहां लिखी जाती है—मेधाजनन, रोगोपशमन, भेषज, यातुधाननाशन, विजयप्रार्थना, पाशमोचन, नारीसुख, प्रसूति, यक्ष्मनाशन, कन्या, विद्युत्, पुष्टि, धमनीबन्धन, शत्रुनिवारण, हृद्रोगनाशन, श्वेतकुष्ठ, ज्वरनाशन, रक्षोघ्न, दीर्घायुष्ट्व, शापमोचन, अभय प्राप्ति, पशुसंवर्धन, क्रिमिनाशन, स्वराज्य, राजवरणम्, राष्ट्रकर्त्ता, राजा, दुःख नाशन, शालानिर्माण, गोष्ठ, वाणिज्य, स्वस्तिवाचन, धन संवर्द्धन, शान्ति, वीरजनन, समृद्धि सांमनस्य, ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, वाजीकरण, स्वापन, विषहरण, राज्याभिषेक, अञ्जन, शङ्खमणि, वृषभ, वनस्पति, वृष्टि, अपामार्ग (औषधि, गौ, पिशाचनाश, सेवा संयोजन, ब्रह्मौदन, मृत्युसंतरण, शत्रुनाश, सर्प विषहरण, कृत्याहरण, ब्रह्मगवी, तक्मनाशन, गर्भाधान, घृतहोम, आत्मगोपन, कामात्मा, मृत्युञ्जय, भैषज्य, वर्चस्य, दुःस्वप्ननाशन, पतिलाभ, जलचिकित्सा, सपत्नक्षय, स्वस्त्ययनम्, केशवर्धन, सौभाग्यवर्धन, आत्मा, राष्ट्रसभा, देवस्तुतियां, सपत्नी नाशन, गण्डमालाचिकित्सा, औषधि, मधुविद्या, काम, शाला, ऋषभ, अज, अतिथिसत्कार, यक्ष्मनिवारण, आत्मज्ञान, मणिबन्धन, ज्येष्ठ ब्रह्मवर्णन, वशा गौ, ब्रह्मौदन, ब्रह्मचर्य-महिमा, उच्छिष्टब्रह्म, अध्यात्म, भूमिमहिमा (पृथिवी-सूक्त), अध्यात्म इत्यादि विषय त्रयोदश काण्ड पर्यन्त बार-बार कहे गए हैं।

चतुर्दश काण्ड से विंशतितम काण्ड पर्यन्त के प्रधान विषय—विवाह, अध्यात्म, व्रात्यमहिमा, दुःखमोचन, दुःखस्वप्ननाशन, अभ्युदय प्रार्थना, पितृमेधयज्ञ, नक्षत्रवर्णन, शान्ति, अप्रतिमवीर इन्द्र, अभय, सुरक्षा, राष्ट्र, दर्भमणि, जङ्गिडमणि, कुष्ठनाश, मेधा, रात्रि, काल, आयुष्य। इन्द्रादि देवताओं की स्तुतियां बीसवें काण्ड में हैं।

कुन्तापसूक्त—बीसवें काण्ड के अन्त में अथर्ववेद के खिलरूप में इस नाम के 127 से 136 तक 10 सूक्त मिलते हैं। इस 'कुन्ताप' शब्द का अर्थ ही अज्ञेय है। इस सम्बन्ध में विन्टरनीत्स का ज्ञातव्य है—'इस अध्याय के सूक्त 127-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

136 की संगति क्या है (स्वयं कुन्ताप का शब्दार्थ क्या है) यह कोई आज तक जान नहीं पाया। इतना ही अनुमान होता है कि ये कुन्ताप भी मूलतः यज्ञ-परक ही थे, क्योंकि-अर्थ की दृष्टि से प्रायः ऋग्वेद की दानस्तुतियाँ सी लगती हैं (जिनमें यजमान की उदारता की प्रशंसा तो की ही गई है, लेकिन साथ ही कुछ पहेलियाँ भी इनमें हैं—उनके उत्तर भी हैं··· । (प्रा. भा. सा., भाग 1, पृ. 121)।

कुन्ताप सूक्तों के आगे 137 से 143 सूक्तों में इन्द्रों और अश्विनी देवों की स्तुतियाँ हैं।

आगे अथर्ववेद के प्रसिद्ध कुछ सूक्तों और मन्त्रों को उद्धृत किया जा रहा है, जिससे इस वेद के विषयों का परिचय और महत्व के साथ रसास्वादन होगा।

अथर्ववेद के कुछ मन्त्र

विषघ्नम्—ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराऽरसं विषम् ॥ (अ. 4।6।1)

"दस सिरवाला और दश मुखों वाला विद्वान् ब्राह्मण वैद्य सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। उसने प्रथम सोमपान किया और विष को दूर कर दिया।"

सर्पविषनाशनम्—असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो विमुञ्चामि रथाँ इव ॥6॥
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥7॥
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥8॥
ताबुवं न ताबुवं न घेत्त्वमसि ताबुवम्। ताबुवेनारसं विषम् ॥10॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत्त्वमसि तस्तुवम्। तस्तुवेनारसं विषम् ॥11॥
(अ. 5।13।6।7।8।10।11)

"असित, तैमात, बभ्रु, अपोदक, सात्रासह सर्पों के विष को मैं उसी प्रकार उतारता हूँ जैसे धनुष की डोरी या रथ की डोरी को उतारते हैं। आलिगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और विलगी तुम्हारे माता-पिता हैं, सब ओर तुम्हारे बन्धु हैं, लेकिन विषहीन क्या बिगाड़ लोगे। उरुगुला की पुत्री, असिक्न्या की दासी, सब सर्पों का विष नष्ट कर दिया है। ताबुव तावुव इस मन्त्र से विष को नष्ट कर दिया। इसी प्रकार तस्तुव तस्तुव मन्त्र से सर्पविष नष्ट कर दिया।"

उपजीवनम् (वृत्तिः)—सोदक्रामत्सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ।।1।। तस्या विरोचनः आह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ।।2।।

तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक्ता मायमेवाधोक्। तां मायामसुरा उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति एवं वेद ।।4।।

वह जीवनवृत्ति आगे चली असुरों में आई, असुरों ने उसे बुलाया हे माये! आओ। प्रह्लादपुत्र विरोचन उसका वत्स था, लोहे का पात्र पात्र था, द्विमूर्धा ने उसका दोहन किया। उस माया का आश्रय लेकर असुरगण जीवन निर्वाह करते हैं। यह जो जानता है वह वृत्ति प्राप्त करता है।

सोदक्रामत्सा पितृनागच्छत्तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ।5।।

तस्या यमोराजा वत्स आसीद्रजतपात्रं पात्रम् ।।6।। तामन्तको मार्त्यवोऽधोक्तां स्वधामेवाधोक् ।।7।। तां स्वधां पितर उप० ··· ··· ।।8।।

वह आगे चली, वह पितरों के पास आई, पितरों ने उसे बुलाया हे स्वधे! इधर आओ। उसका यम वैवस्वत वत्स था, रजतपात्र पात्र था, मृत्युपुत्र अन्तक ने उसका दोहन किया। अतः पितर स्वधा पर जीवित रहते हैं, यही उनका उपजीवन (वृत्ति) है।

सोदक्रामत्सा मनुष्यांनागच्छत्तां मनुष्या उपाह्वयरावत्येहीति ।।9।।

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।10।। तां पृथी वैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ।।11।। कृषिच सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति······।।12।।

वह आगे चली और मनुष्यों में आई, मनुष्यों ने उसे बुलाया, इधर आओ। उसका वैवस्वत मनु वत्स था और पृथिवीपात्र थी, उसको पृथी वैन्य ने दोहा, उसने कृषि और सस्य का दोहन किया और मनुष्य इसी पर जीते हैं।

सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत्तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वन्त पुण्यगन्ध एहीति ।। तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्पुष्करपर्णं पात्रम्। तां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्ता पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥5-7॥

वह आगे बढ़ी, अप्सरा और गन्धर्वों में आई, गन्धर्वाप्सराओं ने उसे बुलाया। पुण्यगन्ध इधर आओ। उसका सूर्यवर्चा का पुत्र चित्ररथ वत्स था, पुष्करपर्ण पात्र था, सूर्यवर्चा के (अन्य) पुत्र वसुरुचि ने पुण्यगन्ध का दोहन किया।

सोदक्रामत्से तरजनानागच्छत्तामितरजनाउपाह्वयन्त तिरोध एहीति ॥9॥
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥10॥
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्तां तिरोधामेवाधोक् ॥11॥

वह (यक्षराक्षसो) इतरजनों के पास आई, यक्षराक्षसों ने उसे बुलाया तिरोध (शठता)! इधर आओ! उसका वैश्रवण कुबेर वत्स था और कच्चा वर्तन पात्र था, उसको कुबेरपुत्र रजतनाभि ने दोहा, तिरोधा को दोहा।

सोदक्रामत्सा सर्पानागच्छत्तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥13॥
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥14॥
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्तां विषमेवाधोक् ॥15॥ तद्विषं सर्पा उपजीवन्ति।

वह आगे चलकर नागों के पास आई, नागों ने उसका आह्वान किया हे विषवती आओ। उसका वत्स विशालसर्प का पुत्र तक्षक था, अलाबुपात्र वर्तन था, ऐरावत धृतराष्ट्र नाग ने उस विष का दोहन किया, इसलिये सर्पजन (नाग) विष पर जीवन निर्वाह करते हैं।

व्रात्यः— व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ 1 ॥
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत्तत्प्राजनयत् ॥ 2 ॥

तदेकमभवत्तल्ललाममभवत्तन्महदभवत्तज्ज्येष्ठमभवत्तद्ब्रह्माभवत्तत्तपोऽभवत्तत्सत्यमभवत्तेन प्राजायत ॥3॥
सोऽवर्धत स महानभवत्स महादेवोऽभवत् ॥4॥ (5।1)

"व्रात्य चलायमान था, उसने प्रजापति को प्रेरित किया। उस प्रजापति ने अपनी आत्मा में सुवर्ण को देखा, उसको उत्पन्न किया, वह एक हुआ, ललाम हुआ, वह महान् हुआ, ज्येष्ठ हुआ, वही ब्रह्मा हुआ, वह तप हुआ, वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य हुआ, उससे उत्पन्न हुआ, वह बढ़ गया, वह महान् हो गया और महादेव कहलाया।"

यमः—यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः। यमं ह्यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः सूर्यं चक्षुर्गच्छ वातमात्मा दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ॥12॥
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥13॥

य निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः। सर्वांस्तानग्न आवह पितृन्हविषे अत्तवे ॥34॥ (18।2 अथर्व०)

"यम के लिए सोम पवित्र हो रहा है, यम के लिये हवि की जा रही है। अग्निदूत यज्ञ यम के लिये अलंकृत या बहुत होकर जाता है। हे प्राणि! तुम्हारा चक्षु सूर्य में जाये, प्राणात्मा वायु में जाये, सूर्य किरणों से या ताप से पार्थिव शरीर पृथिवी और सूर्य को प्राप्त हो, अथवा जल रूप होकर जल में जाये, यदि तेरे शरीर पर औषधियाँ रखी हैं तो यहीं रह। (अर्थात् जीवित हो जा) ॥12॥

हे यम! तेरे जो चार आँखों वाले मार्गदर्शक, मनुष्यों को देखने वाले रक्षक दो श्वान हैं, वे हमें सूर्य दिखायें या जीवित करके कल्याणकारी प्राणदान दें ॥13॥

जो पितर जमीन में गाड़े हैं, या बहा दिये हैं या जो रखे हैं या जलाये हैं उन सबको अग्नि, खाने के लिये हवि ले जाओ ॥34॥

कुन्तापसूक्त—इदं जना उपश्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥1॥

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश। वर्ष्मा रथस्य जिजिहीऽते दिव ईषमाण उपस्पृशः ॥2॥ एष इषाय मामहे शतं निष्कान्दश स्रजः। त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥3॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन्। कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥8॥ कतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परिश्रुतम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाया पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥9॥
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥10॥ (127 सूक्त, काण्ड 20)

"रुशमों का राजा कौरम प्रजाजनों द्वारा उपश्रुत, प्रशंसित और स्तुत किया जाता है। वह साठ हजार और नब्बे गायें दान में देता है। उसके बीस वधूयुक्त ऊंट वाहन हैं, रथों के शरीर आकाश से स्पर्धा करते हैं। वह बल के लिये पूजित होता है, सौ निष्क और दश हिरण्यमाला, तीन सौ घोड़े, दस सहस्र गायें दान में दी।

कौरव्य परीक्षित् राजा के राज्य में पत्नी पति से पूछती है मैं तुम्हारे लिये दधि, मन्थ (सत्तु) में से क्या लाऊँ। उसपरीक्षित् ने सिंहासन पर बैठकर प्रजा का महान् कल्याण किया।

प्रवह्लिका— एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥1॥ प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥2॥
तासामेका हरिक्निका ॥3॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥4॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥5॥ क्वाहतं परास्यः ॥6॥ (20।129)

"ये घोड़े तैरते हैं, ये उल्टे जाते हैं, उनमें एक हरिक्निका है, हरिक्निके क्या चाहती हो, सुवर्णमय साधुपुत्र चाहती हूँ। वह कहाँ मर गया।"

ब्रह्मचारीमहिमा— आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥16॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥17॥
ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥18॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वश्राभरत् ॥19॥
(अथर्व० 11।5-16-19)

"आचार्य ब्रह्मचारी है, ब्रह्मचारी ही प्रजापति है, वह प्रजापति होकर विराजता है, वह विराट् और इन्द्र होकर जितेन्द्रिय होता है। ब्रह्मचर्य के तप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, ब्रह्मचर्य से आचार्य ब्रह्मचारी की इच्छा करता है, ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। वाहक अश्व ब्रह्मचर्य से घास को निगलता है। ब्रह्मचर्य से देवों ने मृत्यु को मारा यानी अमर हो गये। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के बल से स्वर्गलोक को प्राप्त किया।

सौमनस्य— सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिः हर्यंत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अनुव्रत पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः
सव्रता भूत्वा वाचा वदत भद्रया (अथर्व० 3।30। 1-3)॥

'मैं तुम्हारे मन को सौहार्दयुक्त और सौमनस्य करता हूँ, प्रत्येक एक दूसरे को चाहे, जैसे गौ वत्स को चाहती है। पुत्र पिता का अनुगामी हो, माता सुमना हो, पत्नी पति से मीठी वाणी बोले। भाई-भाई से वैर न करे, भगिनी बहिन से वैर न करे। वे सब साधुशील होकर नियमपूर्वक अच्छी वाणी बोलें।

अष्टम अध्याय

ब्राह्मण—आरण्यक

ब्राह्मण साहित्य का वैपुल्य—ब्राह्मण ग्रन्थ वेदसंहिताओं के ही उत्तर भाग हैं। प्राचीनकाल में आपस्तम्ब, बौधायन और अर्वाचीन सायणाचार्यादि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को भी वेद मानते थे। यह ब्राह्मण साहित्य इस समय भी पर्याप्त विशाल रूप में मिलता है। इस समय लगभग 18 ब्राह्मण ग्रन्थ, 8 आरण्यक ग्रन्थ और 18 मुख्य उपनिषद् वेद के ही भाग हैं। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों के ही अन्तिम भाग हैं। यह तो उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या है। प्राचीन भाष्यों, टीकाओं आदि में अनेक और ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम और उद्धरण मिलते हैं। आपस्तम्ब जैसे प्राचीन आचार्य ने बहुत से ऐसे ब्राह्मणों के उद्धरण दिये है, जो इस समय अनुपलब्ध हैं। कुछ अनुपलब्ध ब्राह्मणों के नाम हैं—पैप्पलाद ब्राह्मण, सौलभ ब्राह्मण, शैलालि ब्राह्मण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरुणेय ब्राह्मण, भाल्लवि ब्राह्मण, शाट्यायन ब्राह्मण, कंकति ब्राह्मण; कालवीव ब्राह्मण, चरक ब्राह्मण, आश्वलायन ब्राह्मण, तवल्कार ब्राह्मण; पैङ्गायनि ब्राह्मण, वह्वृच ब्राह्मण इत्यादि। इनके उद्धरणादि आपस्तम्वश्रौतसूत्र, ऋग्वेदसायणभाष्यादि में मिलते हैं। इन उद्धरणों को यहाँ प्रदर्शित करना अवांछित विस्तार के कारण अनावश्यक है। प्राचीनकाल में अनुब्राह्मण नाम के ब्राह्मणसदृश ग्रन्थों का अस्तित्व भी प्रतीत होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीनकाल में वैदिक ब्राह्मण वाङ्मय अति विपुल था, इसका एक अंश मात्र ही इस समय प्राप्त है।

ब्राह्मणग्रन्थ का लक्षण और विषय—'ब्रह्म' वेद या मन्त्र की संज्ञा है, ऋग्वेद में 'ब्रह्माणि' पद स्तुति के अर्थ में बहुधा आया है, इस ब्रह्म या मन्त्र की व्याख्या ही ब्राह्मण है। आपस्तम्व, बौधायनादि आचार्य इन वेदव्याख्यानों को भी वेद ही मानते थे—

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० श्रौ० 24।1।31)
'मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते' (बौ. गृ. 2।6।3)

आचार्य वात्स्यायन ने भी न्यायभाष्य में लिखा है—यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः" इन सबसे ज्ञात होता है कि सूत्राचार्यों के समय मन्त्र और ब्राह्मण की वेद या आम्नाय संज्ञा थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी केवल मन्त्रभाग को वेद मानते हैं। उनके ऐसा मानने का कारण यही है कि उनकी दृष्टि में 'मन्त्र' अनादि और ईश्वरकृत हैं। यह धारणा केवल श्रद्धा का विषय है। स्वयं ऋग्वेद, तैत्तिरीयारण्यक तथा यास्क और वात्स्यायन मन्त्रों को ऋषियों की रचना मानते थे, यह बुद्धिगम्य भी है, अतः मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही ऋषियों की रचनायें हैं, उनमें केवल प्राचीनता और नवीनता का अन्तर है, अतः ब्राह्मणों को वेद मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मन्त्रों में देवताओं की स्तुतियाँ हैं, तो ब्राह्मणों में यज्ञों का विधान है। प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में ऋक्, यजु और साम के अतिरिक्त जो वेद भाग था, वह ब्राह्मण था। आचार्य आपस्तम्ब ने ब्राह्मण का लक्षण बताया है—ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः निन्दा प्रशंसा परकृतिः पुराकल्पश्च। (आ० श्रौ० 24।1।33)। गौतम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्यायसूत्रों में स्तुति और निन्दा को परकृति और अर्थवाद को 'पुराकल्प' कहा है। यह अर्थवाद प्रशंसारूप या निन्दारूप में इस प्रकार होता है—'अग्निर्वाऽकामयत', 'अन्नादो वा देवानां स्याम' इति, बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि उपाख्यान रूप परकृति है। शबरस्वामी ने शाबरभाष्य (2।1।8) में कहा है—

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु॥

"विधान, मंत्र या यज्ञ का हेतु, निन्दा, प्रशंसा संशय, विधि (विधान) परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण और उपमान ये ब्राह्मण के विषय हैं।

'पुराकल्प' नामक शास्त्र की प्राचीनकाल में बहुत चर्चा सुनी जाती है। यह वेदभाग की संज्ञा थी, अथवा कल्पसूत्रों का नाम था अथवा कोई अन्य स्वतन्त्र-शास्त्र था, यह कहना कठिन है। 'पुराकल्प' के निम्न संदर्भ द्रष्टव्य हैं—'ऐतिहासमाचरितविधिः पुराकल्पः' (न्या. भा. 2।1।64)

"किसी ऐतिहासिक विधि को पुराकल्प कहा जाता था' जैसे—

'श्रूयते पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः' (म० अनु०)

'सुना जाता है कि प्राचीनकाल में याज्ञिकों का अन्नमय पशु होता था। इत्यादि।

यद्यपि ब्राह्मणों का मुख्य विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड का विधान है, उनमें दर्शपौर्ण मास, अग्निहोत्र, अग्न्याधान, निरुढ़पशुबन्ध, वाजपेय, सौत्रामणी, अश्वमेध, राजसूयादि यज्ञों का विस्तार से विधान मिलता है। इसी को 'विधि' कहते हैं। इन विधि-विधानों की ऊहापोह (स्तुतिनिन्दा) में भी ब्राह्मणों का बड़ा अंश लिखा गया है। इसे 'अर्थवाद' कहते हैं। इन दो विषयों के अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों में आनुषङ्गिक विषय के रूप में निर्वचन (निरुक्त), आख्यान, उपाख्यान, श्लोक, गाथा, ब्रह्मज्ञान, प्रजापति, आत्मज्ञान, वर्णाश्रमधर्म, वृष्टिविज्ञान, ज्योतिष, अन्तरिक्ष विज्ञान, पृथिवी का इतिहास, द्युलोकविज्ञान, जीवविज्ञान, रसायनविद्या, राजनीति, आचार-व्यवहार, कृषिविज्ञान, ज्यामिति (शुल्वशास्त्र), वाणिज्य, प्रजानीति, ऋतुविज्ञान, भैषज्य (चिकित्साविज्ञान), चन्द्रविज्ञान, वायु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञान, आकर्षण विज्ञान, अग्निविज्ञान, शरीरविज्ञान, खाद्यविज्ञान, शिल्पज्ञान, शब्दार्थ विज्ञान, व्याकरण, यज्ञविद्या, धातुविज्ञान इत्यादि के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री मिलती है, इनमें कुछ के उदाहरण आगे दिए जायेंगे।

ब्राह्मणग्रन्थों की प्राचीनता और रचनाकाल—मूल ब्राह्मणविद्या और उपनिषद् अत्यन्त प्राचीन हैं, प्रचेता, वरुण, कश्यप आदि प्रजापतियों ने आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन किया था। प्रचेता ने दक्ष, वरुण, कश्यप आदि को ब्रह्मज्ञान दिया। मुण्डकोपनिषद् (1।1।1) के अनुसार ब्रह्मा ने अथर्वा को ब्रह्म-विद्या सिखाई, शतपथ और जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार वरुण ने अपने पुत्र भृगु को ब्रह्मविद्या सिखाई, तैत्तिरीयोपनिषद् में भी यह कथा है। छान्दोग्यो-पनिषद् के अनुसार प्रजापति (कश्यप) से इन्द्र और विरोचन को आत्मविद्या सिखाई, तैत्तिरीयब्राह्मण के अनुसार इन्द्र ने भारद्वाज वार्हस्पत्य और वसिष्ठ ऋषि को ब्राह्मण का प्रवचन किया। शतपथब्राह्मण में ब्राह्मण प्रवचनकर्त्ता ऋषियों की सूची स्वयंभू से वाजसनेय याज्ञवल्क्य और उसके आगे भी चलती है। शतपथब्राह्मण के प्रवक्ता स्वयं शतपथ के अनुसार ये बारह आचार्य थे—विवस्वान्, अम्भिणी वाक्, नैध्रु वि काश्यप, शिल्प काश्यप, हरित काश्यप, वार्षगणर असित, वाध्योग जिह्वावान्, वाजश्रवा, कुश्रि, उपवेशि, आरुणि, उद्दालक और वाजसनेय याज्ञवल्क्य। जिस प्रकार मन्त्रसंहिताओं या पुराणों का 28 व्यासों ने प्रवचन किया उसी प्रकार ब्राह्मणों का प्रवचन, इन्द्र, वसिष्ठ, भृगु, भारद्वाज, काश्यप आदि सैकड़ों प्राचीन ऋषियों ने किया। याज्ञवल्क्यादि तो इन ब्राह्मणों के अंतिम संस्कर्त्ता थे। शतपथ के एक बहुत बड़े अंश (प्रथम नौ काण्डों) के प्रवक्ता प्राचीन ऋषि शाण्डिल्य थे। इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों की सामग्री प्राचीन ब्राह्मणों से ली गई है। उपलब्ध ब्राह्मण ग्रंथों के पाठों को महाभारत काल में अन्तिम रूप दिया गया, बल्कि याज्ञवल्क्य के उत्तरवर्ती 45 आचार्यों के नाम माध्यदिन शतपथब्राह्मण में मिलते हैं, अतः शतपथ के पाठ परिवर्तन में इन 45 आचार्यों का हाथ भी हो सकता है। अतः इतना निश्चित है कि ब्राह्मणों की मूल सामग्री अति प्राचीन है, प्रधान संकलन महाभारत काल में हुआ और थोड़ा बहुत प्रक्षेप उत्तरकाल में भी हुआ। ऐतरेयादि ब्राह्मणों का रचनाकाल उसी ग्रन्थ के प्रसंग में लिखा जायेगा। इस समय ऋग्वेद के तीन ब्राह्मण उपलब्ध हैं—ऐतरेय, कौषीतकि और शांखायन ब्राह्मण। शुक्लयजुर्वेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का एक मात्र विशाल ग्रन्थ शतपथब्राह्मण प्राप्त है, इसके माध्यंदिन और काण्व-दो पाठान्तर मिलते हैं। कृष्णयजुर्वेद का भी एक मात्र तैत्तिरीयब्राह्मण मिला है। सर्वाधिक ब्राह्मण सामवेद के प्राप्य हैं, इनके नाम हैं—पञ्चविंश (ताण्ड्य), षड्विंश, मन्त्र, छान्दोग्य, आर्षेय, जैमिनियोपनिषद्, वंश, संहीतोपनिषद्, दैवत, सामविधान और जैमीनीयब्राह्मण। इनमें अन्तिम—जैमिनीयब्राह्मण शतपथ के समान विशाल और महत्वपूर्ण है, ताण्ड्यब्राह्मण को छोड़कर शेष ब्राह्मण प्रायः लघु ग्रंथ हैं। अथर्ववेद का एक मात्र गोपथब्राह्मण प्रकाशित है।

ऋग्वेद के ब्राह्मण

ऐतरेय ब्राह्मण—इस ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं, जो पांच-पांच अध्यायों की पत्रिकाओं में विभक्त हैं। अध्याय कण्डिकाओं में विभक्त हैं। सम्पूर्ण ब्राह्मण में 285 कण्डिकायें हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता महीदास ऐतरेय प्रसिद्ध हैं। इनकी माता का नाम इतरा था, इसलिए इनका नाम ऐतरेय हुआ, मही (पृथिवी) माता के पूजक या सेवक होने से महीदास कहलाये। इस सम्बन्ध में सायण से प्राचीन-तर वैदिक विद्वान् षड्गुरुशिष्य ने एक लम्बी-कथा ऐतरेय ब्राह्मण की सुखप्रदा वृत्ति में लिखी है। तदनुसार यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य ऋषियों के दो पत्नियाँ थीं, वे ज्येष्ठा पर आसक्त थे और द्वितीय पत्नी को अपमानजनक स्थिति में रखकर 'इतरा' कहते थे। इसी इतरा के पुत्र ऐतरेय हुए। ऐतरेय के प्रभाव से इतरा को बाद में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। कुछ विद्वान् इस कहानी को कल्पना मानते हैं, जो अनुचित है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे ऐतरेय को याज्ञवल्क्य का पुत्र नहीं मानना चाहते, क्योंकि याज्ञवल्क्य उनकी दृष्टि में उत्तर-कालीन ऋषि थे। इस महान् भ्रम का निराकरण हम शुक्लयजुर्वेद के प्रसंग में कर आये हैं कि याज्ञवल्क्य तो विश्वामित्र कौशिक से उद्भूत अत्यन्त प्राचीन गोत्र था। याज्ञवल्क्य नाम के प्राचीन अनेक ऋषि हुए हैं, जिनका वाजसनेय याज्ञवल्क्य से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। अतः षड्गुरुशिष्य द्वारा संकेतित इतिहास श्रद्धेय है।

आचार्य सत्यव्रत सामाश्रमी ने ऐतरेयालोचन ग्रन्थ में (पृ. 73) शाकल्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अहेरिव सर्पणं शाकल्यस्य—ऐ. ब्रा. 3।4।5) आचार्य के उल्लेख के आधार पर शाकल्य से उत्तरवर्ती माना है। पं. भगवद्दत्त ऐतरेय ब्राह्मण को कृष्णद्वैपायन व्यास से पुराण प्रोक्त मानते थे। यह भी ठीक नहीं है। ऐतरेयब्राह्मण में उद्दालक आरुणि, पैङ्गि, कौषीतकि[1], आदि व्यास के शिष्य-प्रशिष्य स्मृत हैं। अतः ऐतरेयब्राह्मण व्यास से प्राचीन नहीं हैं, इतना ही कहा जा सकता है कि ऐतरेयब्राह्मण का पाराशर्य व्यास की शिष्य परम्परा या चरण से सम्बन्ध नहीं था। जैमिनीयब्राह्मण और छान्दोग्योपनिषद् में ऐतरेय की आयु 116 वर्ष थी—"स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्' (छा. उ. 3।16।7) अतः इन ग्रन्थों के रचनाकाल में महीदास ऐतरेय दिवंगत हो चुका था।

ऐतरेयब्राह्मण के 1-16 अध्यायों में अग्निष्टोम (सोमक्रतु), 16-18 अध्यायों में गवामयन क्रतु, 19-24 अध्यायों में द्वादशाहसत्र, का कथन है। 24 से 34 अध्यायों में अग्निहोत्र, राजसूय, वाजपेयादि यज्ञों का विधान कथित है। अन्तिम पञ्चिका में ऐन्द्र महाभिषेक और शुनःशेपाख्यानादि मिलते हैं। यह भाग इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। ऐन्द्र महाभिषेक प्रकरण में अनेक ऋषियों से जैसे दीर्घतमा आदि तथा भरत दौष्यन्ति आदि सम्राटों का वृतान्त है। शौन शेपाख्यान अत्यन्त रोचक है। यह आगे उद्धृत किया जाएगा।

कौषीतकिब्राह्मण—इस ग्रन्थ में तीस अध्याय और 226 खण्ड हैं। महाभारत में उल्लिखित (आश्रमवासिकपर्व) शाम्बव्य आचार्य ऋग्वेदीय था, यह पहले लिख चुके हैं। शाम्बव्य का पिता 'शम्बु' था, जो पाणिनि के गर्गादिगण में पठित है। शाम्बव्य का वंशज कुषीतक था, उसका पुत्र कहोडकौषीतकि और कहोड कौषीतकि का पुत्र प्रसिद्ध आत्मज्ञानी अष्टावक्र था, अष्टावक्र का मातुल श्वेतकेतु आरुणेय या औद्दालिक था। अतः ये सभी वाजसनेय याज्ञवल्क्य के समकालीन थे। याज्ञवल्क्य, उद्दालक का शिष्य था।

कौषीतकि ब्राह्मण कहोड कौषीतकि की रचना है। वही उसका प्रणेता था। ब्राह्मणों और उपनिषदों में इसके मत बड़े समाहृत थे। यथा-'अथ हैनं कहोलः कौषीतकेयः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच' (बृ० उ० 3।5।1) 'उत्तरामिति कौषीतकम् (ऐ. ब्रा. 7।2।11)। कहोड कौषीतकि वैदेहजनक की परिषद् में परास्त हो चुका था, पिता का बदला अष्टावक्र ने लिया, यह कथा वन पर्व में प्रसिद्ध है।

1. पूर्वां पौणमासीमुपवसेदिति पैङ्ग्यमुत्तरामति कौषीतकम् (ऐ. ब्रा. 7।2।11)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौषीतकिब्राह्मण में अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास निरुढ-पशुबन्ध, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, द्वादशाह आदि सामान्यतया उन्हीं यज्ञों का वर्णन है जो अन्य ब्राह्मणों में वर्णित है।

शांखायनब्राह्मण—कुछ विद्वान् भ्रमवश कौषीतकि ब्राह्मण और शांखायान ब्राह्मण को एक ही समझते थे, यह भ्रम इन दोनों ग्रन्थों के स्वल्प पाठान्तरों के कारण है, क्योंकि इसमें भी तीस अध्याय हैं। शंख के वंशज शांखायन कौषीतकिवंश से सर्वथा पृथक् थे। शांखायनों में अनेक आचार्य हुए, जिनमें से गुणढ्य शांखायन ने शांखायनब्राह्मण का पाठ बनाया। शांखायन श्रौतसूत्र की भी इसी चरण के अन्तर्गत है। इस ब्राह्मण के विषय भी पूर्ववत् हैं। इस ग्रन्थ में उल्लिखित कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं और व्यक्तियों का उल्लेख आगे किया जाएगा।

शुक्लयजुर्वेद का ब्राह्मण (माध्यदिन और काण्वशतपथ)

शतपथब्राह्मण— यह सर्वाधिक बृहदाकार महत्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ है। ऋग्वेद के अनन्तर वैदिक साहित्य में इसका ही ऐतिहासिक महत्व सर्वाधिक है। ओल्डनबर्ग, कीथ, वेबर आदि इसको प्राचीनतम ब्राह्मण मानते हैं, लेकिन अन्य विद्वान् इसको अर्वाचीनतम ब्राह्मण मानते हैं, आंशिक रूप से दोनों ही मत सत्य हैं। क्योंकि इस ग्रन्थ में प्राचीनतम और अर्वाचीनतम दोनों ही प्रकार की सामग्री है।

शतपथ की मूल सामग्री तो अत्यन्त प्राचीन है जैसा कि पहिले ही संकेत किया जा चुका है कि इसमें विवस्वान् इन्द्र, कश्यप, अथर्वा जैसे आदि ऋषियों के ब्राह्मण भी सङ्कलित हैं, उदाहरणार्थ मधुविद्या ब्राह्मण (चतुर्दश काण्ड) के आदि प्रवक्ता (मुख्य प्रवक्ता) दध्यङ् आथर्वण थे, इन्द्र भी इस विद्या में पारङ्गत था। शण्डिल्य की अग्निविद्या भी कोई कम प्राचीन नहीं है। इस समस्त प्राचीन ब्राह्मणविद्या को वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने उद्दालक आरुणि से पढ़कर सौ अध्यायों में निबद्ध किया—

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्य ससंग्रहम्।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ॥ (शा० 323)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त शतपथब्राह्मण का रहस्य (उपनिषद्) आदि के साथ याज्ञवल्क्य ने सङ्कलन या प्रणयन किया। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य की शिष्य-परम्परा इस प्रकार दी है—

1. वाजसनेय याज्ञवल्क्य
2. मधुक पैङ्ग्य
3. चूड भागवित्ति
4. जानकि आयस्थूण
5. सत्यकाम जाबाल

ये सभी शतपथ की विद्याओं के उत्तरोत्तर प्रवक्ता हुए। इनमें से सत्यकाम जाबाल अन्तिम और सर्वाधिक प्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता हुआ।

प्राचीनकाल में शतपथ के प्रारम्भिक साठ अध्याय 'षष्टिपथब्राह्मण' कहलाते थे। इसका उल्लेख वैयाकरण कात्यायन ने वार्तिक में किया है। इनमें शाण्डिल्य की अग्निविद्या वर्णित है। 6 से 9 काण्डों में याज्ञवल्क्य का नाम नहीं आता, शण्डिल्य का ही नाम आता है, इससे पूर्व और पश्चात् के काण्डों में याज्ञवल्क्य की चर्चा है। इससे पाश्चात्य विद्वान् वेबर, कीथ आदि इन काण्डों को याज्ञवल्क्य प्रोक्त नहीं मानते। हमने इस सम्बन्ध में अपना मत लिखा है कि याज्ञवल्क्य तो सम्पूर्ण शतपथ के सङ्कलनकर्त्ता थे। यह सामग्री उन्होंने प्राचीतर ब्राह्मण ग्रन्थों से ली।

माध्यदिन शतपथ में 14 काण्ड, 68 प्रपाठक, 100 अध्याय, 438 ब्राह्मण और 7624 कण्डिकायें हैं। शतपथ का सर्वप्रथम सम्पादन और प्रकाशन जर्मन विद्वान् वेबर ने किया था। एगलिङ्ग ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। स्वामी सत्यप्रकाश ने शतपथब्राह्मण को दिल्ली से तीन भागों में प्रकाशित किया और इस ग्रन्थ की महती वैज्ञानिक सामग्री का विश्लेषण किया है।

काण्व शतपथ— माध्यदिन शतपथ से इसके पाठ में बहुत अन्तर नहीं है, केवल अध्यायों आदि की योजना में अन्तर है, वह सामग्री रखने का क्रम भी इससे पृथक् है। इसमें 104 अध्याय, 446 ब्राह्मण (किसी मत से 435) 5865 (अन्य मत में 6806) कण्डिकायें और 17 काण्ड हैं।

शतपथब्राह्मण (माध्यदिन) में निम्न यज्ञों का सविस्तार प्रतिपादन है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शपूर्णमास, दाक्षायणयज्ञ, आग्रयण, अग्न्याधान, पुनराधान, उपस्थान, प्रवासोपस्थान, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य (वैश्वदेव, वरुणप्रकास, साकमेघ), पितृयज्ञ, त्रैयम्बकयज्ञ, शुनासीरीय, मित्रविन्देष्टि, पशुबध ज्योतिष्टोय (सोमयज्ञ), द्वादशाह, गवामयन, वाजपेय और राजसूय। यह 9 काण्डों तक वर्णित है। 10 और 11 काण्डों में अग्निचयन प्रतियज्ञ का वर्णन है। तदनंतर 12 काण्ड में प्रायश्चित्त आदि का विधान है। 13वें काण्ड में अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध का वर्णन है। 14 काण्ड में प्रवर्ग्यविधान, आरण्यक और उपनिषद् हैं। इस काण्ड के अन्तिम 6 अध्याय बृहदारण्योपनिषद् कहलाते हैं जो प्रसिद्ध हैं। यह आरण्यक और उपनिषद् दोनों ही है, इसका विशिष्ट परिचय आरण्यक व उपनिषद् प्रकरण में लिखा जायेगा।

कृष्णयजुर्वेद का ब्राह्मण

तैत्तिरीय ब्राह्मण—कृष्णयजुर्वेद की शाखाओं के प्रायः पृथक् ब्राह्मण नहीं हैं, केवल तैत्तिरीयब्राह्मण तैत्तिरीयसंहिता का मिलता है, काठक, कपिष्ठलकठ मैत्रायणी संहिताओं आदि में मन्त्र और ब्राह्मण मिश्रित है, पृथक् नहीं, तैत्तिरीयसंहिता में भी मिश्रित हैं, फिर भी कुछ अनुक्त विषय (यज्ञ) कथन लिये तैत्तिरीयब्राह्मण की रचना हुई।

तैत्तिरीयब्राह्मण में तीन अष्टक या काण्ड हैं। इनके पारेक्षुद्र, अग्निहोत्रादि नाम भी हैं। इनमें क्रमशः 78, 96 और 179 अनुवाक हैं। तैत्तिरीयब्राह्मण में गद्य अत्यल्प हैं, मन्त्रों का बाहुल्य है। इसके आरण्यक में भी बहुत मन्त्र हैं। तैत्तिरीयब्राह्मण में 3।10-12 तक काठकब्राह्मण कहलाता है। प्रथम काण्ड में मुख्यतः अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, आदि का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में—अग्निहोत्र, सौत्रामणी के पश्चात् 11 सवों का वर्णन है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. बृहस्पतिसव (ब्राह्मणसव या वैश्यसव) 2. सोमसव, 3. पृथिसव 4. गोसव 5. ओदनसव 6. पञ्चशारदीयसव 7. अग्निष्ठुत् सव 8. इन्द्रस्तुत् सव 9. अप्तोयमिसव 10. राजाभिषेकसव और 11. विघन नाम का सव (यज्ञ)। पूर्वोक्त काठक ब्राह्मण में सावित्र, नाचिकेत, चातुर्होत्र और वैश्वसृज इन चार यज्ञों का वर्णन है। इसके आगे आरुणकेतुक आदि इष्टियों का विधान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तैत्तिरीयब्राह्मण में उल्लिखित कुछ घटनाओं का आगे सङ्केत किया जायेगा।

सामवेद के ब्राह्मण

सामवेद के ब्राह्मणों के नाम पहिले लिखे जा चुके हैं। इनका संक्षिप्त परिचय क्रमशः यहाँ लिखा जाता है।

जैमिनीयब्राह्मण—व्यासशिष्य जैमिनि के शिष्य तवल्कार, ताण्ड्य और शाट्यायन ने पृथक्-पृथक् ब्राह्मण ग्रन्थ रचे। इनमें से तवल्कार रचित ब्राह्मण ही जैमिनीयब्राह्मण कहा जाता है। ताण्ड्य और जैमिनीय ब्राह्मणों में पर्याप्त सामग्री समान है, इनमें अहीन एकाह और सत्रों का विशिष्ट वर्णन है, शाट्यायनब्राह्मण इस समय अनुपलब्ध हैं जो कभी अत्यन्त प्रसिद्ध था। इसके उद्धरण सायण ने ऋग्वेदभाष्यादि में दिये हैं।

जैमिनियब्राह्मण को हस्तलिखित प्रतियों में यह श्लोक पाया जाता है—'जैमिनि' तवलकार गुरुं नमामि' इत्यादि, जो इस ग्रन्थ में पहिले उद्धृत किया जा चुका है। इससे सिद्ध हो चुका है कि यह मूलतः तवल्कारब्राह्मण है, जो गुरु के नाम से ही प्रसिद्ध है। इस ब्राह्मण के उद्धरण तवल्कार नाम से प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं।

जैमिनीयब्राह्मण को डा० रघुवीर और उनके सुपुत्र डा० लोकेश ने सरस्वती विहार से 1954 में प्रकाशित किया था। इससे पूर्व यह ग्रंथ विद्वानों में अज्ञात था। इस ग्रन्थ के अनेक खण्ड हैं। पहिले यह तीन भागों में विभक्त है, प्रथम भाग में 360 खण्ड, द्वितीय भाग में 437 खण्ड और तृतीय भाग में 385 खण्ड हैं। कुल 1182 खण्ड हैं।

जैमिनीयब्राह्मण विशालता में शतपथब्राह्मण के तुल्य या उससे कुछ न्यून है। ऐतिहासिक उपाख्यान तो इसमें शतपथब्राह्मण से भी अधिक मिलते हैं। इस ग्रन्थ में केवल सोमक्रतुओं—एकाह, अहीन महाव्रत, द्वादशाह, सत्र और दीर्घसत्रों का वर्णन मिलता है। इसमें विज्ञान-सामग्री पर पर्याप्त मिलती है, जिसका विश्लेषण अभी किसी विद्वान् ने नहीं किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण—इसमें केवल चार अध्याय हैं, जो अनुवाकों और खण्डों में विभक्त हैं। इसमें यज्ञों, अभिचार कर्मों, ब्रह्मणविद्या आदि का वर्णन है, अन्त में सामवेदीय आचार्यों की विद्यावंश परम्परा उल्लिखित है।

जैमिनीयार्षेयब्राह्मण—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें सामों के द्रष्टा ऋषियों की अनुक्रमणी है। इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक और 82 खण्ड हैं। इस ब्राह्मण के अनेक पाठान्तर मिलते हैं।

वंशब्राह्मण—इसमें विद्यावंशों का उल्लेख है। यह एक लघु ग्रंथ है। केवल तीन खण्डों में आचार्य शिष्य परम्परा दी हुई है।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण—एक ही प्रपाठक का यह भी लघु ग्रन्थ है। यह प्रपाठक 5 खण्डों में विभक्त है। इसमें ग्रामगेयगान और ग्राम्यगेय गानों की सूची है। कुछ प्राचीन श्लोकों का संग्रह भी इसमें, जिसमें विद्या की महिमा गाई गई है।

दैवतब्राह्मण—इसमें तीन खण्ड हैं, जिनमें क्रमशः 26, 11 और 25 कण्डिकायें हैं। इस लघु ग्रन्थ में वैदिक छन्दों की मीमांसा है।

आर्षेयब्राह्मण—यह कौथुम शाखा का ब्राह्मण है, जिसमें पूर्वार्चिक और आरण्य गानों का विवेचन है। इसमें तीन प्रपाठक हैं, जिनमें क्रमशः 28, 25, और 29 खण्ड हैं। यह एक प्रकार आर्षानुक्रमणी है।

सामविधान ब्राह्मण—इसमें केवल एक प्रपाठक और पाँच खण्ड हैं। इसमें तांत्रिक और अभिचारिक कर्मों का विवेचन है। इसमें अनेक व्रत, यज्ञादि की विधियाँ विहित हैं। इसमें एक विद्यावंश परम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जिसका आगे विवेचन किया जाएगा।

छान्दोग्यब्राह्मण या मन्त्र ब्राह्मण—इसमें मन्त्रों का संग्रह मात्र है। केवल दो प्रपाठकों का लघु ग्रन्थ है, प्रत्येक प्रपाठक में आठ खण्ड हैं। विद्वानों के अनुसार यह ताण्ड्य या छान्दोग्य ब्राह्मण के 40 प्रपाठकों का एक भाग मात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताण्ड्यब्राह्मण—छान्दोग्यब्राह्मण के प्रारम्भिक 25 प्रपाठकों को ताण्ड्य या पञ्चविंशब्राह्मण कहते हैं। इसको हालैण्ड के वैदिक विद्वान् कैलेण्ड ने सर्व-प्रथम प्रकाशित किया और अंग्रेजी में अनुवाद किया। 25 प्रपाठकों में 347 खण्ड हैं।

ताण्ड्यब्राह्मण का मूल प्रवक्ता जैमिनि का प्रशिष्य ताण्ड्य ऋषि था। इसका सतीर्थ्य शाट्यायन था, जिसने शाट्यायन ब्राह्मण का प्रणयन किया। ताण्ड्य ब्राह्मण को महाब्राह्मण या प्रौढ़ ब्राह्मण भी कहते हैं। विशालता की दृष्टि से यह जैमिनी ब्राह्मण से कुछ ही न्यून हैं। इसमें जैमिनीयब्राह्मण के समान एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित आदि सोमक्रतुओं का वर्णन है। इसमें साम या मन्त्रद्रष्टा बहुत से ऋषियों का इतिहास मिलता है।

षड्विंशब्राह्मण—छान्दोग्यब्राह्मण के पाँच प्रपाठक षड्विंशब्राह्मण कहलाते हैं। इनमें क्रमशः 7, 10, 12, 7 और 12 खण्ड, कुल 48 खण्ड हैं। पंचम प्रपाठक को अद्भुत ब्राह्मण भी कहते हैं। इस ब्राह्मण में कुछ अहीन सोम-यज्ञों और व्रात्ययज्ञों का वर्णन है। इसमें प्रथम बार पुष्प, कलियुग, द्वापर, राका, त्रेता और कृतयुग नाम मिलते हैं, वैसे ये संज्ञायें तैत्तिरीयसंहिता और ऐतरेय ब्राह्मण में भी है, लेकिन वहाँ वे युग नहीं प्रतीत होते हैं।

अथर्ववेद का ब्राह्मण

गोपथब्राह्मण —अथर्ववेद में 'गोपथ' नाम के ऋषि के दृष्ट कुछ मन्त्र मिलते हैं। इस ब्राह्मण का प्रणेता वही गोपथ या उसका कोई वंशज होना चाहिए। वैसे विद्वान् इसको बहुत उत्तरकालीन रचना मानते हैं।

इस ग्रन्थ के दो भाग हैं—पूर्व और उत्तर गोपथ। पूर्व भाग में पाँच प्रपाठक और उत्तर भाग में 6 प्रपाठक हैं। पूर्व भाग में 135 कण्डिका और उत्तर भाग में 123 कण्डिकायें हैं। आथर्वचरणव्यूह के अनुसार पूर्वकाल में गोपथ 100 प्रपाठकों का विशाल ग्रन्थ था। विद्वानों के अनुसार इस ब्राह्मण की सामग्री शतपथ, तैत्तिरीय, पंचविंश एतरेय, कौषीतकि, शांखायनादि ब्राह्मणों से ली गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोपथब्राह्मण में सृष्टि उत्पत्ति, ब्रह्मा की महिमा, ब्रह्मचर्य की महिमा, गायत्री विवेचन आदि विषयों के साथ सोमक्रतु, दीक्षा, आदि यज्ञों का विधान है। इसमें अथर्ववेद का देवता आप (जल) और चन्द्रमा बतलाया है। इसमें ओंकार के साथ त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) का उल्लेख है। व्याकरण की अनेक संज्ञाओं प्रातिपदिक, धातु कृदन्त, अव्ययादि का एक स्थान पर ही नाम है। इसमें अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिता और रचनाकाल का तद् तद् ग्रन्थ के साथ यत्र तत्र संकेत किया गया, यहाँ समष्टि रूप से उसका वर्णन करते हैं।

ब्राह्मणग्रन्थों का रचनाकाल और समकालीन व्यक्ति—पाश्चात्य विद्वानों और तदनुयायी भारतीय विद्वानों ने ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल ई० पू० 1200 से 800 ई० पू० माना है। मैक्समूलर ब्राह्मणों का रचनाकाल 800 ई० पू० से 1000 ई० पू० मानता था। यद्यपि वह अपने मत पर स्वयं दृढ़ नहीं था। लोकमान्य तिलक के मत में कृत्तिका युग में 2500 ई० पू० से 1400 ई० पू० तक ब्राह्मण ग्रन्थ रचे गये। विन्टरनीत्स भी ब्राह्मणों का रचना काल 1400 ई० पू० से पहिले ही मानता था।

श्री बालकृष्ण दीक्षित ने कृत्तिका उदय के आधार पर शतपथब्राह्मण का रचनाकाल शकपूर्व 3068 वर्ष माना है। उन्होंने लिखा हैं शकपूर्व 3100 वर्ष के पहिले (कृत्तिकायें) दक्षिणा में उगती थीं। इससे यह सिद्ध होता है कि शतपथब्राह्मण के जिस भाग में वाक्य आये हैं उसका रचनाकाल शकपूर्व 3100 वर्ष के आसपास होगा।" (भारतीय ज्योतिष, पृ. 181)।

पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् ब्राह्मणों का रचनाकाल प्रायः 1100 ई०पू० मानते थे। उनमें किसी के अनुसार शतपथ प्राचीनतम ब्राह्मण है किसी के अनुसार ऐतरेयब्राह्मण प्राचीनतम हैं।

पं. भगवद्दत्त के मत में 'शतपथब्राह्मण और उसका प्रवचन कर्त्ता याज्ञवल्क्य महाभारत कालीन ही है।" (वै. वा. इ. पृ०76 ब्राह्मण अरण्यक भाग)। यह महाभारत काल द्वापर और कलि की संधि के समय लगभग 3200 ई० पू० या आज से 5100 वर्ष पूर्व था। पण्डित भगवद्दत्त का इतिहास पुराणों, 'वैदिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य का प्रमाण और श्री बालकृष्ण दीक्षित का ज्योतिष का प्रमाण प्रायः एक ही है। अतः भारतीय इतिहास के अनुसार उपलब्ध ब्राह्मणों का प्रणयन महाभारतकाल के आसपास ही हुआ था। इतिहास पुराणों में पाराशर्य व्यास की शिष्य परम्परा में ब्राह्मणों के प्रवचनकर्त्ता जैमिनि, ताण्ड्य, तवल्कार, शाट्यायन, याज्ञवल्क्य, कुषीतक शांखायन, श्वेतकेतु आदि ऋषि हुए। अतः अनेकानेक प्रमाणों से ब्राह्मण ग्रन्थों का यही समय निश्चित होता है। इतिहास पुराणों में उल्लिखित अनेक आचार्य जैसे जैमिनि याज्ञवल्क्य आदि वैदिक ग्रन्थों में भी वर्णित हैं। पण्डित भगवद्दत्त ने 'वैदिकवाङ्मय' का इतिहास' (ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ) में ब्राह्मणों, उपनिषदों और आरण्यकों में उल्लिखित समकालीन आचार्यों की एक वृहद् सूची प्रस्तुत की है, साथ ही इतिहास पुराणों से व्यास शिष्य परम्परा उद्धृत की है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण नाम द्रष्टव्य हैं—जनकवैदेह, श्वेतकेतु आरुणेय, उद्दालक आरुणि, सत्यकाम जाबाल, मधुक पैङ्ग्य, वाजसनेय याज्ञवल्क्य, काशिराज अजातशत्रु, कहोल कौषीतकि, प्रवाहण जैवलि, दाल्भ्य, बकदाल्भ्य, केशीदार्भ्य, सुत्वा याज्ञसेन (द्रुपदपाञ्चाल राज), शौनक स्वैदायन, अश्वपति कैकय, शिखण्डी याज्ञसेन, ब्रह्मदत्त चैकितानेय इत्यादि आचार्य और राजा ब्राह्मणों और उपनिषदों में वर्णित हैं जो समकालीन थे। इनमें से याज्ञवल्क्य, शौनक, यज्ञसेन द्रुपद, शिखण्डी जनकवैदेह, बक दाल्भ्य आदि युधिष्ठिर के समकालीन, महाभारत और पुराणों में भी वर्णित हैं। अतः भारतीय साहित्य के प्रामाण्य से ब्राह्मणों का अन्तिम प्रवचन महाभारतकाल में हुआ।

ब्राह्मणग्रन्थों से महत्वपूर्ण कुछ उद्धरण

ब्राह्मणग्रन्थों का मुख्य विषय यज्ञ-विधान है, परन्तु इस प्रसङ्ग से उनमें अनेक विज्ञानों, इतिहास, आख्यान, सृष्टिविद्या, वर्णाश्रमधर्म, वंशपरम्परा, इत्यादि का वर्णन भी मिलता है। अतः पाठकों की जिज्ञासा के शमनार्थ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कुछ उद्धरण प्रस्तुत मूल और अनुवाद सहित प्रस्तुत किये जाते हैं।

शौनशेपाख्यान—हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस तस्य ह शतं जाया बभूवुस्तासु पुत्रं न लेभे, तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः स ह नारदं पप्रच्छ—"यन्निमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किंस्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व नारद ।। 1 ।। इति ।
स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच ।·· ···

स होवाच स वै मे ब्रूहि यथा मे पुत्रो जायतेति, अथैनमुवाच वरुणं राजानमुपधाव ।···तस्य पुत्रो जज्ञे रोहितो नाम तं होवाचा जनि वै ते पुत्रो यजस्व··· अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होरां जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्यदा ग्रायमेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच ।। १८ ।।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति रोहित शुश्रम । पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतःसखा चरैवेति । 1 ।।······।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भुष्णुरात्मा फलेग्रहिः ।
शेरेऽस्य पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति । २ ।।
आस्ते भग आसीनस्यस्योर्ध्वंस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति ।। ३ ।।
कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठैंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्येत चरंश्चरैवेति ।।४।।

चरन्वै मधुविन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम् । सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ।।5।। (ऐ० ब्रा०)

"वेधा का पुत्र ऐक्ष्वाक राजा हरिश्चन्द्र निपुत्री था, उसके सौ रानियाँ थीं । लेकिन कोई पुत्र नहीं हुआ, उसके घर पर पर्वत और नारद ऋषि आये । राजा हरिश्चन्द्र ने नारद से पूछा—जिस कारण से लोग संसार में पुत्र की इच्छा करते हैं, जो इस बात को जानते हैं और जो नहीं जानते, हे नारद ! पुत्र के द्वारा वे क्या प्राप्त करते हैं, यह मुझे बताओ । तब नारद ने एक श्लोक की बात का दश श्लोकों में उत्तर दिया······ ।

राजा बोला—हे नारद ! मुझे बताइये, मेरे पुत्र किस प्रकार उत्पन्न होगा । तब नारद ने कहा—हे राजन् ! वरुण का यज्ञ करो ।········· (उसने वरुण यज्ञ किया) और राजा के पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम रोहित रखा, तब वरुण ने कहा तुम्हारे पुत्र हो गया है, मेरा यज्ञ करो,······वरुण ने हरिश्चन्द्र को वरुण पाश में जकड़ लिया । राजा को जलोदर रोग हो गया, जब रोहित ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सुना तो वन जंगल में भाग गया। वहां इन्द्र मनुष्य रूप में आकर रोहित से बोला—श्रम न करने वाले को लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे रहने वाला पुरुष पापी है, सदा परिश्रमी तेजस्वी होता है। विचरण करने वाले के पैर (जांघ) पुष्पि (फलवान्) होते हैं, जो कुछ करने की इच्छा करता है, वही फल ग्रहण करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं, इसलिये चलते रहो। बैठने वाले का भाग्य बैठ जाता है, खड़े हुए का भाग्य ऊपर खड़ा होता है, सोने वाले का भाग्य सो जाता है, चलने वाले का भाग्य चलता है, अतः चलते रहना चाहिये। सोता हुआ मनुष्य कलि है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर, खड़ा हुआ त्रेता और चलने वाला कृतयुग हो जाता है। चलने पर मधु को प्राप्त होता है, चरणशील स्वादिष्ठ उदुम्बर को पाता है। सूर्य के श्रम को देखो जो चलने में आलस्य नहीं करता अतः चलते रहना चाहिये।"

गाथायें—भरत दौष्यन्ति सम्बन्धी गाथायें ऐतरेय ब्राह्मण (8।23) में और पुराणों में मिलती हैं, इसी रूप में ये अब पुराणों में भी मिलती हैं, ऐतरेयब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि ये गाथायें अन्यत्र से उद्धृत की हैं, इनकी भाषा लौकिक है, इससे पाश्चात्य लेखकों की इस धारणा का खण्डन होता है कि पहिले वेद और ब्राह्मण लिखे गये और फिर इतिहास पुराण। कल्पित युगविभाग और मिथ्या भाषा विज्ञान को ये गाथायें खण्डन करती हैं—

हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान्। मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणेचितः। यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मण बद्वशो गा विभेजिरे ॥2॥ अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु। गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥3॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बध्वाय मेध्यान्। दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥४॥ महा कर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः। दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः ॥५॥

"भरत ने मष्णार देश में स्वर्ण से मण्डित कृष्णवर्ण और शुक्ल दांतों के सात सौ मृग (पशु-हाथियों) दान में दिये, दौष्यन्ति भरत का साचिगुण में संचित अग्नि (यज्ञ) हुआ, जिसमें बद्वश गायें सहस्रों ब्राह्मणों ने प्राप्त कीं। यमुनातट पर 78 अश्वमेध और गङ्गातट पर 55 अश्वमेध यज्ञ किये। इस प्रकार 133 मेध्याश्वों को बांधकर राजा दौष्यन्ति भरत ने महान् माया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शिल्प) को प्राप्त किया। भरत के महान् कार्य को न तो उसके पहिले या बाद के राजा ने प्राप्त किया, जिस प्रकार मनुष्य हाथ के आकाश या द्युलोक को नहीं पकड़ सकता।"

पारीक्षित् जनमेजय सम्बन्धी एक गाथा शतपथ-ब्राह्मण (श०ब्रा०13।5।4।2) में द्रष्टव्य है—"आसन्दिवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।

अबध्नादश्वं सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजयः ॥2॥

"आसन्दीवत् स्थान में धनधान्य से पूर्ण सुवर्णमय, हरितमालायुक्त अश्व पशु को पारीक्षित् जनमेजय ने बाँधा। (अश्वमेध किया)।

और भी—'चतुर्दश द्वैतवनो राजा संग्रामजिद्धयान्।

इन्द्राय वृत्रघ्नेऽबध्नात्तस्याद् द्वैतवनं सरः। (शा०ब्रा० 13।5।4।9) ॥

"संग्रामजित् राजा द्वैतवन ने वृत्रघ्न इन्द्र के लिये चौदह अश्व बाँधे, जिससे द्वैतवन सरोवर प्रसिद्ध हुआ।"

दीर्घजिह्वी आसुरी—जैमिनीयब्राह्मण में अनेक ऐतिहासिक उपाख्यान मिलते हैं, उनमें से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—"दीर्घजिह्वी ह वा असुर्यास। स ह स यो ह्स्म दक्षिणे समुद्रे सूयते यः पूर्वे योऽपरे त इस्म तत एवाव-लेढि। तां हेन्द्रो जिघृक्षन् न शशाक गृहीतुम।.........अथ ह सुमित्रः कौत्सो दर्शनीय आस। स तं होवाच सुमित्र दर्शनीयोऽसि।.........इमा दीर्घजिह्वीं लिलापमिषस्वेति। तां हेत्योवाच दीर्घजिह्विकामयस्व मेति ॥............॥ (जै० ब्रा० १।१६२) ॥

"दीर्घजिह्वी नाम की असुरी थी। वह दक्षिण, पूर्व समुद्र पर स्थित यज्ञ सामग्री को चट कर जाती थी। इन्द्र उसको चाहते हुए भी पकड़ न सके। सुमित्र कौत्स सुन्दर युवा थे—इन्द्र ने उससे कहा—हे सुमित्र तुम दर्शनीय हो। इस दीर्घजिह्वी को ललचाओ। कौत्स सुमित्र दीर्घजिह्वि के पास जाकर बोले—हे दीर्घजिह्वि! मुझे प्यार करो।"

जमदग्नि और माहेन क्षत्रिय—जमदग्निर्ह वै माहेनानां पुरोहित आस। तान् ह वित्तेनात्यादधौ। त उ हैनम् उपजिहिंसुः।......

अतिमात्रम् अवर्धन्त नोद इव दिवम् अस्पृशन्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भृगुं हिंसित्वा माहेना असंह्येयं पराभवन् ॥ (जै०ब्रा० 1।152)

"जैमिनि माहेन (हैहय) क्षत्रियों के पुरोहित थे। उसने उनको मालामाल कर दिया, तब माहेन क्षत्रियों ने उसे मार डाला। अत्युच्च नोद के समान स्वर्ग को छूने वाले माहेन क्षत्रिय भार्गव जमदग्नि को मारकर नष्ट-भ्रष्ट हो गये।

उशना और बृहस्पति—बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद् उशना काव्योऽसुराणां। तेषां ह त्रिशीर्षगन्धर्वो विजयस्वावेत् ।...तस्य ह्याप्स्वन्तर्नौनगरं परिप्लवम् आस।' (जै० ब्रा० 1।125)

"बृहस्पति देवों का पुरोहित और काव्य उशना असुरों का पुरोहित था। उनके पास त्रिशीर्षगन्धर्व विजय के लिये आया। उसका समुद्र के मध्य में प्लवनशील नौ नगर (नावों का शहर) था।

ब्राह्मणग्रन्थों के कुछ विषय

जीवविज्ञान और सृष्टिविज्ञान—ब्राह्मणग्रन्थों में इन विज्ञानों के सम्बन्ध में अद्भुत सामग्री मिलती है जो आधुनिक विद्वानों के लिये अत्यन्त उपादेय अन्वेषणीय विषय है। यथा ताण्ड्यब्राह्मण में प्राचीन पशुओं के विषय में लिखा है—

दरिद्रा आसन् पशवः कृशा सन्तो व्यस्थकाः।
सौमायनस्य दीक्षायां समसृज्यन्त मेदसेति ॥ (ता० ब्रा० 24।18।7)

"सौमायन बुध की दीक्षा से पूर्व पशु दरिद्र, कृश और बिना हड्डियों के थे, उनमें उसी समय मेद (चर्बी, माँसादि) उत्पन्न हुये।"

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक (नक्षत्रादि) के सम्बन्ध में ब्राह्मणों में पर्याप्त सामग्री है, जिससे वर्तमान विज्ञान भी पुष्ट और समृद्ध हो सकता है। उदाहरणार्थ जैमिनीयब्राह्मण (1।257) में सूर्यादि को परिमण्डल (गोलाकार) बताया है—"परिमण्डल आदित्यः, परिमण्डल चन्द्रमाः, परिमण्डला द्यौ, परिमण्डलमन्तरिक्षम्, परिमण्डला इयं पृथिवी।" "यह सूर्य, चन्द्रमा, द्यौ, अन्तरिक्ष (नक्षत्र, ग्रहादि) और पृथिवी सब गोलाकार हैं।"

पृथिवी अग्निगर्भा है—'अग्निगर्भा पृथिवी' (श० ब्रा० 14।9।4।21)। आग्नेयी पृथिवी (तां० ब्रा० 15।4।8), इत्यादि में यह तथ्य प्रकटित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वकाल में पृथिवी कैसे थी इसका चित्र ब्राह्मणग्रन्थों में मिलता है। 'कात्वाली कृत्वा हेयं' तर्हि पृथिव्यास' (श० ब्रा० 2।2।4।3) पहिले पृथिवी गंजी थी, (इस पर वनस्पति आदि नहीं थे)।

इसी प्रकार और तथ्य वर्णित हैं—

'शिथिरा वा इयमग्र आसीत्।' यह पहिले शिथिल थी। (मै० सं० 6।3)

'आर्द्रेव हीयमासीत् ता देवाः शर्कभिरदृहत्' (कपिष्ठलकठ० ६।६)

'पहिले यह पृथिवी आर्द्रा थी, देवों ने (भौतिक शक्तियों) ने इसे शर्करा से दृढ़ किया।

सूर्य के विषय में लिखा है—स वा एष न कदाचनस्तमेति नोदेति।" (ऐ० ब्रा० 3।44) यह सूर्य न तो कभी अस्त होता है और न कभी उदित होता है।"

वर्णाश्रमधर्म—ब्राह्मण ग्रन्थों में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था दृढ़ हो चली थी, यद्यपि कवष एलूष, ऐतरेय और सत्यकाम के उदाहरणों से ज्ञात होता है कि विद्वान् हो जाने पर शूद्रापुत्र ऋषितुल्य हो जाता था। ब्राह्मण का स्वभावतः अत्यधिक सम्मान था—'अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः' (षड् ब्रा० 1।1) ब्राह्मणों को मनुष्यदेव माना जाता था। वृहदारयक से ज्ञात होता है कि वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया था, अतः उस समय चारों आश्रमों का अस्तित्व था। संन्यासी को परिव्राजक भी कहा जाता था, वही मुनि था—'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति' (वृ० उ० 4।4।22)।

स्त्रीमहिमा—विना स्त्री के अपत्नीक पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता था—

अयज्ञो वा एष। योऽपत्नीकः (तै० ब्रा० 2।2।2।6)।

इसी प्रकार अपुत्रो पुरुष का इहलोक श्रेष्ठ नहीं माना जाता था—

'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' (ऐ० ब्रा० 7।13) यज्ञ के लिये प्रायः एक से अधिक पत्नी की आवश्यकता होती थी। एक से अधिक पत्नी रखना दोषावह नहीं माना जाता था—'यदि ह वा अपि वह्व इवजायाः पतिः' (ऐ०ब्रा०3।5।3) तथा 'एकस्य वह्वयो जाया भवन्ति' (ऐ०ब्रा० 3।2।12)।

अतिथि-सत्कार—उस समय अतिथि-सत्कार आवश्यक कृत्य था। इस सम्बन्ध ऐतरेयब्राह्मण में एक प्राचीन गाथा मिलती है—(ऐ० ब्रा० 5।5)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'तद् यददो गाथा भवति'—
अनेनस मेनसा सोऽभिशस्तादेनस्वतो वापहरादेनः ।
एकातिथिमपसायं रुणद्धिः विसानि स्तेनो जहार ।।' इति ।

पद्मदण्डों (कमल) को चोरने का जो पाप, निष्पाप को पाप लगाने का जो पाप लगता है वही पाप उसको लगता है जो एकातिथि का सायंकाल सत्कार नहीं करता ।" अतिथि या राजा के आगमन पर पशुघात व माँसभक्षण का भी विधान था—तद्यथैवादो मनुष्यराज आगते, अन्यस्मिन् वार्हति उक्षाणां व वेहतं वा क्षदन्त एवमेवास्म एतत् क्षदन्ते (ऐ० ब्रा० 1।3।4) ।

उस समय राजा का बड़ा सम्मान था, इससे यह भी सिद्ध होता है ।

यज्ञमहिमा—ब्राह्मणग्रन्थों में मुख्यतः श्रौतयज्ञों का विस्तार से वर्णन है। प्रधान श्रौतयज्ञ ये हैं—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयण, निरूढ़पशुबन्ध । सात सोमक्रतु प्रसिद्ध थे—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, अप्तोर्याम और वाजपेय ।

गृहस्थों की सात पाक संस्थाओं (यज्ञों) का वर्णन भी है—अष्टका, पार्वण, स्थालीपाक, श्राद्ध, पिण्डपितृयज्ञ, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी । इनके अतिरिक्त वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध, पुरुषमेध, पितृमेध, सर्वमेध, आदि बहुत से बड़े यज्ञ थे । एक दिन के सोमयज्ञ को एकाह और अनेक दिन (द्वादश दिन तक) के यज्ञ को अहीन कहते थे । इनसे बड़े यज्ञों को सत्र और दीर्घसत्र कहा जाता था । इन अहीनादि सोमयज्ञों के सैकड़ों भेद थे । इन सबका सामवेद के ब्राह्मणों में वर्णन मिलता है । यज्ञ को उस समय श्रेष्ठतम कर्म माना जाता था—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' (श.ब्रा. 1।7।1।5) । पञ्चमहायज्ञों का भी ब्राह्मणों में वर्णन है ।

वनस्पति और पशु—बलि के उपादान थे । यज्ञों में अज, अश्व, वृषभ आदि की बलि दी जाती थी । ब्राह्मणों से उद्धरण देकर हम व्यर्थ का विस्तार नहीं करना चाहते ।

सदाचार और सत्य—मन्त्रों के समान ब्राह्मणग्रन्थों में भी सत्यभाषण की महिमा गाई है, यथा—'नानृतं वदेत्' (तै० सं० 2।5।5।32)

सत्यसंहिता वै देवाः (ऐ० ब्रा० 1।6)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में कथन है—'सत्यं वद' 'धर्मंचर'। सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, इत्यादि।

यज्ञों से मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है, ऐसा माना जाता था—'सर्वां ब्रह्महत्यापपहन्ति योऽश्वमेधेन यजते' (श० ब्र० 13।5।4।1) अश्वमेध करनेवाला ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार अग्निहोत्र करने वाला विद्वान् सब पापों से मुक्त हो जाता है—'सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानाग्निहोत्रं जुहोति।" (श० ब्रा० 2।3।1।6)

विद्यावंश—वैसे तो सभी ब्राह्मण-ग्रन्थों में आचार्यों के विद्यावंशों की छोटी बड़ी सूचियाँ मिलती हैं, परन्तु इनमें शतपथब्राह्मण में उपलब्ध विद्यावंशों की पाँच सूचियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं, इसके अतिरिक्त वंशब्राह्मण और जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण में सामवेदीय आचार्यों की सूची मिलती है, (द्रष्टव्य Ancient Sanskrit Literature by Max Muller. p. 397 to 406)

सामविधान ब्राह्मण में आचार्यों का एक विद्यावंश मिलता है, जो इतिहास के लिये अत्यन्त उपादेय है, इसको यहाँ यथावत् उद्धृत करते हैं—"सोऽयं प्राजापत्यो विधिस्तमिमं प्रजापतिर्बृहस्पतये प्रोवाच बृहस्पतिर्नारदाय नारदो विष्वक्सेनाय विष्वक्सेनो व्यासाय पाराशर्याय व्यासः पाराशर्यो जैमिनये जैमिनिः पौष्पिण्ड्याय पौष्पिण्ड्य पाराशर्यायणाय पाराशर्यायणो बादरायणाय बादरायणस्ताण्डिशाट्यायनिभ्यां तण्डिशाट्यायनिनौ बहुभ्यः। (सा. ब्रा. 3।9।3)

(1) प्रजापति
|
(2) बृहस्पति
|
(3) नारद
|
(4) विष्वक्सेन
|
(5) व्यास

(6) जैमिनि
|
(7) पौष्पिञ्जय
|
(8) पाराशर्यायण
|
(9) बादरायण
|
(10) ताण्ड्य और शाट्यायन

इस वंशसूची से इतिहास के अनेक भ्रमों का निवारण होता है। प्रथम, जो विद्वान् पाराशर्य व्यास और बादरायण को एक मानते हैं वह भ्रम नष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। द्वितीय, पुराणों के उस पाठ का संशोधन होता है जिसमें हिरण्यनाभ कौसल्य और कृत को जैमिनि की शिष्यपरम्परा में प्रदर्शित किया है, कौसल्य, जैमिनि की शिष्यपरम्परा में हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह तो महाभारतकाल से शतियों पूर्व हो चुका था। पं. भगवद्दत्त यहां पर उल्लिखित विष्वक्सेन को देवकीपुत्र कृष्ण मानते हैं, यह भी महान भ्रम है (द्र० भा० बृ० इ० भाग१, पृ. 196)। यह विष्वक्सेन योगी और पाञ्चालराज ब्रह्मदत्त का पुत्र था—"पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत् प्रभुः। योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परंतपः ॥ (हरि० पु० 1।20।28) यह योगी ब्रह्मदत्त का पुत्र विष्वकसेन प्रतीप और शन्तनु का समकालीन पाञ्चाल नरेश था।

आरण्यक ग्रन्थ

इस समय 7 आरण्यक ग्रन्थ मिलते हैं, ऋग्वेद के ऐतरेय और शांखायन आरण्यक (भ्रम से कुछ लोग शांखायन आ० को कौषीतकि आ० कहते हैं, जो भ्रम ही है)। यजुर्वेद का बृहदारण्यक (माध्यदिन और काण्व-दो पाठ), तैत्तिरीयारण्यक, मैत्रायणीयारण्यक (मैऽयुपनिषद्), सामवेद का जैमिनीयोपनिषद् या तवल्कार आरण्यक।

आरण्यकों में जहाँ वानप्रस्थियों के यज्ञों का विधान है, वहाँ उपनिषदों के समान ज्ञानकाण्ड का विषय भी प्रतिपादित है। ये ब्राह्मणों और उपनिषदों के मिश्रित रूप हैं और हैं भी ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम भाग। वास्तव में ये ग्रन्थ ब्राह्मणग्रन्थों के ही अङ्ग हैं। अरण्य (वन) में पढ़े जाने के कारण इनको आरण्यक कहते थे, जैसा कि सायणाचार्य तैत्तिरीयारण्यक भाष्य के प्रारम्भ लिखा है—

'अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।' (तै० आ० श्लोक 6) 'अरण्य में अध्ययन किये जाने के कारण इनकी आरण्यक संज्ञा है।

ऐतरेयारण्यक—इसमें पाँच आरण्यक या विभाग हैं। प्रत्येक आरण्यक में पृथक्-पृथक् अध्याय हैं—प्रथम में 5 अध्याय, द्वितीय में 7 अध्याय, तृतीय में 2 अध्याय, चतुर्थ में 1 अध्याय, पञ्चम में 3 अध्याय। कुल 18 अध्याय हैं, पुनः अध्याय खण्डों में विभक्त हैं। पहिले तीन आरण्यकों का प्रणेता महिदास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐतरेय ऋषि, जो ब्राह्मण का कर्त्ता है, माना जाता है, चतुर्थ आरण्यक का लेखक आश्वलायन और पञ्चम आरण्यक का कर्त्ता आश्वलायन का गुरु शौनक, जैसाकि सायण ने लिखा है—"ताश्च पञ्चमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः। (ऐ० आ० (1।4।1) महाभारत आदिपर्व में भी कुलपति शौनक को आरण्यक में गुरु बतलाया है।

प्रथम आरण्यक में महाव्रत यज्ञ का वर्णन है (महाव्रत गवामयन यज्ञ का अन्तिम अंश होता है, जो वर्ष के अन्तिम दिन मनाया जाता है, जैसा कि ईसाई बड़े दिन (Chrismas) को मनाते हैं) महाव्रत के दिन स्त्री पुरुष नृत्य और गान करते हैं, यह एक प्रकार का लौकिक कृत्य था, जैसा कि श्री पाण्डुरङ्ग वामन काणे मानते हैं। (द्रष्टव्य, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग)।

द्वितीयारण्यक में उकथ्य, निष्कैवल्य, प्राणविद्या आदि का वर्णन है। तृतीयारण्यक में संहिता के भेदों का वर्णन है। इसके अन्त में स्वरादि वर्णों का स्वरूप कथित है। चतुर्थ आरण्यक में महानाम्नी सामों (ऋचाओं) का संग्रह है। पञ्चमारण्यक में निष्कैवल्य शस्त्र का वर्णन है, जो महाव्रत यज्ञ के माध्यदिन सवन में गाया जाता था।

आरण्यकग्रन्थों का रचनाकाल आगे कथित होगा।

शांखायनारण्यक—जैसाकि पहिले लिखा जा चुका है कि कुछ लोग भ्रमवश इसको कौषीतकि आरण्यक भी कहते हैं, कौषीतकि आरण्यक इससे पृथक् होगा, जो इस समय अनुपलब्ध है।

शांखायनारण्यक में 15 अध्याय और 137 खण्ड हैं। इसके विषय ऐतरेयारण्यक के प्रायः समान ही हैं। इसके तृतीय अध्याय से षष्ठ अध्याय तक कौषीतकि उपनिषद् है। इस उपनिषद् में इन्द्र और काशिराज प्रतर्दन का संवाद मिलता है, इस विषय में आगे विशेष लिखा जायेगा। इस ग्रन्थ में मध्य देशीय जनपदों—उशीनर, मत्स्य, कुरुपञ्चाल, काशिविदेह के नाम आने से इसे इन्हीं में से किसी जनपद की रचना मानते हैं। इस आरण्यक का मूल प्रवक्ता गुणाढ्य शांखायन था। यह गुणाढ्य शंख के वंशज शांखायन का वंशज था। आरण्यक के अन्त में विद्यावंश मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृहदारण्यक—इसके दो पाठ हैं जैसे कि शतपथब्राह्मण के हैं—माध्यदिन और काण्व। माध्यदिन पाठ में 6 अध्याय हैं। यह माध्यदिन शतपथ के चतुर्दश काण्ड के अन्तिम अध्याय हैं। ये अध्याय ब्राह्मणों में विभक्त हैं, क्रमशः 6, 5, 9, 5, 15 और 4 ब्राह्मण इन अध्यायों में हैं। काण्वपाठ में क्रमशः 6, 3, 9, 6, 15 और 5 ब्राह्मण हैं। माध्यदिन वृहदारण्यक में 44 ब्राह्मण और काण्व वृहदारण्यक में 47 ब्राह्मण हैं। पञ्चम और षष्ठ अध्यायों को 'खिल' माना जाता है, खिल या परिशिष्ट होने से यह मूल लेखक की रचना न होकर उत्तरकालीन शिष्यादि की रचना समझनी चाहिए। वैसे शतपथ-ब्राह्मण के रचयिता वाजसनेय-याज्ञवल्क्य होने से वृहदारण्यक के रचयिता भी वही सिद्ध होते हैं, क्योंकि यह आरण्यक भी शतपथ का ही अन्तिम भाग है।

वृहदारण्यक के आरम्भ में यज्ञविषय अति स्वल्प है, वास्तव में इसमें आत्मज्ञान और ब्रह्मविद्या का ही मुख्य वर्णन होने से इसे उपनिषद् (वृहदारण्यकोपनिषद् कहते हैं, शंकराचार्य ने जिन 11 उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, उनमें से यह भी एक है। उपनिषदों में सम्मिलित होने के कारण इसके विषय का उपनिषदों के साथ वर्णन किया जायेगा। केवल प्रथम अध्याय के प्रारम्भ के दो ब्राह्मणों में (उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः इत्यादि) अश्वमेध सम्बन्धी वर्णन है। शेष आरण्यक या उपनिषद् में ब्रह्मविद्या या अध्यात्म का वर्णन है, अतः वस्तुतः यह आरण्यक उपनिषद् ही है।

तैत्तिरीयरण्यक—यह अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें कुल 10 प्रपाठक हैं। प्रारम्भ के दो प्रपाठक काष्ठ शाखा के माने जाते हैं। ये प्रपाठक अनुवाकों में विभक्त हैं। कुल 170 अनुवाक हैं। सप्तम, अष्टम और नवम प्रपाठक तैत्तिरीयोपनिषद् कहलाता है। दशम प्रपाठक नारायणीयोरनिषद् कहलाता है। तैत्तिरीयारण्यक पर भट्टभास्कर और सायण के भाष्य प्रसिद्ध हैं। तैत्तिरीयोपनिषिद् पर शंकराचार्य का भाष्य अति प्रसिद्ध है।

तैत्तिरीयारण्यक के विभिन्न प्रपाठकों के नाम भी प्रसिद्ध हैं, जैसे प्रथम भद्र प्रपाठक, द्वितीय सहवै, तृतीय चित्रि प्रपाठक, इत्यादि। इस आरण्यक में आरुककेतुक चयनयज्ञ, पञ्चमहायज्ञ, चातुर्होत्र, प्रवर्ग्य, पितृमेध और ब्रह्मविद्या का वर्णन है। इनका उदाहरण आगे दिया जाएगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैत्रायणायारण्यक या मैत्र्युपनिषद्—इसको मैत्र्युपनिषद् या मैत्रायण्युपनिषद् भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में सात प्रपाठक हैं, जो खण्डों में विभक्त हैं, प्रपाठकों में खण्डों की संख्या क्रमशः 4, 7, 5, 6, 2, 38 और 11 हैं। कुल 73 खण्ड हैं। विभिन्न संस्करणों में प्रपाठकों की संख्या में भेद भी मिलता है। इस आरण्यक का एक प्राचीन नाम चरक बृहदारण्यक भी था, जैसा कि पं० भगवद्दत्त का मत है (वै० वा० इ०, भाग 2 पृष्ठ 238)। यह ग्रंथ बहुत अस्तव्यस्त दशा में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में मिलता है, अतः पाठों का निर्धारण कठिन हो गया है।

इस आरण्यक में मुख्यतः आत्मविद्या का ही वर्णन है, विशेषतः बृहद्रथ नाम का राजा शाकायन्य मुनि के आश्रम में जाकर वैराग्य का उपदेश ग्रहण करता है, इसी प्रसङ्ग में वह सुद्युम्नादि पूर्व चक्रवर्तियों के नाम लेता है।

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण या तवलकारारण्यक—इसमें कुल चार अध्याय हैं जो क्रमशः 60, 15, 42 और 28 खण्डों में विभक्त हैं। कुल 145 खण्ड हैं। इसके चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक से केनोपनिषद् आरम्भ होकर चार खण्डों में पूर्ण होता है।

इसके प्रणेता जैमिनि शिष्य तवलकार होने से इसकी तवलकारारण्यक संज्ञा प्रसिद्ध हुई। इस ग्रन्थ के अन्त में सामवेदीय आचार्यों का एक विद्यावंश मिलता है, जिसमें काश्यप विभाण्डक, ऋषि शृंगादि नाम महत्वपूर्ण हैं। ऋषि-शृंग दाशरथि राम के समकालीन थे।

आरण्यकों का रचनाकाल—ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के समय अथवा उसके शीघ्र पश्चात् ही आरण्यक ग्रन्थर रचे गए। इन आरण्यकों के रचयिता भी प्रायः वे ही ऋषि या आचार्य थे जिन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थ रचे। उदाहरणार्थ ऐतरेयारण्यक के प्रथम तीन आरण्यकों का रचयिता महिदास, ऐतरेय था, शेष चतुर्थ का आश्वलायन और पञ्चम आरण्यक का शौनक। महिदास व्यास के समकालीन या उद्दालक वैशम्पायन, श्वेतकेतु आदि के समकालीन था, अतः ऐतरेय का वही समय है जो श्वेतकेतु आदि का था। शौनक और आश्वलायन अवश्य ही व्यास से दो या तीन शती पश्चात् अधिसीमकृष्ण पाण्डव के समय में (2700 वि. पू.) हुए, इस समय ही उग्रश्रवा सौति ने शौनक के दीर्घसत्र में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराण प्रवचन किया। अतः यही शौनक आश्वलायनादि का समय है। वाजसनेय याज्ञवल्क्य, जो बृहदारण्यक का प्रणेता था। उसका समय भी पूर्व संकेत कर आये हैं। जैमिनि तवल्कार, शांखायन, तैत्तिरीय आदि भी व्यास के शिष्य या प्रशिष्य थे, इन्हीं ने आरण्यकों की रचना की। पाश्चात्य लेखक आरण्यकों का रचनाकाल 700 या 800 ई० पू० मानते हैं।

आरण्यकों से कुछ उद्धरण—जिस-जिस आरण्यक में जो जो विषय प्रतिपादित है, उसका संकेत हम पहिले ही कर आये हैं। यहां पर आरण्यकों के कुछ विशेष उद्धरण द्रष्टव्य हैं।

तैत्तिरीयारण्यक आरण्यक के आरम्भ में कालविज्ञान का विशेष वर्णन द्रष्टव्य है—"स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् अनुमानश्चतुष्टयम्।

एतैरादित्यमण्डलम् सर्वैरेव विधास्यते ॥
सूर्यो मरीचिमादत्ते सर्वस्माद्भुवनादधि।
तस्याः पाकविशेषेण स्मृतं कालविशेषणम् ॥
अणुभिश्च महद्भिश्च समारूढः प्रदृश्यते।
संवत्सरः प्रत्यक्षेण नाधिसत्वः प्रदृश्यते ॥
सारागवस्त्रैर्जरदक्षः। वसन्तो वसुभिसहः।
संवत्सरस्य सवितुः प्रैषकृत्प्रथमः स्मृतः (तै०आ० प्र० १)

"स्मृति (धर्मशास्त्र), प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (इतिहास) और अनुमान—चतुष्टय से सृष्टि के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। सूर्य समस्त भुवन से किरणों को ग्रहण करता है। उस मरीचि का परिणाम विशेष को काल (समय) कहते हैं। वह अणु और महान खण्डों द्वारा व्यक्त होता है, उसी से संवत्सर का निर्माण होता है, लेकिन वह प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं पड़ता। वसुओं के साथ सराग वस्त्रों से पतझड़ आदि के द्वारा वसन्त का ज्ञान होता है, वह सूर्य संवत्सर का प्रथम प्रैषकृत् (संज्ञापक) है। इसी ग्रंथ में आगे अनेक विज्ञानों का संकेत है, यथा आकर्षण विज्ञान का वर्णन—किंस्विदत्रान्तरा भूतम् येनेमे विधृते उभे। विष्णुना विधृते भूमी इति वत्सस्य वेदना ॥ (तै० आ० 1।8) अर्थात् यह द्यावा पृथिवी किस पर आधृत हैं, वत्स आचार्य के मत में विष्णु नामक वायु या शक्ति से ये द्यावा पृथिवी स्थिर हैं।" इसको आगे स्पष्ट किया है—"वाताद्विष्णोर्बलमाहुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्यत्र भी कहा है—"वायुना वै गौतम सूत्रेण ये च लोकः परश्चलोकः सर्वाणि भूतानि संदृब्धानि भवन्ति।" (बृ० उ०)।

बृहदारण्यक में अश्व (सूर्य) की महिमा बताते हुए एक ऐतिहासिक भाषा के महत्व का कथन मिलता है कि देवों में घोड़े की संज्ञा हय थी, गन्धर्वों में वाजी, असुरों में अर्वा और मनुष्यों में अश्व,—'हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वासुरानश्वो मनुष्यान्।" (बृ० उ० 1।1।2)।

बृहदारण्यक में गृहस्थ को कामना त्यागकर संन्यास और भिक्षाचर्या का उपदेश है—'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तिः प्रव्रजन्ति।...ते ह स्म पुत्रैषणायश्च वित्तैषयश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय भिक्षा-चर्यां च चरन्ति।" (बृ० आ० 4।4।22)। "इसको जानकर मनुष्य मुनि (मौनी) हो जाता है। इस आत्मा को जानकर ब्रह्मलोक की कामना करते हुए परिव्राजक होकर पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा (यशःप्राप्ति) की कामना त्यागकर भिक्षाचर्या करता है।"

ऐतरेयारण्यक में प्राण की महिमा कथन करते हुए उसे सृष्टि का कर्त्ता बताया है—"प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति। अन्त-रिक्षमनुश्रृण्ठवन्ति।" "प्राण से ही अन्तरिक्ष और वायु उत्पन्न हुए हैं। अन्त-रिक्ष में ही अनुचरण और अनुश्रवण करते हैं।" ऐतरेयारण्यकारण्यक में अनेक ऐतिहासिक तथ्य, विशेषतः ऋषियों के नाम हैं यथा-कावषेय, जातूकर्ण्य, गालव, आग्नि वेश्यायन, शाकल्य, शूरवीर माण्डूकेय, महिदास ऐतरेय, हिरण्यदन्वैद इत्यादि। भारद्वाज ऋषि के विषय में लिखा है—"भारद्वाजो ह वा ऋषीणामनू-चानतमो दीर्घजीवत्तस्तमस्तपस्वितम आस" (ऐ० आ० 1।2।2)। 'भारद्वाज ऋषियों में अति विद्वान् अतिदीर्घजीवी और अति तपस्वी था।"

मैत्रायण्युपनिषद् में सुद्युम्न, मरुत्त भरतादि राजाओं के नाम मिलते हैं। जैमिनीयारण्यक में ऋचाओं का अत्यन्त मनोहर और स्पष्ट अर्थ किया गया है जैसे—'अपश्य गोपामनिपद्यमानमा......"अपश्यं गोपाय......प्राणो वै गोपाः......।' (7।37 जै० आ०)

प्राणो वै पतङ्गः। स इमां वाचं मनसा बिभर्ति...। इत्यादि, (जै० आ० 3।36)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपनिषद्-साहित्य

प्रचार, महत्व और प्रसिद्धि— वैदिक साहित्य में उपनिषदों का प्रचार, महत्त्व और प्रसिद्धि सर्वाधिक है। भारतीय साहित्य का सर्वप्रथम परिचय पाश्चात्यों को उपनिषदों के माध्यम से ही हुआ। मैक्समूलर ने 'एंशेन्ट संस्कृत लिटलेचर' ग्रन्थ में और विन्टरनीत्स ने 'इन्डियन लिटरेचर' (प्रथम भाग) पुस्तक में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है कि यूरोप में उपनिषदों का प्रसार और परिचय किस प्रकार हुआ। तदनुसार दाराशिकोह के फारसी अनुवाद से दुपरन नामक फ्रेंच विद्वान् ने उसका फ्रेंचभाषा में अनुवाद किया, फिर लैटिन अनुवाद भी किया। यह लैटिन अनुवाद पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेनहावर (सं. 1845-1917) इतना प्रभावित हुआ कि वह ग्रन्थ उसका कण्ठहार बन गया—इस विषय में विन्टरनीत्स ने लिखा है कि शापेनहावर उपनिषदों के विषय में मानता था—'It the most satisfying and elevating reading (with the exception of the original text) which is possible in the world, it has been the solace of my life and will be the solace of my death" (Indian Lit. p. I. p. 267).

"यह सर्वाधिक सन्तोषप्रद एवं उन्नायक ग्रन्थ है, (मूल ग्रन्थ के बिना) जो विश्व में संभव है। यह मेरे जीवन का सहारा है और मेरी मृत्यु का भी सहारा होगा।"

इसके पश्चात् कालब्रुक, वेबर, इलियट इत्यादि ने उपनिषदों के विषय में पाश्चात्य जगत् को उन्नीसवीं शती में परिचय कराया। स्वयं मैक्समूलर ने 'दि सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट' शीर्षक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 12 प्रधान उपनिषदों का आंग्ल भाषा में अनुवाद किया। कीथादि ने भी उपनिषदों पर पर्याप्त लिखा, इस प्रकार यूरोप और शेष विश्व उपनिषद् ज्ञान परिचित हुआ।

संख्या—उपनिषदों की प्राचीनकाल से ही इतनी प्रसिद्धि हुई कि वेदों के भाग उपनिषदों के अतिरिक्त वैष्णव, शैव, शाक्त (तान्त्रिक) सांख्य, योग आदि सम्प्रदायों ने अपने-अपने बहुत से उपनिषद् रचे। यहाँ तक कि मुस्लिम शासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल में अल्लोपनिषद् और अंग्रेजी-शासन काल में बाईबल के आधार पर उपनिषदें रचे गये, यद्यपि उनका बहुत प्रचार नहीं हुआ। उपनिषदों की संख्या 12 से बढ़कर 68, या 108 यहाँ तक 220 तक हो गई। मुक्तकोपनिषद् में उपनिषदों की संख्या 108 बताई गई है, इसमें सर्वाधिक उपनिषद् अथर्ववेद के हैं। उत्तरकालीन उपनिषद् अधिकतर साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। हम यहाँ केवल उन वैदिक उपनिषदों का परिचय लिखेंगे जो वेदों या ब्राह्मणों के भाग हैं—उनके नामहैं— 1. ईशोपनिषद् 2. केनोपनिषद् 3. कठोपनिषद् 4. प्रश्नोपनिषद् 5. मुण्डकोपनिषद् 6. माण्डूक्योपनिषद् 7. तैत्तिरीयोपनिषद् 8. ऐतरेयोपनिषद् 9. छान्दोग्योपनिषद् 10 बृहदारण्यकोपनिषद् 11. श्वेताश्वतरोपनिषद् 12. कौषीतक्युपनिषद् 13. मैत्रायण्युनिषद् 14. जैमिनीयोपनिषद् 15. बावकलोपनिषद् 16. आर्षेयोपनिषद् 17. छांगलेयोपनिषद्।

इनमें से ईशादि ग्यारह उपनिषदों पर ही श्री शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है।

उपनिषद्-पद का अर्थ—इस सम्बन्ध में मैक्समूलर ने लिखा है—"The true etymological meaning of the word Upnishad had been forgotten in India. It is generally explained by rahasya or guhya adesah, mystery; (Anc. Sank. Lit. p. 285).

"वास्तविक निर्वचन, उपनिषद् पद का भारत में विस्मृत हो गया था। इसका सामान्यतः अर्थ रहस्य, गुह्यज्ञान या गूढ़ज्ञान माना जाता था।" मैक्समूलर की मान्यता सर्वांश में सत्य नहीं है। इस शब्द का अर्थ प्राचीन आचार्यों को भली-भांति ज्ञात था 'षद्' धातु में नि पूर्वक 'उप' उपसर्ग लगाने से 'उपनिषद्' शब्द बना है, जिसका अर्थ है, ज्ञान प्राप्ति के लिये गुरु के समीप (उप-समीप) 'सद्' (बैठना) आद्य शंकराचार्य ने कठोपनिषद भाष्य के प्रारम्भ में 'उपनिषद्' पद की इस प्रकार व्यवस्था की है—

"य इमां ब्रह्मविद्यामुपयान्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसराः सन्त स्तेषांगर्भजन्मजरारोगाद्यवर्गं विनाशयति परं वा ब्रह्म गमयति, अविद्यासंस्कारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयति, इत्युपनिषद, उपनिपूर्वस्य सदेरेवमर्थसंस्मरणात्।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कठोपनिषद्भाष्य)—"जो जन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक आत्म ज्ञान के लिए ब्रह्मविद्या को ग्रहण करते हैं, वह उनके गर्भ, जन्म, जरारोगादि वर्ग का नाश करती हुई ब्रह्म को प्राप्त कराती हैं, वह उनके अविद्यासंस्कारकारण का विनाश कर देती है यही उपनिपूर्वक 'सद्' धातु से निष्पन्न 'उपनिषद्' का अर्थ है।"

रचनाकाल—भाषा और छन्दों के आधार पर मैक्समूलर उपनिषदों का रचनाकाल 600 ई. पू. मानता था। विन्टरनीत्स उपनिषदों को इससे पुरातन 700 या 800 ई. पू. का मानता था। लुडविगनाम का पाश्चात्य लेखक उपषदों को ई. पू. 1000 से पूर्व का समझता था। सभी विद्वान् उपनिषदों को पाणिनि और बुद्ध से पूर्व का मानते हैं, जिनका समय 550 ई. पू. था। डा० वसुदेवशरण अग्रवाल बृहदारण्यकोपनिषद् में दी हुई आचार्य वंश परम्परा के आधार पर उपनिषदों को 800 से 1100 ई. पू. का मानते थे।

(द० पाणिनिकालीन भारतवर्ष) गनेल्डस्टकर के मत में पाणिनि उपनिषदों से अनभिज्ञ था। यह मत भ्रामक और असत्य है।

लोकमान्य तिलक ने 'ओरायन' ग्रन्थ में मैत्र्युपनिषद में उल्लिखित उदगयन की स्थिति (ज्योतिष) के आधार पर इस उपनिषद् का समय 1680-1880 ई. पू. निर्धारित किया है। यह उपनिषद् बहुत उत्तरकालीन है, इसमें छान्दोग्यादि उपनिषदों के वाक्य उद्धृत हैं अतः प्राचीन उपनिषद् तो और भी प्राचीन होने चाहिए।

पं० भगवद्दत्त के मत में भारतीय परम्परा के अनुसार ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों के रचयिता वाजसनेय याज्ञवल्क्य, उद्दालक आरुणि पिप्पलाद; शौनक, आश्वलायन, शांखायन, कौषीतकि आदि महाभारत काल के आस-पास (3000 ई. पू.) हुये, अतः जो समय ब्राह्मणों और आरण्यकों का था, वही प्रायः उपनिषदों का रचनाकाल था। इनमें केवल विष्यभेद है और भाषाभेद से भी रचनाकाल का निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि लौकिक संस्कृत की गाथायें स्वयं ब्राह्मण ग्रन्थों में इतिहास पुराणों से उद्धृत की हैं, इनके उदाहरण पूर्व दिये जा चुके हैं। जब ब्राह्मणों और उपनिषदों के रचयिता एक ही थे तो उनके समय में अन्तर कैसे हो सकता है, अतः प्राचीन वैदिक उपनिषदों का रचनाकाल भी वही है जो ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथों का था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके अतिरिक्त एक और प्रमाण है, जिससे उपनिषदों की रचना महाभारत रचनाकाल से पूर्व सिद्ध होती है, श्रीमद्भागवद्गीता उपनिषदों का सार मानी जाती है। इसका प्रमाण छान्दोग्योपनिषद् से मिलता है जहां लिखा है कि देवकीपुत्र कृष्ण ने उपनिषद् ज्ञान आङ्गिरस ऋषियों से ग्रहण किया। (द० छा० उ०)

उपनिषद्ज्ञान की प्राचीनता— सनत्कुमार, भृगु, अथर्वा, इन्द्र, कश्यप आदि प्राचीन भारत के आदिम पुरुष और ऋषि थे। स्वयं उपनिषदों में सनत्कुमारादि ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान का उपदेश देते हुए दिखलाई पड़ते हैं। छान्दोग्योपनिषद् सप्तम अध्याय में सनत्कुमार, नारद आदि (जो स्वयं देवर्षि और प्रजापति दक्ष के पुत्र प्राचीनतम ऋषि थे) को आत्मज्ञान का उपदेश देते हैं। इसी ग्रन्थ के अष्टम अध्याय में (सप्तम खण्ड से पञ्चदशः खण्ड तक) प्रजापति कश्यप इन्द्र और विरोचन को आत्मज्ञान का उपदेश देते हुए प्रदर्शित किए हैं। इन्द्र स्वयं भरद्वाज, वशिष्ठ आदि सप्तर्षियों को उपदेश देता है। तैत्तिरीयब्राह्मण में इन्द्र भरद्वाज को त्रयी विद्या का ज्ञान देता है। इन्द्र के ज्येष्ठ भ्राता वरुण अपने पुत्र और प्राचीनतम ऋषि भृगु को आत्मज्ञान प्रदान करते हैं (देखिए, जैमिनीय, ब्राह्मण शतपथ और तैत्तिरीयोपनिषद्)। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान कोई नई वस्तु नहीं थी। मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्मविद्या के आदि प्रवक्ता ब्रह्मा और उनके ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा बताये गये हैं। अतः पाश्चात्य या आधुनिक लेखकों की यह धारणा भ्रामक है कि ब्रह्मविद्या या आत्मविद्या याज्ञवल्क्य आदि की देन है और इससे पूर्व नहीं थी। स्वयं ऋग्वेद और अथर्ववेद में रहस्यविद्या या आत्मविद्या का वर्णन मिलता है, अतः भारतीय मतानुसार उपनिषद् ज्ञान का मूल अति प्राचीन है।

ऋग्वेदीय उपनिषद्

ऐतरेयोपनिषद्—यह ऐतरेय आरण्यक का ही भाग है। द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अध्याय उपनिषद् हैं। इसमें कुल पाँच खण्ड हैं। यह उपनिषद् एक लघु ग्रन्थ है। प्रथम खण्ड में, आत्मा से सृष्टि की उत्पत्ति का कथन है, द्वितीय खण्ड में यह बताया है कि पुरुष शरीर में प्राणादि की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठा किस प्रकार हुई। तृतीय खण्ड में आत्मा की श्रेष्ठता, का कथन है, चतुर्थ खण्ड में जीवोत्पत्ति और पञ्चम खण्ड में परमात्मा की शक्ति का सारगर्भित वर्णन है।

कौषीतक्युपनिषद्—यह शांखायन आरण्यक के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अध्यायों से मिलकर बना है। इसमें कुल चार अध्याय हैं। इसके प्रथम अध्याय में पितृयज्ञ और देवयान, द्वितीय में आत्मविद्या, तृतीय में प्रतर्दन (काशिराज) इन्द्र से ब्रह्मविद्या ग्रहण करता हैं, चतुर्थ अध्याय में गार्ग्य बालाकि काशिनरेश अजातशत्रु से आत्मज्ञान ग्रहण करता है।

इस उपनिषद् से विशेष उद्धरण आगे दिये जायेंगे।

ईशावास्योपनिषद्—यह शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयिशाखा का चालीसवाँ अध्याय है, इस लघु ग्रन्थ में केवल 17 मन्त्र हैं, यही उपनिषद् है जिसका किसी वेदसंहिता से सीधा सम्बन्ध है, अन्य उपनिषद् ब्राह्मण या आरण्यक के भाग हैं। यह उपनिषद् अद्वैतवाद का मूल स्रोत कहा जा सकता है, इसमें ब्रह्म, आत्मा, विद्या, अविद्या, सम्भूति, असम्भूति, मृत्यु, मुक्ति आदि का संक्षेप में कथन है। यह सम्पूर्ण उपनिषद् आगे सानुवाद उद्धृत किया गया है।

बृहदारण्यकोपनिषद्—इसके माध्यदिन और काण्व पाठों का परिचय आरण्यक प्रकरण में लिखा जा चुका है, क्योंकि यह मुख्यतः उपनिषदों में ही सम्मिलित किया जाता है, अतः इसके विषयों का वर्णन यहाँ प्रति अध्याय क्रम से किया जाता है—इसके प्रथम अध्याय में अश्वमेध का विराट् रूप से वर्णन देवासुर विग्रह, उद्गीथ, प्राणतत्त्व, आदि का प्रतिपादन है। द्वितीयाध्याय में आदित्य का ब्रह्म रूप प्रतिपादन, प्रत्याख्यानादि का विस्तार से वर्णन तथा अजातशत्रु द्वारा विज्ञानात्मा का प्रतिपादन है। इसी अध्याय में मधुविद्या का उपदेश है। मधुकाण्ड से आगे याज्ञवल्क्य काण्ड है, जिसमें वैदेह जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का जनक तथा अनेक ऋषियों से शास्त्रार्थ होता है। मुख्य विषय आत्मज्ञान या ब्रह्म विद्या ही है। चतुर्थ अध्याय में भी जनक-याज्ञवल्क्य संवाद है। इसके आगे पञ्चम और षष्ठ अध्याय खिलकाण्ड कहे जाते हैं—इनमें पूर्ण ब्रह्म, उसकी उपासना, प्रजापति द्वारा 'द' से दम, दान और दया का उपदेश, हृदयब्रह्म, सत्य ब्रह्म, आदि की उपासना गायत्र्युपासना, प्राणोपासना, आदि का वर्णन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी ग्रंथ में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी-संवाद, प्रवाहण-श्वेतकेतुसंवाद मन्थकर्म और पुत्रमन्थकर्म तथा प्रवचनों की परम्परायें वर्णित हैं। बृहदारण्यक उपनिषदों में सबसे बड़ा ग्रन्थ है।

तैत्तीरीयोपनिषद्—तैत्तिरीयोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयोसंहिता से सम्बन्धित है, यह तैत्तिरीयारण्यक का सप्तम, अष्टम और नवम प्रपाठक है। इन प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली भी कहते हैं। इनमें क्रमशः 12, 9 और 10 अनुवाक हैं। प्रथम, शिक्षावल्ली में भूः, भुवः स्वः महः चतुष्टयी का प्रतिपादन है, इसी में समाप्तविद्य स्नातक के लिए आचार्य या कुलपति द्वारा प्रदत्त उदात्त उपदेश संग्रहीत है, जिनका आगे उल्लेख किया जायेगा। द्वितीय ब्रह्मावल्ली में पञ्चकोशों का स्वरूप वर्णित है, इसमें आनन्द से ही जगत् की उत्पत्ति बतलाई गई है। भृगुवल्ली में वरुण और उसके पुत्र भृगु का संवाद है, जिसमें वरुण भृगु को ब्रह्मज्ञान देते हैं। इस उपनिषद् में मन्त्रों का संग्रह मिलता है तथा अनेक ऋषियों के नाम आये हैं।

कठोपनिषद्—इसका काठकसंहिता से सम्बन्ध है। यह बहुत ही प्रसिद्ध उपनिषद् ग्रन्थ है। इसमें कुल दो अध्याय हैं, जो तीन-तीन वल्लियों में विभक्त हैं। यह उपनिषद् पद्यों में है, इनकी भाषा इतिहासपुराणों से मिलती-जुलती है। इन उपनिषदों के अनेक मन्त्रों की छाया गीता में प्रत्यक्ष दिखलाई देती है। इस उपनिषद् का प्रारम्भ एक आख्यायिका से होता है। वाजश्रवा नाम के ऋषि एक सर्ववेदस् यज्ञ कर रहे थे, जिसमें सर्वस्व दान दिया जाता है, वाजश्रवा लोभवश बूढ़ी और कृश गायों को दान भी दे रहे थे, जिससे उनके युवा पुत्र नचिकेता के मन में श्रद्धा का आवेश हुआ। नचिकेता नाम कई बार पिता को बूढ़ी गायों के दान पर आपत्ति की, जिससे क्रुद्ध होकर वाजश्रवा ने पुत्र को यमराज को दे दिया। यमराज के घर पहुँचकर नचिकेता तीन वरदानों में ब्रह्मविद्या भी ग्रहण करता है। ये नचिकेता और वाजश्रवा अत्यन्त प्राचीन ऋषि प्रतीत होते हैं क्योंकि वाजश्रवा की प्राचीन 28 व्यासों में गणना है, और नचिकेत-यज्ञ भी अत्यन्त पुरातन है। वाजश्रवा का एक नाम सम्भवत उद्दालक था, जिससे आरुणि उद्दालक के नाम से भ्रम होकर वह अर्वाचीन प्रतीत होते हैं। वाजसनेय याज्ञवल्क्य के गुरु और श्वेतकेतु के पिता उद्दालक, वाजश्रवा की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन ऋषि थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैत्रायणी उपनिषद्—इसको मैत्र्युपनिषद् भी कहते हैं। यह मैत्रायणी-संहिता के मैत्रायणी आरण्यक का ही नाम है। इस उपनिषद् के कम से कम चार विभिन्न पाठ प्रकाशित हैं, जिनमें बहुत अन्तर है। इसका परिचय आरण्यक प्रकरण में लिखा जा चुका है, जिनके दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्—यह कृष्णयजुर्वेद की श्वेताश्वतर शाखा से सम्बन्धित था, यह शाखा और ब्राह्मण अब अनुपलब्ध हैं। इसके रचयिता श्वेताश्वतर मुनि थे, इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

इस उपनिषद् में छः अध्याय हैं, यह सम्पूर्ण उपनिषद् गद्य में है। इसमें सांख्य और योग का स्पष्ट वर्णन है तथा कपिल ऋषि का उल्लेख इसी वैदिक ग्रन्थ में सर्वप्रथम मिलता है। इस उपनिषद् में सांख्य के प्रकृति और पुरुष के साथ क्षर, अक्षर, काल, स्वभाव, नियति इत्यादि दार्शनिक पद मिलते हैं। त्रिगुण, माया, प्रकृति, जीव इत्यादि का इसमें उल्लेख मिलता है, सांख्य, योग के साथ वेदान्त की पदावली भी यहाँ मिलती है, इसमें महेश्वर का उल्लेख भी है, जिससे कुछ विद्वान् इसमें शैव प्रभाव मानते हैं। इसमें भक्तिभावना का भी आभास प्रतीत होता है। इस उपनिषद् में बहुत ही उत्तम पद्य मिलता है।

छान्दोग्योपनिषद्—ताण्ड्यमहाब्राह्मण या छान्दोग्यब्राह्मण (चत्वारिंशद्ब्राह्मण) के अन्तिम आठ अध्याय छान्दोग्योपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। यह सामवेद का प्रधान उपनिषद् है, यह बृहदारण्यक के समान प्राचीन और आकार में उससे कुछ ही छोटा है। इसके आठ अध्यायों या प्रपाठकों में खण्ड-संख्या इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय में	—	13 खण्ड
द्वितीय ,,	—	24 ,,
तृतीय ,,	—	19 ,,
चतुर्थ ,,	—	17 ,,
पञ्चम ,,	—	24 ,,
षष्ठ ,,	—	16 ,,
सप्तम ,,	—	26 ,,
अष्टम ,,	—	15 ,,
	कुल =	154 खण्ड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके प्रथम अध्याय में उद्गीथदृष्टि से ओंकार-उपासना, इस सम्बन्ध में शिलक, दाल्भ्य और प्रवाहण का संवाद, उपस्ति चाक्रायण का आख्यान, हिंकार और स्तोभाक्षर की विवेचना है। द्वितीय अध्याय में पञ्चविध सप्तविध सामोपासना, गायत्रीसामोपसना, रथन्तर, वामदेव्य, वंरूप वैराज, शक्वरी, रेवती, यज्ञायज्ञिय और राजन संज्ञक सामोपासना का प्रतिपादन है, तदनन्तर स्वर, वर्ण उच्चारण-चिन्तन, धर्मस्कन्धत्रयी त्रयीविद्या, व्याहृतित्रयी, सवनत्रयी का विवेचन है।

तृतीय अध्याय में मधुविद्या शाण्डिल्यविद्या, विराट् कोशोपासना आ त्मयज्ञ और ब्रह्मोपासना वर्णित है। चतुर्थ अध्याय में राजा जनश्रुति और रैक्व का उपाख्यान, सत्यकाम जाबाल की कथा, अग्नित्रयीविद्या, का उल्लेख है। पञ्चम अध्याय में पञ्चेन्द्रियविवाद, प्राणविद्या, मन्थकर्म, श्वेतकेतु-प्रवाहण संवाद, अग्निविद्या, देवयान, पितृयाण, जीवगति उद्दालक-अश्वपति संवाद में हवन-स्वरूप का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में उद्दालक का श्वेतकेतु को ज्ञानोपदेश विस्तार से वर्णित हैं। तदनन्तर सप्तम अध्याय में मुख्यतः सनत्कुमार-संवाद रूप में वाक्, मन, संकल्प, ध्यानादि से उत्तरोत्तर विज्ञान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। अष्टम अध्याय में प्रधान रूप से दहर-पुण्डरीक-ब्रह्मवर्णन के साथ प्रजापति द्वारा इन्द्र को आत्मज्ञान का वर्णन है।

यह उपनिषद् आत्मविद्या का सर्वोत्तम भण्डार है। इसमें अनेक आख्यान हैं, साथ ही देवकीपुत्र कृष्ण का घोर आङ्गिरस के शिष्य के रूप में महत्वपूर्ण उल्लेख है।

केनोपनिषद्—जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण अथवा तवलकारारण्यक के दसवें अनुवाक के प्रारम्भिक चारखण्डों में केनोपनिषद् है, यह सामवेदीय उपनिषद् है। इसका रचयिता जैमिनि-शिष्य तवल्कार को समझना चाहिये। इन उपनिषद् का आरम्भ 'केन' शब्द से होता है, इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

इस उपनिषद् के पूर्वोक्त चार खण्डों में क्रमशः 8, 5, 12 और 9 श्लोक हैं, अतः कुल 34 श्लोक हैं। इसके प्रथम और द्वितीय खण्ड में ब्रह्म की महिमा वर्णित है, इसी को तृतीय और चतुर्थ खण्ड में हैमवती उमा यक्ष-ब्रह्म के अज्ञेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में, अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्रादि देवों को समझाती है हैमवती उमा का सर्वप्रथम उल्लेख इसी उपनिषद् में मिलता है।

अथर्ववेद के वैसे तो बहुत उपनिषद् हैं, लेकिन उनमें से तीन ही प्रसिद्ध हैं, जिन पर शांकरभाष्य मिलता है—वे हैं—प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषद्।

प्रश्नोपनिषद्—इस उपनिषद् के प्रवक्ता पिप्पलाद ऋषि अथर्ववेद की पैप्पलाद संहिता के प्रवर्तक थे। यह उपनिषद् पैप्पलाद् आरण्यक का भाग होना चाहिये जो इस समय अनुपलब्ध है। इस ग्रन्थ में 6 प्रश्न हैं, जिनमें क्रमशः 16, 13, 12, 11, 7 और 8 खण्ड हैं। यह उपनिषद् गद्य में है, न कि पद्य में जैसा कि कुछ लोग भ्रामक कथन करते हैं।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि इन छः ब्रह्मज्ञानियों के छः प्रश्नों के उत्तर देते हैं—सुकेशा भारद्वाज, शैव्य सत्यकाम, सौर्य्यायणी गार्ग्य, कौसल्य आश्वलायन, भार्गववैदर्भि और कबन्धी कात्यायन। ये प्रश्न हैं—प्रथम—प्रजा उत्पत्ति स्थान कहां है, द्वितीय—प्रजा के धारक देव कौन हैं, तृतीय—प्राण कहाँ से उत्पन्न होते हैं?, चतुर्थ—जीवात्मा और परमात्मा में क्या भेद है, पञ्चम—ओंकार-जप से कौन से लोक मिलते हैं और षष्ठ—षोडश कला पुरुष कौन है। पिप्पलाद क्रमशः इन छः प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

मुण्डकोपनिषद्—यह उपनिषद् पद्य में है। शौनक गोत्र में मुण्डक नाम के ऋषि हुये, वे भी गोत्र नाम से शौनक ही कहलाते थे, इनकी पत्नी का नाम प्रतिबोधी (या प्रातियोधी या प्रातिमेधी) था। ऐतरेयारण्यक (3।1) में शूरवीर माण्डूकेय का उल्लेख है, जो मुण्डक का पुत्र था, वास्तव माण्डूकेय तीन भ्राता थे—दीर्घ, मध्यम और ह्रस्व माण्डूकेय। मुण्डक शौनक या माण्डूकेय शौनकों का ऋग्वेद और अथर्ववेद—दोनों की शाखाओं से सम्बन्ध था। शौनक गोत्र अत्यन्त पुरातन था, जिसका सम्बन्ध काशिराज शुनहोत्र या गृत्समद से था, ये ऋग्वेद द्वितीय मण्डल के द्रष्टा थे, महाभारत के च्यवन के वंशज रुरु के पुत्र शुनक ऋषि से भी एक शौनक गोत्र चला, अतः जो कुछ भी हो शौनक एक प्राचीन गोत्रनाम था। इसी शौनक गोत्रज मुण्डक ने मुण्डकोपनिषद् का प्रवचन किया। उपनिषद् का नाम है मुण्डकोपनिषद् और उसका प्रारम्भ शौनक नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से होता है—'शौनको वै महाशाल:' (मु. उ. 1।1।3), वास्तव में इस शौनक का नाम मुण्डक था। अत: यही इसके प्रवक्ता थे।

इस मण्डूकोपनिषद् में तीन मुण्डक (अध्याय) तथा छ: खण्ड हैं। इसमें ब्रह्मविद्या का सारगर्भित वर्णन है। इसके विषयों के उद्धरण आगे लिखे जायेंगे।

माण्डक्योपनिषद्—उपर्युक्त शौनक मण्डूक (या मुण्डक) के पुत्र माण्डूकेय या माण्डूक्य कहलाये। उन तीन पुत्रों में से कोई सम्भवत: दीर्घ माण्डूकेय माण्डूक्योपनिषद् का प्रवक्ता था।

इस उपनिषद् में केवल 12 वाक्य हैं, जिनमें ओंकार ब्रह्म का वर्णन है। माण्डूक्योपनिषद् की प्रसिद्धि आचार्य गौड़पाद की 'माण्डूक्यकारिका' के कारण है, उन्होंने, 'माण्डूक्यकारिका' में विस्तार से जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ, शिव इत्यादि का विस्तार से प्रतिपादन किया। इसी ज्ञानगरिमा के कारण यह उपनिषद् प्रसिद्ध हुआ।

उपनिषदों का ज्ञान

आत्मा—ऐतरेयोपनिषद् में सृष्टि का मूल आत्मा (परमात्मा) प्रतिपादित किया है—'आत्मा वा इदयेक एवाग्र आसीन्न न्यत्किंचनमिषत्। स ईक्षत लोकान् सृजा इति ।।1।। स इमां लोकानसृजताम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौ: प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचय:। पृथिवीमरो या अधस्तात्ता आप: ।। 2 ।। 'पहिले एक मात्र आत्मा ही था, उससे भिन्न कुछ भी नहीं था। उसने देखा (सोचा) लोकों की सृष्टि करूं। उसने इन लोकों को रचा—मेघ, लोक, तेजोमय लोक (नक्षत्रादि), पृथिवीलोक, आप: द्युलोक, अन्तरिक्ष आदि को रचा।"

इस आत्मा का स्वरूप कठोपनिषद् में इस प्रकार कहा है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

"यह आत्मा न तो जन्म लेता है और न मरता है, यह विपश्चित (विद्वान्) है, यह न तो कहीं से हुआ है, यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, तथा शरीर के मारने पर मरता नहीं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी आत्मा के विषय में याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यकोपनिषद् में मैत्रेयी से कहा है 'आत्मा वारे श्रोतव्यो विजिज्ञासितव्यः' इस आत्मा को जानना चाहिए और सुनना चाहिए तथा— 'स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा।" (बृ. उ. २।5।15), "यह आत्मा सब प्राणियों या पदार्थों का अधिपति सबका राजा है।"

ब्रह्म (ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या)—आत्मविज्ञान के स्थान ब्रह्मज्ञान का भी उपनिषदों में विस्तार से प्रतिपादन है। सभी उपनिषदों में ब्रह्म विद्या का विस्तार है। मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन करते हुए लिखा है—(मु.उ. 1।1।6)—

"यत्तद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।"

"वह (ब्रह्म) अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षुः कर्णादिविहीन है, वह अपाणिपाद, नित्य, विभु, सर्वगत, प्रतिसूक्ष्म तथा अव्यय (अविनाशी) है, जो सब भूतों का कारण है, उसको मनीषी सर्वत्र देखते हैं।" इसी तथ्य को बृहदारण्योपनिषद् में—'अस्थूलमनण्वमह्रस्वमदीर्घं' अस्थूल अनणु, अह्रस्व इत्यादि कहा है।"

मुण्डकोपनिषद् में यज्ञरूपी नाव की निन्दा करते हुए कहा है—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तयवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ (1।2।7)

"ये यज्ञ रूपी नाव अदृढ़ और अस्थिर हैं, ये अठारह (षोडश ऋत्विक, यजमान और यजमानपत्नी) यज्ञसाधन नाशवान् हैं, जो इनके सहारे भवसागर को पार होना चाहते हैं वे इनका अभिनन्दन करने वाले मूढ़ जरा और मृत्यु को ही प्राप्त होते हैं।" पुनः कहा है—(मु. उ. 1।2।11)

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥

"जो शान्त और विद्वान् वन में तप और श्रद्धा का सेवन करते हुए भिक्षावृत्ति का आचरण करते हुए रहते हैं वे निष्पाप सूर्यमार्ग (उत्तरायण) से उस लोक (ब्रह्मलोक) को जाते हैं जहाँ अमृत और अव्यय पुरुष रहता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओ३म्—उपनिषदों में ओंकार परमात्मा ब्रह्म का पर्याय है। छान्दोग्योऽपनिषद् में 'ओ३म्' की महिमा बताते हुए कहा है—'तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमिति। (1।1।8।1)………तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते ओमिति। 'यह ओ३म् ही अनुज्ञा अक्षर है।………इस अक्षर से ही त्रयी विद्या प्रवृत होती है।" पुनः लिखा है— 'एष प्रणव ओमिति' (छा. 1।5।1) 'यह ओम् ही प्रणव है।'

आत्मज्ञानी— आत्मज्ञानी कैसा हो जाता है, इसका वर्णन करते हुए छान्दोग्य (7।25।2) में लिखा है—'आत्मरतिरात्मक्रीड़ आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवत्ति" "आत्मज्ञ आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मानन्द और स्वराड् हो जाता है" "उस समय वह भूमा स्थिति को प्राप्त हो जाता है।" "यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ ···यो वै भूमा तदमृतम्।" "उस समय आत्मज्ञानी (आत्मा के अतिरिक्त) और कुछ न देखता है और न कुछ सुनता है, न कुछ जानता है, वही भूमा है।...भूमा अमृत है।"

वह अपनी स्वमहिमा में ही प्रतिष्ठित होता है अथवा स्वमहिमा में भी प्रतिष्ठित नहीं होता।"

आनन्द ब्रह्म—यह ब्रह्म पुरुष को रचकर उसमें ही प्रवेश कर गया—तसृष्ट्वा तदेवानु प्रविशत्' (तै. उ. 8।2)। वही ब्रह्म रस है, जिसको पाकर मनुष्य आनन्दी हो जाता है—'रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽन्दी भवति। (तै. उ. 8।2) अतः वह ब्रह्म ही आनन्द है—"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दे प्रत्यभिसविशन्ति।" "आनन्द ही ब्रह्म है। यह जाना। आनन्द से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं आनन्द से ही जीते हैं, आनन्द में ही प्रवेश कर जाते हैं।"

उपनिषदों में अन्य विषय

विद्यायें—उपनिषदों में त्रयीविद्या और अथर्वाङ्गिरसवेद के अतिरिक्त और बहुत सी विद्याओं का उल्लेख मिलता है। 'इतिहास पुराण' को पञ्चमवेद और वेदों का भी वेद बतलाया गया है—'इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः (छा.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ. 7।2।2)—इसी उपनिषद् में अन्य विद्याओं के नाम इस प्रकार हैं—'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास-पुराण पञ्चमं वेदानां वेदः पित्र्यं राशिं, दैवं निधिं वाक्योवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्र-विद्यां, नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम् ।" (छा. उ. 7।1।2)" "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पञ्चमवेद इतिहासपुराण, पित्र्य (श्राद्धकल्प), राशि (गणित), दैवविद्या (उत्पातविज्ञान), निधिशास्त्र (अर्थशास्त्र), वाक्योवाक्य-विद्या (दर्शनशास्त्र या तर्कविद्या), एकायन (भक्तिशास्त्र), देवविद्या, ब्रह्म-विद्या, भूतविद्या (भौतिकविज्ञान), क्षत्रविद्या (धनुर्वेद), नक्षत्रविद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या, देवजनविद्या (गान्धर्ववेद)-ये सब मैंने (नारदने) पढ़े हैं।"

बृहदारण्यकोपनिषद् में—इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनु-व्याख्यान और अनुव्याख्यान का उल्लेख है।

मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्मविद्या (1।1।1) के अतिरिक्त षड्वेदाङ्गों के नाम हैं—'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति ।" (मु. 1।1।5) । ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्मृति (धर्मशास्त्र), गाथा, आयुर्वेद और आख्यानादि बहुत से शास्त्रों का अस्तित्व ज्ञात होता है।

उपनिषद् प्राचीन भारतीय दर्शनशास्त्र के मूल हैं । इनमें सांख्य, योग, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, न्याय और तर्कशास्त्र की पर्याप्त सामग्री मिलती है। वेदान्त तो इन उपनिषदों की संज्ञा ही है। ब्रह्मसूत्रों या वेदान्तसूत्रों की रचना बादरायण ने इन्हीं उपनिषदों के आधार पर की। भारतीय दर्शनशास्त्र और भक्तिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ रत्न श्रीमद्भगवद्गीता इन उपनिषदों का सार कहा जाता है—वह उपनिषदों का अमृत है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

इसके अतिरिक्त उपनिषदों में इतिहास, भूगोल, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, कामशास्त्र, वंश-परम्परा, इत्यादि की सामग्री मिलती है । इनमें से कुछ का उदाहरण देते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद्, जैमिनीयोपनिषद् में विद्यावंशों की सूचियां हैं । छान्दोग्य, बृहदारण्यकादि में इन्द्र, नारद, श्वेतकेतु, याज्ञवल्क्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि के आख्यान-उपाख्यान हैं। कौषीतक्युपनिषद् के एक आख्यान में इन्द्र-प्रतर्दन संवाद हैं, जिससे अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्रकट होते हैं—इन्द्र अपना चरित्र प्रतर्दन को सुनाता है—'त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम्। अरुमुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्, बह्वीः संधा प्रतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालखञ्जान्।" (3।1) बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय 6, ब्राह्मण 3 में श्रीमन्थ और पुत्रमन्थ कर्म वर्णित हैं यह आयुर्वेद और कामशास्त्र का विषय है।

तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली में समाप्तविद्य स्नातक के लिए जो दीक्षान्त धर्म और नीति का उपदेश दिया है, वह प्रत्येक शिक्षित भारतीय के लिए आदर्श शिक्षा है—'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सीः।" "आचार्य शिष्य को" वेदाध्ययन के पश्चात् उपदेश देता है—सत्य बोलो, धर्माचरण करो। स्वाध्याय में आलस्य मत करो। आचार्य को दक्षिणा में प्रिय धन देकर (विवाह करके) प्रजातन्तु का विच्छेद मत करो।" इत्यादि।

ईशावास्योपनिषद् (आत्मज्ञान)—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥1॥

'जो कुछ भी वस्तु या पदार्थ इस जगती पर है, वह सब ईश्वर का है, उसके दिए हुए को छोड़कर अन्य को मत भोगो और न दूसरे के धन का लालच करो।" कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करो, यही जीवन श्रेष्ठ मार्ग है, ऐसा करता हुआ मनुष्य कर्म (या पाप) से लिप्त नहीं होता।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥3॥

जो आत्मघाती जन हैं, वे मरकर के असुर्य नाम के लोकों को जाते हैं, वे लोक सर्वदा अन्धकार से घिरे रहते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥4॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह आत्मा अविचलित, मन से भी तीव्रगामी, इसको देवों ने भी नहीं प्राप्त किया (जाना), यह दौड़ता हुआ और से आगे जाता है, इसमें वायु प्राण-धान करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥5॥

यह चलता है और नहीं भी चलता, यह दूर है और पास भी है, वह सबके अन्तःकरण में है और सब उसके बाहर हैं।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥6॥

जो पुरुष समस्त पदार्थों को आत्मा में देखता है और सर्वभूतों में आत्मा देखता है तो वह विचिकित्सा (तर्कवितर्क) नहीं करता।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥7॥

जो सर्वप्राणियों और पदार्थों में एकात्म्य देखता है, उस विद्वान् को क्या मोह, क्या शोक हो सकता है अर्थात् वह शान्त रहता है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥8॥

यह आत्मा शुक्र रूप में जाता है, यह अशरीर अव्रण, अस्नायु, शुद्ध निष्कल्मष है। यही कवि, मनीषी, परिभू, स्वयम्भु है जो समस्त पदार्थों को यथातथ्य सनातनरूप से विधान करता है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः।

जो असम्भूति की उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं, और जो सम्भूति में रत हैं वे उनसे भी अधिक अन्धकार को प्राप्त करते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥10॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह आत्मा सम्भव और असम्भव से परे है, ऐसा बुद्धिमानों से हमने सुना है, जिनको आत्मा का ज्ञान था।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युंतीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ।।11।।

जो सम्भूति और विनाश को जानता है, वह विनाश से मृत्यु को तर जाता है और सम्भूति से अमृत को प्राप्त करता है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।12।।

जो अविद्या की उपासना करते हैं वे अन्धतम को प्राप्त करते हैं उनसे भी अधिक विद्यारत अन्धकार को जाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।13।।

यह आत्मज्ञान विद्या और अविद्या से पृथक् है ऐसा आत्मज्ञानी पुरुषों से हमने सुना है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।14।।

जो विद्या और अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करता है और विद्या से अमृत को प्राप्त करता है।

वायुरनिलममृतम थेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओम् क्रतो स्मर क्लिवे स्मर कृतं स्मर ।।15।।

यह शरीर वायु और अग्नि से निर्मित अमर है और शरीर भस्म होने पर समाप्त हो जाता है, ओम क्रतु का क्लिवे और कृत का स्मरण करो।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्यज्जुराणामेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेय ।।16।।

हे अग्ने ! हमको तुम श्रेष्ठ धर्म मार्ग की ओर ले चलो, हे देव आप सब विज्ञानों को जानते हैं, हमसे पाप को दूर करो, हम तुमको अधिकाधिक नमस्कार करते हैं।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ।।17।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से आवृत है, जो सूर्य में पुरुष है, वही मैं हूं। ओ३म् आकाश ही ब्रह्म (या ब्रह्माण्ड) है।

दशम अध्याय

वेदाङ्ग साहित्य और परिशिष्ट

प्राचीनता—पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है कि—'ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽनिष्कारणोऽध्येयो ज्ञेयश्च"। ब्राह्मण (विद्वान्) को निष्कारण या निःस्वार्थ भाव से षडङ्ग वेद का अध्ययन करना चाहिए। वेदाङ्ग विद्या अति प्राचीन है। यास्क ने निरुक्त के प्रारंभ में लिखा है कि अति प्राचीनकाल में ऋषियों ने वेदों के साथ वेदाङ्गों का प्रणयन भी किया। महाभारत ग्रन्थ के मत में शिव और बृहस्पति वेदाङ्गों के आदि प्रवर्तक आचार्य थे—शिव के विषय में लिखा है—'वेदात्षडङ्गान्युदधृत्य (शा. 284।92)' 'वेद से षड् वेदाङ्गों को निकाला। पुनः बृहस्पति के विषय में कहा है—'वेदाङ्गनि बृहस्पतिः' (शा. 112।32)' 'वेदाङ्गों की रचना बृहस्पति ने की। बृहस्पति स्वयं कहते हैं—

अधीत्य च व्याकरणं सकल्पम्।
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि।" (शा. 19।18)

"मैं सम्पूर्ण व्याकरण, कल्पशास्त्र और शिक्षा का अध्ययन करने के पश्चात् भी भूतप्रकृति (मोक्ष शास्त्र) को नहीं जानता हूँ।" तैत्तिरीयब्राह्मण में कल्प तन्त्रों का उल्लेख है—'कल्पतन्त्राणि तन्वानाहः संस्थाश्च सर्वशः।"
(तै. ब्रा. 3।12।9)

मुण्डकोपनिषद् के प्रारम्भ में महर्षि आङ्गिरस आचार्य शौनक (मुण्डक) को छः वेदाङ्गों का परिगणन करते हैं—'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।" शाकलप्रातिशाख्य के 14वें अध्याय के अन्त में यह श्लोक मिलता है—

शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां च यः।
ज्योतिषमयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाणिनिशिक्षा में वेदाङ्गों का इस प्रकार वर्णन है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

"छन्द वेद के पैर हैं, हाथ कल्प हैं, नेत्र ज्योतिषज्ञान हैं। निरुक्त-शास्त्र कर्ण हैं, शिक्षा नाक है और मुख व्याकरण शास्त्र है, अतः साङ्गवेद का अध्ययन करने से पुरुष ब्रह्मलोक में पूजित होता है।"

पाश्चात्य विद्वान् वेदाङ्गों की रचना 1500 ई. पू. से 500 ई. पू. तक मानते हैं। उनके सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं, जो किसी प्रमाण पर आश्रित न होकर उनकी अपनी सुविधा या इच्छा पर निर्भर हैं। विभिन्न वेदाङ्ग ग्रन्थों का कालनिर्देश तद् तद् ग्रंथ के प्रसङ्ग में ही विशेषतः किया जाएगा।

शिक्षा

वास्तव में यह वर्णमाला या लिपिशास्त्र या उच्चारण शास्त्र है जो वर्णों और स्वरों के उच्चारण आदि का विधान करता है। मूलतः यह व्याकरण का ही विषय है, इसी विषय का विस्तार प्रातिशाख्यों में भी मिलता है।

वेद मन्त्रों के श्रवण, उच्चारण और गान का बड़ा महत्व था। इसीलिए इनका 'श्रुति' नाम अति प्रसिद्ध था। मन्त्रों में स्वर और वर्ण के शुद्ध उच्चारण का महत्व प्रसिद्ध है, इस सम्बन्ध में यह श्लोक विद्वानों में अति प्रचलित है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्ण तो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

'स्वर या वर्ण से हीन मन्त्र मिथ्या अर्थ को कहता है, वह वाक्रूपी वज्र यजमान को मार देता है जैसे कि 'इन्द्रशत्रु' के स्वर अशुद्ध उच्चारण से वृत्रासुर का वध हुआ।" यह इन्द्रशत्रु-आख्यान तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलता है। वेदों में स्वराङ्कन का बड़ा महत्व है। तीन स्वर प्रसिद्ध हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा का प्राचीनतम उल्लेख और वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली में मिलता है। वहाँ पर (तै० उ० 1।2) में शिक्षा के छः उपाङ्ग बताए हैं—वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान। शिक्षा ग्रन्थों में इन विषयों का विस्तार से वर्णन है।

बाभ्रव्य-पाञ्चाल—शिक्षा का प्राचीनतम प्रणेता बाभ्रव्य पाञ्चाल माना जाता है जो योगी जैगीषव्य का शिष्य था। इसी ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का क्रम-पाठ बनाया। इसी को गालव पाञ्चाल भी कहते थे। इस आचार्य का उल्लेख ऋक्प्रातिशाख्य, निरुक्त, बृहद्देवता और अष्टाध्यायी तथा महाभारत एवं पुराणों में मिलता है। मत्स्यपुराण (21।30) में बाभ्रव्य को सुबालक और पाञ्चालराज ब्रह्मदत्त का मन्त्री बताया है। यह राजा ब्रह्मदत्त शन्तनु के पिता प्रतीप का समकालीन था, जो व्यास से भी पहिले हुआ, इससे बाभ्रव्य पाञ्चाल का समय समझा जा सकता है।

बाभ्रव्य पाञ्चाल रचित शिक्षा ग्रन्थ इस समय अनुपलब्ध है, केवल उसके मत पूर्वोक्त प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं।

इस समय सूत्रबद्ध और श्लोकबद्ध अनेक शिक्षा ग्रन्थ मिलते हैं, प्रतीत होता है मूल शिक्षा ग्रन्थ सूत्रों में ही रचे गये थे। उन्हीं मूल सूत्रबद्ध शिक्षा ग्रन्थों को उन आचार्यों की परम्परा में पद्यबद्ध किया गया। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् युधिष्ठिर मीमाँसक ने 'शिक्षासूत्राणि' नाम से आपिशील, पाणिनि और चन्द्रगोमि के शिक्षासूत्रों को प्रकाशित किया है। इनके कुछ अंशों को उद्धृत करने से इनकी समानता और भेद ज्ञात होगा—

	आपिशीलि	पाणिनि	चन्द्रगोमि
(1)	आकाशवायु प्रभवः	आकाश वायुप्रभवः	×
	शरीरात् समुच्चरन्	शरीरात् समुच्चरन्	×
	वक्त्रमुपैति नादः	वक्त्रमुपैति नादः	×
	स्थानान्तरेषु प्रवि-	स्थानान्तरेषु प्रविभज्य-	×
	भज्यमानो वर्णत्वमा-	मानो वर्णत्वमागच्छति	×
	गच्छति यः स शब्दः	यः स शब्दः	×
(2)	तत्र स्थानकरणप्रयत्ने-	स्थान करणप्रयत्नपरेभ्यो	कण्ठोऽकुहविसर्ज-
	भ्यो वर्णास्त्रिषष्टिः।	वर्णास्त्रिषष्टिः।	नीयानाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	आपिशलि	पाणिनि	चन्द्रगोमि
(3)	अकुहविसर्जनीयानां- कण्ठस्यः	चतुष्ष्टिरित्येके।	मूर्धा ऋटुरषाणाम्
(4)	ऋटुरषा मूर्धन्याः	ऋटुरषा मूर्धन्याः।	

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार "इस समय शिक्षा सम्बन्धी जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनकी संख्या 100 से ऊपर है। इनमें से लगभग 40 ग्रन्थ छप चुके हैं। शेष अभी तक हस्तलिखित रूप में ही प्राचीन संग्रहालयों में सुरक्षित पड़े हैं।" (शि. सू. पृ. 2)

'शिक्षा-संग्रह' नामक वाराणसी से प्रकाशित ग्रन्थ में 32 शिक्षा ग्रन्थों का संग्रह है। इनमें से अधिकांश ग्रन्थ प्राचीन प्रतीत नहीं होते।

आचार्य आपिशलि और शिक्षा—आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी (6।1।92) में आचार्य आपिशलि का उल्लेख किया है, अतः आचार्य आपिशलि पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण थे। दोनों के व्याकरण आठ आठ अध्यायों के निर्मित हुये। पाणिनि पर आपिशलि का पूर्ण प्रभाव था। दोनों के शिक्षासूत्र भी प्रायेण समान हैं। इस समय आपिशलि शिक्षा ही उपलब्ध शिक्षासूत्र है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरण का इतिहास' में आचार्य आपिशलि का समय 3000 वि० पू० माना है। पाश्चात्य लेखक पाणिनि का समय 500 ई० पू० मानते हैं, इस पद्धति से आपिशलि का समय अधिक से अधिक 700 ई०. पू० ही हो सकता है। परन्तु यह मान्यता केवल कल्पना और अनुमान पर आधारित है।

आपिशलि शिक्षासूत्र सर्वप्रथम डा. रघुवीर ने सं० 1992 में प्रकाशित किये थे। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने पुनः इनको पाणिनि और चन्द्रगोमि के सूत्रों के साथ प्रकाशित किया।

आपिशलि शिक्षा के आठ प्रकरणों में कुल 107 सूत्र हैं, इनके कुछ उद्धरण पूर्व लिखे जा चुके हैं। पाणिनि शिक्षासूत्र में भी इतने ही सूत्र हैं, चन्द्रगोमि शिक्षा में केवल 51 सूत्र हैं।

अन्य शिक्षा ग्रन्थ—अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, पाणिनीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा; माण्डूकीय शिक्षा। इनमें पाणिनीय शिक्षा में 60 श्लोक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारदीय शिक्षा में 151 श्लोक, याज्ञवल्क्यशिक्षा में 232 श्लोक और माण्डूकीय शिक्षा में 179 श्लोक हैं। इनमें याज्ञवल्क्य शिक्षा का सम्बन्ध यजुर्वेद से, नारदीय शिक्षा का सामवेद से और माण्डूकीय शिक्षा का अथर्ववेद से सम्बन्ध है। पाणिनीय शिक्षा सर्वसाधारण है। पहिले कहा जा चुका है कि ये साम्प्रदायिक ग्रन्थ उत्तरकाल में प्राचीन आचार्यों के नाम पर रचे गये।

प्रातिशाख्य—'प्रातिशाख्य' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि वेद की प्रत्येक शाखा का एक प्रातिशाख्य ग्रन्थ होना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक शाखा का मन्त्रपाठ भिन्न था और स्थानभेद से ही काठक, मौदक, पैप्पलाद आदि शाखायें थीं, अतः प्रत्येक स्थान का कुछ भाषाभेद (स्वरादि भेद) होता है, अतः प्रातिशाख्यों की संख्या 1131 होनी चाहिए—लेकिन इस समय केवल पांच प्रातिशाख्य ग्रन्थ ही मिलते हैं। शौनक प्रणीत ऋक्प्रातिशाख्य, कात्यायन रचित शुक्लयजुःप्रातिशाख्य (या वाजसनेयिप्रातिशाख्य), तित्तिरिप्रोक्त तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, पुष्पमुनिप्रणीत सामप्रातिशाख्य और शौनक (मुण्डक) रचित अथर्वप्रातिशाख्य।

इन प्रातिशाख्यों में वेद का साङ्गोपाङ्ग व्याकरण नहीं है, इनमें केवल वर्णविचार, पद सम्बन्धी नियम यथा प्रगृह्य, अवग्रहादिसंज्ञायें, संहिता (संधियां), उदात्तादि स्वरप्रक्रिया, पदपाठादि हर विचार और उदाहरण दिये हैं।

ऋक्प्रातिशाख्य—महाभारत और पुराणों में दीर्घसत्रकर्त्ता शौनक का उल्लेख है, शौनक एक प्राचीन भार्गववंश का नाम था। महाभारत युद्ध के पश्चात् अधिसीमकृष्ण पाण्डव (2800 वि. पू.) के राज्यकाल में शौनक (सम्भवतः 'दीर्घ मुण्डक' मूलनाम था)। बह्वृच, कुलपति ने ऐतरेयारण्यक के कुछ भाग रचे। इन्होंने ऋग्वेद सम्बन्धी दश परिशिष्ट ग्रन्थों की रचना की, इन ग्रन्थों का परिचय आगे लिखा जाएगा। महर्षि शौनक के शिष्य प्रसिद्ध ऋषि आश्वलायन थे, जिनका परिचय गृह्यसूत्र प्रकरण में लिखा जा चुका है। इन्हीं शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य की रचना की। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में ऋक्प्रातिशाख्य और सामप्रातिशाख्य की सामग्री का मूल मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋक्प्रातिशाख्य में 3 अध्याय हैं जो 18 पटलों में विभक्त हैं। 1 से 14 पटल तक वर्णसमाम्नायादि है, शेष 15 से 18 पटलों में छन्दोविचिति (छन्दःशास्त्र) है। दैवतब्राह्मण के पश्चात् छन्दशास्त्र का यही पर प्राचीनतम विवेचन मिलता है। ऋक्प्रातिशाख्य पर आचार्य विष्णुमित्र की वृत्ति प्रसिद्ध है। इसी आचार्य विष्णुमित्र ने लिखा है—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः।
दीक्षासुचोदितः प्राहसत्रे तु द्वादशाहिके ॥

"गृहपति शौनक ने नैमिषीय दीक्षित ऋषियों की प्रेरणा से द्वादशासत्र में ऋक्प्रातिशाख्य का प्रवचन किया।" इस शौनक के सत्र के विषय में वायुपुराण में लिखा है—

"अधिसीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रं तु ईजिरे॥" (वा. पु. 1।13।15)।

"अनुपम तेजस्वी विक्रान्त अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल में धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में (शौनकादि) ऋषियों ने दीर्घसत्र का यजन किया।"

वाजसनेयिप्रातिशाख्य—इसी का नाम शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य है, नाम से स्पष्ट है कि यह शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयिशाखा का प्रातिशाख्य है। इसकी रचना कात्यायन ने की थी, जो शौनक के शिष्य और आश्वलायन के सहपाठी थे। कात्यायन का विशेष परिचय कल्पसूत्र प्रकरण में लिखा जायेगा। इन्हीं कात्यायन ने श्रौतसूत्र ग्रन्थ रचा। कात्यायन के प्रातिशाख्य और पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रों में समानता है। इस प्रातिशाख्य में आठ अध्याय हैं, जिनमें ग्रन्थ प्रातिशाख्यों के समान वर्णादि पर विचार हैं। इस प्रातिशाख्य के दो परिशिष्ट ग्रन्थ और प्रसिद्ध हैं—भाषिकसूत्र और प्रतिज्ञासूत्र, ये भी कात्यायन की रचनायें मानी जाती हैं। इसकी त्रिभाष्यरत्न० टीका का उल्लेख मैक्समूलर ने किया है। (द्र. ए. हिस्ट्री आफ ए० सं० लिट० पृ० 121)।

तैत्तिरीयप्रातिशाख्य—इसकी रचना वैशम्पायनशिष्य तित्तिरि अथवा उसके किसी शिष्य ने की। इस ग्रन्थ में दो प्रश्न और द्वादश अध्याय हैं।

सामप्रातिशाख्य—इसके प्रणेता का नाम पुष्प या फुल्ल मुनि था। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए इस ग्रन्थ को फुल्लसूत्र या पुष्पसूत्र भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में 10 प्रपाठक हैं। सामतन्त्र और ऋक्तन्त्र नाम के दो व्याकरण ग्रन्थों का सम्बन्ध क्रमश: सामवेद और ऋग्वेद से है, इनमें ऋक्तन्त्र की रचना शाकटायन ने की थी, जो पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरण थे, इनका उल्लेख यास्क ने निरुक्त में किया है। सामतन्त्र का मूल संहितोपनिषद् ब्राह्मण माना जाता है।

अथर्व-प्रातिशाख्य—इसका दूसरा नाम 'शौनकीय चतुरध्यायी' है। नाम से स्पष्ट है कि इसके रचयिता आचार्य शौनक या कोई शौनक गोत्रीय ऋषि होना चाहिए, यह हम मुण्डकोपनिषद् के प्रसङ्ग में बता चुके हैं कि यह शौनक का वंशज मुण्डक या इसका कोई वंशज या शिष्य होगा। नाम से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। यह सम्भव है कि उस शौनक का नाम 'कौत्स' हो, क्योंकि इस ग्रन्थ को इसी में 'कौत्स व्याकरण' भी कहा गया है। प्राचीनकाल में कौत्स नाम के अनेक आचार्य हुये हैं। नाम साम्य से इतिहास में बहुत भ्रम उत्पन्न होते हैं।

प्रातिशाख्यों, निरुक्त और अष्टाध्यायी में कम से कम 64 शाब्दिक आचार्यों या वैयाकरणों के नाम मिलते हैं—(1) आग्निवेश्य (2) आग्निवेश्यायन (3) आग्रायण (4) आत्रेय (5) अन्यात्रेय (6) आपिशिलि (7) आह्वरक (8) उख्य (9) उत्तमोत्तरीय (10) उदीच्य (11) औदुम्बरायण (12) औपमन्यव (13) औपशिवि (14) और्णनाभ (15) कान्दमायन (16) काण्व (17) काथक्य (18) काश्यप (19) कौण्डिन्य (20) कौत्स (21) कोहलीपुत्र (22) क्रौष्टुकि (23) गार्ग्य (24) गालव (25) गौतम (26) चर्मशिरा (27) चाक्रवर्मण (28) जातूकर्ण्य (29) तैटिकि (30) तैत्तिरीयक (31) दाल्भ्य (32) पाञ्चाल (33) पौष्करसादि (34) प्राच्य (35) प्लाक्षि (36) प्लाक्षायण (37) बाभ्रव्य (38) भारद्वाज (39) माण्डूकेय (शौनक), (40) माशकीय (41) मीमांसक (42) यास्क (43) वाटभिकार (44) वात्सप्र (45) वात्स्य (46) वार्ष्यायणि (47) वाल्मीकि (48) वेदमित्र (शाकल्य) (49) व्याडि (50) शतबलाक्ष मौद्गल्य (51) शाकटायन (52) शाकपूणि (53) शाकल्य (54) शाकलाः (55) शाकल (56) शाकल्यपितृस्थविर (57) शांखायन (58) सैत्यायन (59) शौनक (60) सांकृत्य (61) सेनक (62) स्थूलष्ठैवि (63) स्फोटायन (64) हरित। (द्र. ए. हि. एं. सं. लिट. पृ. 126-127) मैक्समूलर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पसूत्र

कल्पसूत्रों को वेद का हाथ कहा गया है, जिस प्रकार विना हाथ के मनुष्य का कोई भी कार्य सम्यक् रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता, उसी प्रकार विना कल्प के कर्मकाण्ड, संस्कार या यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता। प्रसिद्ध मीमांसक दार्शनिक आचार्य प्रवर कुमारिल भट्ट ने इसलिए कहा है—

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्रब्राह्मणामात्रकम् ॥

"वेद के विना भी याज्ञिक कल्प की सहायता से यज्ञकर्मों को करते हैं, लेकिन कल्पों के बिना केवल मन्त्रों और ब्राह्मणों के द्वारा कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

आपस्तम्बादि कल्पसूत्रकारों की विद्वत्समाज में महती प्रतिष्ठा थी, वे भी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के समान पूजित थे—

न तावदनृषि कश्चित् स्मर्यते कल्पसूत्रकृत्।
कर्तृत्वं यदृषीणाम् तु तत्सर्वं मन्त्रकृत्समम् ॥

"कोई भी अनृषि कल्पसूत्रकार नहीं हो सकता, कल्पसूत्रों की रचना भी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के समान ही प्रामाणिक है।"

'पुराकल्प' नाम के शास्त्र प्राचीन-काल में थे, इसका संकेत हम ब्राह्मण प्रकरण में कर आये हैं। 'कल्प' का अर्थ है 'विधान'। इन कल्पसूत्रों में यज्ञिय-विधान सङ्कलित किये गये हैं। प्रत्येक शाखा या चरण का प्रायः स्वतन्त्र कल्प-सूत्र था, लेकिन इस समय केवल पन्द्रह या सोलह कल्पसूत्र मिलते हैं। कल्प-सूत्र के अनेक विभाग थे—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्वसूत्र, कुछ कल्पसूत्रों गृह्यमन्त्रसंग्रह, स्मृतिसूत्र, पितृमेधसूत्र इत्यादि का संग्रह भी मिलता है, श्रौत-सूत्रों का मुख्य विषय श्रौत यज्ञ हैं, इनके प्रारम्भ में परिभाषा सूत्र, न्याय, प्रवर और हौत्रकल्प जैसे अनेक विभाग मिलते हैं। गृह्यसूत्रों में गार्हस्थ्य धर्म से सम्बन्धित षोडश संस्कार और पञ्चमहायज्ञों का विधान होता है। धर्म-सूत्रों में धर्मशास्त्र या स्मृति के विषय वर्णित हैं। इनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, विषय तथा आचार-व्यवहार कथित हैं। शुल्वसूत्रों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यज्ञवेदियों की माप, निर्माणादि के विधान हैं, प्रसंगत गणित और ज्यामिति (रेखागणित) के विषय इन सूत्रों में समाविष्ट हैं। पितृमेधसूत्रों में और्ध्वदैहिक संस्कारों का विधान है।

सूत्रकारों का समय—इस समय उपलब्ध कल्पसूत्रों का समय पाणिनि से पूर्व प्रायः सभी पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् स्वीकार करते हैं, इन विद्वानों की दृष्टि में पाणिनि ही कल्पसूत्रों के कालनिर्धारण में स्तम्भ तुल्य हैं। परन्तु हमारे मत में कल्पसूत्रों के कालनिर्धारण में व्यास, शौनक और पाणिनि—ये तीन स्तम्भ स्वीकृत योग्य हैं। क्योंकि उपलब्ध सूत्रग्रन्थ पाणिनि से पूर्वकालिक और व्यास के उत्तरकालिक हैं। स्वयं पाणिनि ने पुराणप्रोक्त और अचिरकालप्रोक्त—इन दो प्रकार के सूत्रगन्थों का संकेत किया है—'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु (अष्टा० 4।3।105), काशिका में जयादित्य ने पुराणप्रोक्त कल्प का उदाहरण दिया है—पैंगीकल्प, आरुणपराजी (आरुण पाराशर।), बृहद्देवता (1।24) में पैंगीमधुक को पुराणकवि कहा है—

उच्यन्ते नवम्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये।
मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते ।।

अतः मधुकादि के सूत्रग्रन्थ पाणिनिकाल में पुराणाप्रोक्त माने जाते थे। पाश्चत्य लेखक प्रायः पाराशर्य व्यास के अस्तित्व को ही नहीं मानते, अतः उनके कालनिर्धारण का प्रश्न ही कहां उठता है। डा० रामगोपाल जैसे भारतीय लेखक पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करते हुये लिखते हैं कि वर्तमान स्थिति में कल्पसूत्रों की तिथियां निश्चित करना असम्भव है हम केवल उनकी उपरिसीमा और निम्न सीमा का अनुमान मात्र ही कर सकते हैं। (द्र० India of Vedic Kalpsutras p. 75).

महाभारत ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य के प्रमाण से पण्डितप्रवर भगवद्दत्त ने पाराशर्य व्यास का प्रवचनकाल 150 कलि संवत् पूर्व अर्थात् 5194 वि. पू. माना है। आश्वलायनादि ने व्यासशिष्यों—सुमन्तु पैल, जैमिनि और वैशम्पायन कोसूत्राचार्य कहा है। इनमें सुमन्तु कृत धर्मसूत्र और जैमिनिकृत श्रौतसूत्र के कुछ अंश प्रकाशित भी हो गये हैं, अतः व्यास शिष्यों ने कल्पसूत्रों की रचना की थी यह कल्पसूत्र रचना काल की उपरिसीमा है। अब पाणिनि का समय-निर्देश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। पाणिनि का समय अधिकांश पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् 500 ई. पू. (नन्दकाल) में मानते हैं। मञ्जुश्री मूलकल्प ग्रन्थ में लिखा है—

तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः। (पृ. 427)

इस श्लोक में पाणिनि नाम का माणव (ब्रह्मचारी) नन्द का सखा बताया है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल यवन, मस्करी, श्रमण, निर्माण, आदि पद जो अष्टाध्यायी और बौद्ध ग्रन्थों में समान रूप से मिलते हैं, इसके आधार पर इस मत की पुष्टि करते हैं, परन्तु श्रमणादि पद शतपथब्राह्मण, रामायण और महाभारतादि में भी मिलते हैं, अतः इन शब्दों के उल्लेखमात्र से पाणिनि का काल-निर्धारण नहीं किया जा सकता। पाणिनि का समय शौनक के समय से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, अतः कुलपति शौनक का समय निश्चित होने पर पाणिनि का समय स्वयं ही निश्चित हो जाएगा।

बृहद्देवता, अष्टाध्यायी, निरुक्त, छन्दोविचिति (पिङ्गलकृत) और पुराणादि में शौनक, पिङ्गल, पाणिनि, यास्क, कौत्स, व्याडि कात्यायनादि आचार्य प्रायः समकालीन बताये गए हैं, यदि इनमें से किसी एक आचार्य का समय निश्चित हो जाय तो अन्य आचार्यों का काल स्वतः ज्ञात हो जाएगा। कुलपति शौनक का दीर्घसत्र में पाण्डववंशीय अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल में हुआ था—

अधिसीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपत्विषि।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रं तु ईजिरे॥ (वायु. पु. 1।13।15)

इसी दीर्घ सत्र में आचार्य शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य की रचना की थी, विष्णुमित्र आचार्य भाष्यकार ने लिखा है—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः।
दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके॥

अतः शौनक, पिङ्गल, पाणिनि, इत्यादि आचार्य पाण्डव अधिसीम कृष्ण के काल में हुए। पैप्पलाद (अथर्वशाखाप्रवर्तक) और कौशिक (सूत्राकार) अधिसीमकृष्ण के मन्त्री थे। इस तथ्य से भी सूत्रकाल और शौनक पाणिनि, पिप्पलाद, कौशिकादि की समकालीनता सिद्ध होती है।

अधिसीम कृष्ण का समय कलि संवत् 300 अर्थात् 2800 वि. पू. के आस-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पास था, अतः शौनक, पिङ्गल, पाणिनि, कौशिक, पिप्पलाद, यास्कादि भी उसी समय एक दो शताब्दी के अन्तर से हुए।

सूत्रकारों का ऐतिहासिक क्रम—वैदिक साहित्य के लेखकों ने कल्पसूत्रकारों का क्रम अनेक प्रकार से निश्चित किया है। पाश्चात्य लेखक प्रायः बौधायन को प्राचीनतम कल्पसूत्रकार मानते हैं। परन्तु पं० भगवद्दत्त ने बौधायन को अर्वाचीनतम सूत्राकार सिद्ध किया है। श्रीपाण्डुरङ्ग वामन काणे ने धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग (पृ. 8) पर सूत्रकारों का यह क्रम निश्चित किया है:

बौधायन
|
गौतम
|
आपस्तम्ब
|
हिरण्यकेशी
|
आश्वलायन
|
कात्यायन, इत्यादि।

हालैण्ड देश निवासी वैदिक विद्वान् कालैण्ड ने (वैखानस श्रौतसूत्र की भूमिका, पृ. 94 में) सूत्रकारों का यह क्रम प्रदर्शित किया है—

बौधायन
|
वाजसनेय
|
आपस्तम्ब
|
भारद्वाज
|
हिरण्यकेशी
|
वैखानस, इति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने भी बौधायन को पाणिनि के अर्वाक्कालिक बताया है, क्योंकि बौधायन ने अपने प्रवराध्याय में पाणिनि गोत्र का उल्लेख किया है, अतः बौधायन पाणिनि से उत्तरकालिक था। बौधायन ने महाभारत से ययाति सम्बन्धी गाथायें भी उद्धृत की हैं। धर्मसूत्र में बौधायन ने आपस्तम्बादि का स्मरण किया है, अतः बौधायन अर्वाचीनतम सूत्रा कार था, सूत्रकारों का यह क्रम इतिहास सम्मत और प्रामाणिक है—

कृष्णद्वैपायन व्यास।
|
सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल।
|
याज्ञवल्क्य वाजसनेय, शाकपूणि, औपमन्यव आदि।
|
शाकटायन आदि
|
शाम्बव्य, यास्कादि।
|
शौनक, कौशिक, पिप्पलाद आदि।
|
आश्वलायन, गौतम, धनञ्जय आदि।
|
गोभिल, मशकादि, वराहादि।
|
आपस्तम्ब, सत्यषाढ़, (हिरण्यकेशी) मानवादि।
|
कात्यायन, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडि।
|
बौधायन

ऐसे बहुत कल्प सूत्राकार हुए हैं, जिनके ग्रंथ इस समय अनुपलब्ध हैं, परन्तु जिनके उद्धरण यत्र-तत्र टीकाओं और भाष्यों में मिलते हैं। ये सूत्राकार थे— पैल, ऐतरेय, पाराशर, शाम्बव्य, यास्क, जातुकर्ण्य, पैङ्गम् (मधुक), शौनक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसुरि, वैशम्पायन, कठ, कलाप, काश्यप, आरुणपराजी, आश्मरथ्य, आलेखन, धनञ्जय, शाण्डिल्य, गौतम, भाल्लवि।

श्रौतसूत्र—कल्प सूत्रों का प्रधान और विशालतम भाग श्रौत सूत्र होता है, इनमें श्रौतयज्ञों—दर्शपूर्णमास, अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, अग्रायण, चातुर्मास्य (वैश्वदेव, वरुणप्रघास, शुनासीरीय, आदि) निरूढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, पितृमेध, एकाह, अहीन, सूत्र, दीर्घसत्रादि अनेकविध यज्ञों के विधान सविस्तार वर्णित हुए हैं, इनका वैशिष्ट्य प्रतिसूत्र के साथ बतायेंगे।

इस समय जितने श्रौतसूत्र उपलब्ध या प्रकाशित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

ऋग्वेद के दो श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं :

(1) आश्वलायन श्रौतसूत्र (2) शांखायन श्रौतसूत्र

शुक्लयजुर्वेद का एक मात्र कात्यायन श्रौतसूत्र उपलब्ध है, इसको कातीय श्रौतसूत्र भी कहते हैं, इसके गृह्यसूत्र, धर्मसूत्रादि नहीं मिलते। पारस्कर गृह्यसूत्र को इसके साथ समबद्ध करते हैं। कात्यायन के परिशिष्टों में शुल्वसूत्रादि सम्मिलित हैं, जिनका विवरण आगे लिखा जाएगा।

कृष्णयजुर्वेद की शाखाओं के निम्न आठ श्रौतसूत्र प्राप्य हैं—

1. भारद्वाज श्रौतसूत्र
2. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र
3. वाराह श्रौतसूत्र
4. सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र
5. मानव श्रौतसूत्र
6. बौधायन श्रौतसूत्र
7. वाधूल श्रौतसूत्र
8. वैखानस श्रौतसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामवेद के चार श्रौतसूत्र प्रकाशित हुए हैं :

1. जैमिनीय श्रौत्रसूत्र (वृत्ति)
2. लाट्यायन श्रौतसूत्र
3. माशक श्रौतसूत्र
4. द्राह्यायण श्रौतसूत्र

अथर्ववेद का एकमात्र 'वैतानसूत्र' नाम का श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं।

आगे श्रौतसूत्रों का संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

आश्वलायन श्रौतसूत्रम्—शौनक का प्रसिद्ध शिष्य था आश्वलायन। कुलपति शौनक ने एक बड़ा विशाल कल्पसूत्र रचा था, जो अनेक विशाल खण्डों में विभक्त था, और ब्राह्मग-ग्रन्थ के समान विपुलकाय था, आचार्य शौनक ने अपने शिष्य आश्वलायन की प्रीति के लिए अपने कल्पसूत्र को नष्ट कर दिया—

शौनकस्य तु शिष्योऽभूद्भगवानाश्वलायनः।
स तस्याच्युतसर्वज्ञः सूत्रं कृत्वा न्यवेदयत्।
प्रबोधपरिशुद्धयर्थं शौनकस्य प्रियं स्विति।
सहस्र खण्डं स्वकृतं सूत्रं ब्राह्मण सन्निभम्।
शिष्याश्वलायन प्रीत्यै शौनकेन विपाटितम ॥ (षड्गुरुशिष्य)

शौनक ने बृहद्देवता में अपने शिष्य आश्वलायन के मत उद्धृत किए हैं। आश्वलायन का श्रौतसूत्र द्वादशाध्यात्मक है :

द्वादशाध्यात्मकं सूत्रं चतुष्कं गृह्यमेव च।
चतुर्थारण्यकं चेति ह्याश्वलायन सूत्रकम् ॥

आश्वलायन श्रौतसूत्र के बारह अध्यायों का विषय विवरण इस प्रकार है। प्रथम अध्याय में—परिभाषा, दर्शपूर्णमास, द्वितीय अध्याय में—अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थान, पिण्डपितृयज्ञ, अन्वारम्भणीयेष्टि, अग्रायण, काम्येष्टि, दाक्षायणयज्ञ और चातुर्मास्य। तृतीय अध्याय में—निरूढ पशुबन्ध, सौत्रामणी और प्रायश्चित्त विधान। चतुर्थ और पञ्चम अध्यायों में—अग्निष्टोम, षष्ठाध्याय में उकथ्यषोडशी अतिरात्र और प्रायश्चित। सप्तम अध्याय में—षडहादि, अष्टम अध्याय में—सत्र, नवम में—राजसूय एकाह और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाजपेययज्ञ, दशम में—अहीन, द्वादशाह, अश्वमेध। एकादश में रात्रिसत्र और गवामयन। द्वादश अध्याय में—दीर्घसत्र और प्रवरविवरण।

आश्वलायन श्रौतसूत्र कात्यायन श्रौतसूत्र के समान अल्पाक्षरसूत्र युक्त है। कात्यायन भी शौनक का शिष्य और आश्वलायन का सहपाठी था।

शांखायन श्रौतसूत्र—शांखायन का परिचय शांखायन ब्राह्मण के प्रकरण में लिखा जा चुका है। शंख वंश या गोत्र में अनेक शांखायन हुए। श्रौतसूत्र रचना संभवतः गुणाख्य शांखायन ने की थी। शांखायन श्रौतसूत्र ब्राह्मण ग्रन्थ के समान विशाल और आख्यानयुक्त है, इसकी भाषा भी ब्राह्मण सदृश है। इस श्रौतसूत्र का मूल शांखायन ब्राह्मण है।

शांखायन श्रौतसूत्र में अठारह अध्याय हैं। यह एक विशाल ग्रंथ है, विषयों की द्विरुक्ति भी हुई है, उदाहरणार्थ दर्शपूर्णमास यज्ञ का वर्णन प्रथम अध्याय में भी है, पुनः चतुर्थ अध्याय में वह वर्णित है। विषय प्रायः अन्य श्रौतसूत्र के तुल्य ही हैं। महाव्रत का वर्णन बड़े विस्तार से सत्रहवें और अठारहवें अध्याय में है।

कात्यायन श्रौतसूत्र—कात्यायन ने केवल श्रौतसूत्र की रचना की, इनके अन्य धर्मसूत्रादि नहीं मिलते। कात्यायनों का मूल पुरुष कौशिक वंश में 'कत' नाम का ऋषि था। 'कत' नाम पाणिनि के गर्गादिगण (अष्टा. 4।1।105) में पठित है। कत के वंशज कात्य या कात्यायन कहलाये, स्पष्ट है कात्यायन भी एक गोत्र नाम था। कात्यायन के कात्य, वररुचि, पुनर्वसु आदि अनेक नाम कोशों में मिलत हैं। वैयाकरण वार्तिककार कात्यायन या वरुचि श्रौतसूत्रकार कात्यायन से पृथक् आचार्य था। श्रौतसूत्रकार कात्यायन शुक्लयजुः प्रातिशाख्य तथा अनेक परिशिष्ट ग्रन्थों का रचयिता था। यह शौनक का शिष्य और आश्वलायन का सतीर्थ्य था। स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय 130, श्लोक 7 के अनुसार कात्यायन याज्ञवल्क्य का पुत्र था। जिसने वेदसूत्र की रचना की—

कात्यायनं सुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम्।
कात्यायनभिधश्च यज्ञविद्याविचक्षणः।
पुत्रो वररुचिर्यस्य बभूव गुणसागरः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कात्यायन कौशिक पक्ष का था। उसने वाजसनेयों के आदित्यायन को छोड़कर आङ्गिरसायन स्वीकार कर लिया। कात्यायन ही शुक्लयजुर्वेद की कात्यायन शाखा का प्रवचनकर्त्ता था, इसी ने श्रौतसूत्र का प्रवचन किया। इसके विषय में षड्गुरुशिष्य ने सर्वानुक्रमणी की टीका में लिखा है—

शौनकस्य प्रसादेन कर्मज्ञः समपद्यत।
कात्यायनमुनिर्मेने त्रयोदशकमत्र तु॥
शौनकीयं च दशकं तच्छिष्यस्य त्रिकं तथा।
सशिष्य शौनकाचार्यत्रयो दशकविन्मुनिः॥
वाजिनां सूत्रकृत्साम्नामुपग्रंथस्य कारकः।
स्मृतेश्चकर्त्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः॥

इसी कात्यायन ने सामवेद के उपग्रन्थ, स्मृति और भ्राजसंज्ञक श्लोकों का प्रणायन किया था। इसके परिशिष्ट ग्रन्थों का उल्लेख परिशिष्ट प्रकरण में किया जाएगा।

कात्यायन श्रौतसूत्र में 26 अध्याय है, इसका मूल माध्यंदिन शतपथ-ब्राह्मण है। प्रथम अध्याय में परिभाषायें हैं, द्वितीय अध्याय से पौर्णमासेष्टि से प्रारम्भ करके 26वें अध्याय में प्रवर्ग्य विधान है। विषय प्रायः अन्य श्रौतों के तुल्य ही है। अतः उनकी आवृत्ति निरर्थक होगी।

कात्यायन की भाषा, सूत्र और शैली पाणिनि के तुल्य है, प्रतीत होता है दोनों आचार्य प्रायः समकालीन थे अथवा श्रौतसूत्राकार कात्यायन पाणिनि से कुछ काल पूर्व हुआ।

कृष्णयजुर्वेद के श्रौतसूत्र

भारद्वाज श्रौतसूत्र—यह सम्भवतः प्राचीतम उपलब्ध सूत्रग्रन्थ है, इसको सर्वप्रथम श्री काशिकर ने वैदिक संशोधन मण्डल पूना से सम्पादित करके प्रकाशित किया है, प्रकाशित भाग में केवल 14 अध्याय हैं जिनमें, दर्शपौर्ण मास से ज्योतिष्टोम तक का वर्णन है। भारद्वाज श्रौतसूत्र और आपस्तम्ब श्रौतसूत्रों में महती समानता है, उनके अध्याय क्रम और सूत्र अक्षरशः समान हैं, श्री काशिकर के मत में आपस्तम्ब ने भारद्वाज का पर्याप्य अनुकरण किया है, आपस्तम्ब के भाष्यकार रुद्रदत्त का भी यही मत है। दोनों ही श्रौतसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्नों में विभक्त हैं, दोनों का प्रारम्भ दर्शपूर्णमास से होता है और अनेक प्रश्न समानान्तर समानरूप से तुल्य हैं। परम्परा में भारद्वाज पितृमेधसूत्र का अनुसरण आपस्तम्बीय सम्प्रदाय वाले करते हैं—

सुविलोक्यानाहिताग्नेः समन्त्रं पैतृमेधिकम् ॥
आपस्तम्बैरपि ग्राह्यं नान्यत् सूत्रं हि विद्यते ॥

आपस्तम्ब ने पितृमेध सूत्र की रचना नहीं की। वे भारद्वाज-पितृमेध सूत्र का अनुसरण करते थे।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र—महर्षि आपस्तम्ब की गणना प्राचीन सूत्रकारों में होती है। आपस्तम्ब भी एक गोत्र नाम था, कल्पसूत्रकार का वास्तविक नाम अज्ञात ही है। आपस्तम्बगण प्रवर सूत्रों में भार्गव गोत्र के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। कोई बौधायन आचार्य आपस्तम्ब के गुरु थे, जो उपलब्ध बौधायन कल्पसूत्रकार से पृथक् तथा प्राचीनतर थे। तैत्तिरीय सम्प्रदाय में दो विभाग हुए—आत्रेय और खाण्डिकेय। खाण्डिकेय के विभाग हुए—कालेता, हिरण्यकेशी, भारद्वाज और आपस्तम्ब। अतः आपस्तम्ब आपस्तम्बीय शाखा के प्रवर्तक थे, जो तैत्तिरीयचरण का एक उपविभाग था। आपस्तम्ब का नाम पाणिनीय गणपाठ और महाभारत अनुशासन पर्व में मिलता है। अतः आपस्तम्ब की प्राचीनता सुस्पष्ट है। पं. भगवद्दत्त के मत में उनका समय 2800 वि. पू. था आधुनिक पाश्चात्य लेखकों में कोई उनका समय 600 ई. पू. तो कोई 400 या 300 ई. पू. मानते हैं।

आपस्तम्ब का निवासस्थान शाल्व जनपद का अवान्तर विभाग युगन्धर माना जाता है, आपस्तम्ब गृह्यमन्त्रपाठ में यह गाथा मिलती है—

यौगन्धरिरित्येव नो राजा शाल्वीसादिषुः।
विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने तव ॥

इस प्रमाण के आधार पर उनका जन्मस्थान युगन्धर जनपद माना जाता है। आपस्तम्ब कल्पसूत्र में 30 प्रश्न या अध्याय हैं। इनमें 23 अध्यायों में श्रौतसूत्र है, चौबीसवें अध्याय में यज्ञपरिभाषायें, प्रवर वर्णन और हौत्रकल्प हैं। पच्चीसवें और छब्बीसवें अध्याय में गृह्यमन्त्र पाठ है, सत्ताइसवें प्रश्न में गृह्यसूत्र अट्ठाइसवें और उन्नतीसवें प्रश्न में धर्मसूत्र तथा तीसवें प्रश्न में शुल्वसूत्र हैं।

समस्त कल्पसूत्र का रचयिता एकही आचार्य आपस्तम्ब है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र एक बड़ा ही विस्तृत ग्रन्थ है, श्रौतसूत्रों के सामान्य विषय—दर्शपूर्णमासादि ही इसके विषय हैं। आपस्तम्ब ने श्रौतसूत्र में वाजसनेय के मतों को अनेक बार उद्धृत किया है, तथा और भी बहुत से ग्रंन्थों—बृहद्ब्राह्मण, कालबविब्राह्मण, शैलालिब्राह्मण आदि तथा वैदिक संहिताओं के मन्त्र प्रचुरता से उद्धृत हैं।

वाराह श्रौतसूत्र—यह अपेक्षाकृत लघु श्रौतसूत्र है। इसके तीन भाग हैं, (1) प्राक्सौमिक (2) अग्निचयन (3) वाजपेयादिक। इन तीनों भागों में समस्त श्रौतयज्ञों का सार ग्राहि वर्णन है। यह कृष्णयजुर्वेद की वाराह शाखा का श्रौतसूत्र है। वराह या वाराह एक यजुर्वेदीय आचार्य थे। वाराह श्रौतसूत्र का एक सुन्दर संस्करण डा० रघुवीर ने सरस्वती विहार, दिल्ली से प्रकाशित किया था।

सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र—इसको हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र भी कहा जाता है। यह आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के समान विस्तृत और प्रधान श्रौतसूत्र हैं। इसमें 24 अध्याय तक श्रौतसूत्र है। 25वें अध्याय में शुल्व सूत्र, 26-27वें अध्याय में धर्मसूत्र और 28-29 अध्याय में पितृमेध सूत्र हैं। इसका विषय विस्तार और रचनाक्रम आदि आपस्तम्ब के प्राय: समान है।

मानव श्रौतसूत्र—कृष्णयजुर्वेद के प्रसिद्ध मैत्रायणीचरण के अन्तर्गत एक मानव चरण था। मैत्रायणीचरण के 12 भेद थे, जिनमें मानव चरण एक था। मानव श्रौतसूत्र को सर्वप्रथम गोल्डस्टकर ने जर्मनी से प्रकाशित किया था। एक संस्करण डा० रघुवीर ने प्रकाशित किया है। इस चरण का प्रवर्तक मनु आचार्य आपस्तम्ब के समान और उनके ही समानकालिक कोई सूत्राकार था, इसका प्रजापति मनु से स्वल्प भी सम्बन्ध नहीं जैसा कि मैक्समूलर आदि कुछ पाश्चात्यों को भ्रम था।

मानव श्रौतसूत्र का अध्याय क्रम इस प्रकार है—(१) दर्शपूर्णमास से निरूढ़पशुबन्ध तक (2) अग्निष्टोम (3) प्रायश्चित्त (4) प्रवर्ग्य (5) इष्टिकल्प (6) अग्निचयन (7) वाजपेय, द्वादशाह, गवामयन (8) अनुग्राहिका (9) राजसूय (10) अश्वमेध (11) एकाह यज्ञ (12) अहीन यज्ञ (13) सत्र (14) गौनामिक (15) शुल्वसूत्र (16) वैष्णव। अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट हैं—(1) प्रवर और (2) श्रद्धा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य श्रौतसूत्रों से इस मानव श्रौतसूत्रों के विषय में पर्याप्त अन्तर अवलोकनीय है। मानव श्रौतसूत्र का प्रवराध्याय कात्यायन कृत प्रवराध्याय के समान है।

बौधायन श्रौतसूत्र—यह अत्यन्त प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थ है। पाश्चात्य विद्वानों के मत में यह प्राचीनतम श्रौतसूत्र है, परन्तु अन्य भारतीय विद्वानों के अनुसार अर्वाचीनतम सूत्र ग्रन्थ है। यह अनेक प्रकार से प्रकाशित है। बर्नेल नामक विद्वान् ने जो पाठ प्रकाशित किया है, उसके अनुसार 19 प्रश्नों तक श्रौतसूत्र है, बीस अध्यायों में कर्मान्तसूत्र, चार अध्यायों में द्वैधसूत्र, चार अध्यायों में गृह्यसत्र तथा चार अध्यायों में धर्मसूत्र तीन अध्यायों में शुल्वसूत्र हैं। कालैण्ड द्वारा प्रकाशित बौधायन कल्पसूत्र में क्रम इस प्रकार है—औपानुवाक्य, काठक, द्वैध और कर्मान्तसूत्र।

बौधायन श्रौतसूत्र की रचना अत्यन्त विस्तृत एवं विशृंखलित सी है। बौधायन श्रौतसूत्र में ब्राह्मणसदृश भाषा का प्रयोग है अथवा यों कहना चाहिए कि आचार्य ने किसी प्राचीन ब्राह्मण को ही उद्धृत किया है। बौधायन श्रौतसूत्र में वही-दर्शपूर्णमासादि का सामान्यत: वर्णन है।

वाधूल श्रौतसूत्र—यह श्रौतसूत्र भी सामान्यत: पूर्वोक्त सूत्रों के समान है।

वैखानस श्रौतसूत्र—इसको सर्वप्रथम कालैण्ड ने ने प्रकाशित किया था। इसके रचयिता विखनस् मुनि थे—

येन वेदार्थं विज्ञाय लोकानुग्रहकांक्षया।
प्रणीतं सूत्रम् औखेयं तस्मै विखनेस नमः॥

तित्तिरि की शिष्य परम्परा में 'उख' नाम का अन्तेवासी था, वह सम्भवत: विखनस् का वंशज था, उसी ने इस श्रौतसूत्र की रचना की। इस श्रौतसूत्र का उपलब्ध पाठ अत्यन्त भ्रष्ट और प्रक्षिप्त है, इसमें 'ताम्बूल' जैसे शब्द मिलते हैं। कालैण्ड के मत से वैखानस ने पहिले स्मार्तसूत्र और बाद में श्रौतसूत्र की रचना की। विखनस् का उल्लेख तैत्तिरीयरण्यक में भी मिलता है। वैखानस श्रौतसूत्र में 21 अध्याय हैं। इसमें वैष्णवभक्ति की सामग्री भी उपलब्ध होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामवेद के चार श्रौतसूत्र—जैमिनीय, माशक, लाट्यायन और द्राह्यायण—प्रकाशित हैं, लेकिन ये पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं हैं। जैमिनीय श्रौतसूत्र की भवत्रात की वृत्ति आंशिक रूप से ही प्राप्य है। इन श्रौतसूत्रों की सामग्री सामवेद के ब्राह्मणों—जैमिनीयब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मणादि से ली गई है, इनमें एकाह और अहीन यज्ञों का ही वर्णन है। माशक श्रौतसूत्र को आर्षेय कल्प भी कहते हैं। लाट्यायन और द्राह्यायण श्रौतसूत्र प्रायः समान हैं।

वैतानश्रौतसूत्र—यह अथर्ववेद का एक मात्र लघु उपलब्ध श्रौतसूत्र है। इसकी विषयानुक्रमणिका कात्यायन श्रौतसूत्र के समान है, यद्यपि वैतानसूत्र उसके समान विस्तृत नहीं है, तथापि दोनों में पर्याप्त साम्य है। श्रौत यज्ञों को ही वैतान कहते हैं, कहा भी है—"उक्तानि वैतानिकानि, गृह्याणि वक्ष्यामः।" (आश्व० गृ० 1।1।1) इसलिए इसकी संज्ञा 'वैतानसूत्र' है।

वैतानसूत्र में विषयक्रम इस प्रकार हैं—परिभाषा, दर्शपूर्णमास, अग्न्याधानादि, पिण्डपितृयज्ञ, निरूढपशुबन्ध अग्निष्टोम इत्यादि।

गृह्यसूत्र

ऋग्वेद के ये गृह्यसूत्र प्रकाशित हैं—(1) आश्वलायनगृह्यसूत्र (2) शांखायन गृह्यसूत्र (3) कौषीतकि गृह्यसूत्र या शाम्बव्य गृह्यसूत्र।

शुक्लयजुर्वेद के उपलब्ध गृह्य सूत्र—(1) पारस्कर गृह्यसूत्र (2) वैजवाप-गृह्यसूत्र। कृष्णयजुर्वेद के गृह्यसूत्र—(1) भारद्वाज गृ. (2) आपस्तम्ब गृ. (3) हिरण्यकेशीय गृ. (4) वैखानस गृ. (5) मानव गृ. (6) बौधायन गृ. (7) काठक गृ. (8) वाराह गृः (9) लौगाक्षिगृ. (10) अग्निवेश गृः। सामवेद के गृह्यसूत्र—(1) कौथुम गृ. (2) द्राह्यायण गृ. (3) जैमिनीय गृ. (4) खादिर गृ. (5) गोभिल गृ.।

अथर्ववेद का प्रकाशित गृह्यसूत्र—एकमात्र कौशिक सूत्र है।

इस प्रकार 21 गृह्यसूत्र प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त शाण्डिल्य, शौनक, मैत्रेय, मानिल्ल आदि के गृह्यसूत्र प्रकाशित सुने जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त गृह्यसूत्रों में से प्रसिद्ध कुछ गृह्यसूत्रों का संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है,

आश्वलायन गृह्यसूत्र—इस गृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं—जैसा कि पहिले लिखा है—'गृह्य' चतुष्कमेव च' । ये अध्याय अनेक खण्डों में विभक्त हैं । प्रथम अध्याय में षोडश संस्कारों का वर्णन है, द्वितीय में प्रकीर्णक विषय एवं पाकयज्ञों का वर्णन है, तृतीय में वेदाध्ययन सम्बन्धी नियम, चतुर्थ में और्ध्वदैहिक संस्कारों व श्राद्ध का विधान है ।

शांखायन गृह्यसूत्र—इसमें 6 अध्याय हैं, इसके प्रणेता का नाम सुयज्ञ शांखायन था, इसमें गृह्यसूत्रों के समान विधानों का वर्णन है, इस गृह्यसूत्र में मनु के नाम से मांसभक्षण सम्बन्धी कुछ श्लोक उद्धृत हैं । जो वर्तमान मनुस्मृति में मिलते हैं ।

कौषीतकि गृह्यसूत्र—इसमें पांच अध्याय हैं । इसके रचयिता शाम्बव्ट का परिचय शाखा प्रकरण में लिखा जा चुका है, इसमें पितृयज्ञ का विशिष्ष वर्णन है, अन्य वर्णन प्राय: सामान्य हैं ।

पारस्कर गृह्यसूत्र—यह आश्वलायन गृह्यसूत्र के समान सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रचलित ग्रन्थ है । कात्यायन श्रौतसूत्र से इसका सम्बन्ध माना जाता है । इसमें तीन काण्ड हैं और गृह्यकृत्यों का सामान्य वर्णन है । पारस्कर का सम्बन्ध पारस्कर देश (थर पारकर) देश से था । सम्भवत: यह यास्क गोत्र का था ।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र—इसका कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा किंवा आपस्तम्बीय शाखा से सम्बन्ध है । आपस्तम्बकल्पसूत्र का सत्ताईसवां अध्याय गृह्यसूत्र है. यह एक लघु ग्रन्थ है, गृह्यकर्मों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन आपस्तस्ब ने गृह्यमन्त्री पाठ (25-26 अध्यायों) में किया है । यह भी प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन सर्वप्रथम विन्टरनीत्स ने किया था ।

इसके अतिरिक्त हिरण्यकेशी गृह्य में दो अध्याय, बौधायन गृह्य में चार प्रश्न हैं—भारद्वाज गृह्य, भारद्वाज श्रौतसूत्र के समान प्राचीन है । लौगाक्षि गृह्यसूत्र पर्याप्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इसको गृह्यपंजिका भी कहते हैं । इसमें 73 खण्ड और पांच अध्याय हैं ।

गोभिल गृह्यसूत्र—यह सामवेदियों का सर्वाधिक प्रसिद्ध गृह्यसूत्र है । यह कुछ विस्तृत ग्रन्थ है । यह चार प्रपाठकों में विभक्त है, इसमें समस्त गृहकर्मों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का विस्तार से विधान है, इसके मन्त्र छान्दोग्यब्राह्मण या मन्त्र ब्राह्मण से लिए गए हैं, अतः यह प्राचीन ग्रंथ माना जाता है।

कौशिक गृह्यसूत्र—यह अथर्ववेदीय एक मात्र गृह्यसूत्र है, इसके रचयिता कौशिक ऋषिसीमकृष्ण पाण्डव के मन्त्री थे।

श्रविष्ठाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः (हरि. पु. 3।1। 12) पाणिनि ने इसी आचार्य कौशिक का एक सूत्र (अष्टा. 4।3।103) में उल्लेख किया है—"काश्यप कौशिकाभ्यांमृषिभ्यां णिनिः।" इसी कौशिकाचार्य ने यह गृह्यसूत्र रचा था। यह चौदह अध्यायों में विभक्त है। इसमें सामान्य गृह्यकृत्यों के अतिरिक्त अथर्ववेदीय आभिचारिक कर्मों एवं जादू-टोनों का वर्णन मिलता है, इसमें भैषज्यविज्ञान भी है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

गृह्यसूत्रों के सामान्य विषय—षोडश संस्कार, सप्तपाकयज्ञ और पञ्च महायज्ञ-ये गृह्यसूत्रों के सामान्य विषय हैं।

षोडश संस्कार हैं—गर्भाधान, पुन्सवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन (यज्ञोपवीत), विद्यारम्भ, समावर्तन (स्नातक), विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि। इन कर्मों में मनुष्य जीवन के सभी कर्म आ जाते हैं। गर्भाधान से विद्यारम्भ तक के कर्म बाल्य-काल से सम्बन्धित हैं, समावर्तन और विवाह का सम्बन्ध युवावस्था से और वानप्रस्थ तथा संन्यास का सम्बन्ध वार्धक्य से था।

सप्त पाकसंस्था (यज्ञ) थे—पितृयज्ञ, पार्वणहोम, अष्टका, श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रयणी और चैत्री। इन यज्ञों में गृहस्थ के लिए होम का विधान था।

पञ्च महायज्ञ विख्यात हैं– ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथि-यज्ञ। इन यज्ञों में पितर आदि के लिए भोजन और आदरभाव का समावेश था। इन यज्ञों से उऋणता की प्राप्ति होती थी, ऐसी श्रद्धालु गृहस्थों की मान्यता थी।

धर्मसूत्र

स्मृति (धर्मशास्त्रों) के मूल धर्मसूत्र थे। जिन आचार्यों ने श्रौतसूत्र रचे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रायः उन्हीं ने गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र लिखे, वास्तव में ये सब कल्पसूत्र के ही विभाग होते थे।

धर्मसूत्रों में मानव धर्म, समाजधर्म, राजधर्म एवं अर्थ धर्म काम और मोक्ष —चतुर्वर्ग का वर्णन है। ये सब मानव जीवन के आवश्यक अङ्ग थे। धर्म-सूत्रों में सामाजिक व्यवहार, लेन-देन, भोजन, वाणिज्य, आचार-विचार-सभी जीवन के अङ्गों का वर्णन है, इनमें भक्ष्याभक्ष्य का भी विस्तार से विधान मिलता है। चातुर्यवर्ण्य धर्म और चातुराश्रम्य का विस्तार से विधान है। राज धर्म में दण्ड-विधान, कराधान, साक्षी नियम, न्याय, शासन आदि का सविस्तार विधान मिलता है।

इस समय छः धर्मसूत्र प्रकाशित हैं—गौतमधर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, वसिष्ठधर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, हिरण्यकेशी धर्मसूत्र और विष्णु धर्मसूत्र।

गौतम धर्मसूत्र—धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सर्वाधिक प्रचलित, में प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित धर्मसूत्र है। गौतम का कल्पसूत्र (श्रौत या गृह्यसूत्रादि) नहीं मिलते, केवल धर्मसूत्र प्राप्य हैं। ये सामवेदीय आचार्य थे। छान्दोग्यो-पनिषद् में हारिद्रुमत गौतम का उल्लेख है। जिन्होंने सत्यकाम जाबाल को शिक्षा दी। भारतीय दृष्टि से यह धर्मसूत्र कम से कम 2900 वि. पू. की रचना थी। आधुनिक लेखक इसका समय 200 ई. पू. से 600 ई. पू. तक अनुमानित करते हैं।

गौतम धर्मसूत्रों में 3 प्रश्न हैं, जो 28 अध्यायों में विभक्त हैं, यह धर्मसूत्र विशाल ग्रंथ है, जिसमें धर्मसूत्रों के सभी विषयों का सविस्तार वर्णन है। इसमें मनु का प्रमाण अनेक बार दिया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र—यह ग्रंथ भी पर्याप्त प्रचलित है। इसमें दो प्रश्न हैं, जो अनेक पटलों और कण्डिकाओं में विभक्त है। इसके विषय धर्मसूत्रों के सामान्य विषय हैं। समस्त कल्पसूत्र के रचयिता आचार्य आपस्तम्ब ही थे, जिनका कि यह धर्मसूत्र एक स्वल्प-भाग है। इसमें आचार्य आपस्तम्ब ने अनेक, धर्माचार्यों के प्रमाण दिये हैं जैसे श्वेतकेतु, गौतम, हारीत, कौत्स आदि। धर्म-सूत्र सूत्रों में ही निबद्ध हैं, परन्तु बीच-बीच में प्राचीन श्लोक उद्‌धृत किये गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इसमें पुराण, विशेषतः भविष्यत् पुराण का उल्लेख है और उसके श्लोक भी उद्धृत किये हैं। इसमें योग और अध्यात्म का भी उल्लेख है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण है, आधुनिक विद्वान् इस ग्रन्थ का समय 300 ई. पू. से 700 ई. पू. मानते हैं, भारतीय मत से 2800 वि. पू. इसका रचनाकाल था।

वासिष्ठ धर्मसूत्र—यह ऋग्वेदीय धर्मसूत्र माना जाता है। इसमें 30 अध्याय हैं। सूत्रों के मध्य में श्लोक भी दिये गये हैं। इसके प्रथम 14 अध्यायों में आचार का विस्तार से वर्णन है, 15 से 19 अध्याय पर्यन्त व्यवहार, 20-28 अध्यायों में प्रायश्चित और 29-30 अध्यायों में दानों का विधान है।

इस धर्मसूत्र में केवल छः प्रकार के विवाहों का विधान है जब अन्य धर्मसूत्रों में आठ प्रकार के विवाह वर्णित हैं। इस धर्मसूत्र में मनु का बहुधा उल्लेख है। आधुनिक लेखक वासिष्ठ धर्मसूत्र का रचनाकाल गौतम धर्मसूत्र के पश्चात् परन्तु मनुस्मृति से पूर्व मानते हैं, उनके मत में यह 300 ई० पू० का ग्रन्थ है। भारतीय मत से यह पुराणप्रवचन काल अर्थात् 2800 वि० पू० की रचना है। क्योंकि उग्रश्रवासौति के सतीर्थ्यों में एक वासिष्ठ आचार्य था, जो सम्भवतः पुराण के साथ धर्मसूत्र का प्रणेता भी हो।

बौधायन धर्मसूत्र—इस धर्मसूत्र में 4 प्रश्न (अध्याय) हैं, इसमें श्लोकों का बाहुल्य है। इसके रचयिता कल्पसूत्र के रचयिता वही बौधायन आचार्य थे, जिनको पाश्चात्य लेखक प्राचीनतम सूत्रकार मानते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि में इस धर्मसूत्र का रचनाकाल 200 ई० पू० था। यह धर्मसूत्र अन्य धर्मसूत्रों के समान चातुर्वर्ण्य, चातुराश्रम्य, पुष्टविध विवाह, राजधर्म, प्रायश्चित, गृहस्थ धर्म, भक्ष्याभक्ष्य, श्राद्धादि का विधान करता है। इसके सूत्र आपस्तम्ब सूत्रों से बहुत मिलते-जुलते हैं।

हिरण्यकेशी धर्मसूत्र—इसको सत्याषाढ़ धर्मसूत्र भी कहते हैं। यह इस कल्प के 26-27 प्रश्नों में है। इसके विषय आपस्तम्ब धर्मसूत्र से प्रायः मिलते है, वरन् दोनों में पर्याप्त साम्य है, किंवा हिरण्यकेशी धर्मसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र का संक्षिप्त रूप ही है।

विष्णु धर्मसूत्र—इसमें 100 अध्याय हैं, यह एक विस्तृत धर्मसूत्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त अध्यायों में पद्य गद्य का मिश्रित रूप मिलता है। धर्मसूत्रों के सामान्य नियमों के साथ इसमें भागवतधर्म (वैष्णवभक्ति) का भी वर्णन है। इसमें मानवधर्म शास्त्र (मनुस्मृति) के प्रमाण या श्लोक भी उद्धृत हैं। प्रतीत होता है कि मूल रचना प्राचीन होते हुए भी इसमें कालान्तर में पर्याप्त प्रक्षेप होता रहा। पाश्चात्य लेखक इसको ई० सन् के आस-पास की रचना मानते हैं।

शुल्वसूत्र

यज्ञवेदियों के निर्माण का विधान जिन सूत्रों में है, उनको शुल्वसूत्र कहत हैं, शुल्व का अर्थ है मापने का सूत्र। ये ग्रन्थ भी कल्पसूत्रों के ही भाग हैं, वैसे तो अनेक आचार्यों के शुल्वसूत्र मिलते हैं। जिन्होंने कल्पसूत्र रचे उन्होंने शुल्वसूत्रों की रचना की। अतः इनका रचनाकाल भी वही था जो श्रौतसूत्रादि का था। अतः प्रत्येक कल्पसूत्र में शुल्वसूत्र भी हैं, परन्तु तीन शुल्वसूत्र ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं—कात्यायन शुल्वसूत्र, आपस्तम्ब शुल्वसूत्र और बौधायन शुल्वसूत्र।

कात्यायन शुल्वसूत्र—यह प्रसिद्ध श्रौतसूत्रकार कात्यायन की रचना है, जो शौनक का शिष्य था। यह शुल्वसूत्र का भाग नहीं है, वरन् परिशिष्ट ग्रन्थों के अन्तर्गत इसकी गणना है। वक्ष्यमाण आपस्तम्ब शुल्वसूत्र से इसके सूत्र प्रायेण अक्षरशः मिलते हैं, अतः अनुमान होता है कि दोनों का मूल कोई प्राचीन सूत्र-ग्रंथ था, अथवा कात्यायन ने आपस्तम्ब का अनुकरण किया है, क्योंकि आप-स्तम्ब कात्यायन की अपेक्षा पूर्ववर्ती ग्रंथकार था।

कात्यायन शुल्वसूत्र में 100 सूत्र हैं जो छः कण्डिकाओं में विभक्त हैं। सप्तमी कण्डिका में 39 श्लोक हैं, इस प्रकार शुल्वसूत्र में कुल सात कण्डिकायें हैं।

शुल्वसूत्र में यज्ञवेदी की प्राची, उदीची स्थानों का निर्माण, श्रोणी, अंश, शंकु रज्जु, आत्वंश, सदोमान, रथ प्रमाण, युगप्रमाण आदि अनेक विषय हैं, सप्तमी श्लोकवद्ध कण्डिका में पौर्णमासिकी, सौमिकी सत्रिकी आदि वेदियों के निर्माण की विधि बताई गई है। इन शुल्वसूत्रों में ज्यामिति (रेखागणित) की पर्याप्त सामग्री विद्यमान है, विश्व में रेखागणित के ये के ये प्राचीनतम ग्रंथ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदि प्रमाण प्राय: रथाकार होता था। इसलिए रथाङ्गों के प्रमाण इस प्रकार वर्णित हैं—

तन्त्राष्टाशीति शतमीषा । 2।2

चतु:शतमक्ष: ।2।3।

षडशीतिर्युगम ।२।4।

चत्वारोऽष्टका: शम्या ।२।5।

रथकी ईषा 88 अंगुल, 104 अंगुल अक्ष, 86 युग (जुआ), 32 अंगुल शम्या होती है। इस प्रकार सूत्र रचना और विषय प्रतिपादन है।

आपस्तम्ब शुल्वसूत्र—आपस्तम्ब कल्प का अन्तिम (30वां) अध्याय शुल्वसूत्र है, इसमें 6 पटल, 21 वर्ग और 223 सूत्र हैं। विषय पूर्वोक्त कात्यायन शुल्व के समान ही है—परिभाषा, वेदि, चितिवेदि निरूपणादि। इसके सूत्र बहुत ही दुर्बोध्य हैं, इस पर कर्पादिस्वामिभाष्य, करविन्दभाष्य और सुन्दर राजकृत, भाष्य मिलते हैं। फिर भी विषय बोध में कठिनाई होती है। कात्यायन के आपस्तम्ब के शुल्व सूत्रों में पर्याप्त साम्य है, यह पहिले ही कहा जा चुका है।

बौधायन शुल्वसूत्र—यह तृतीय प्रसिद्ध शुल्वसूत्र है, जो बौधायन कल्प का अन्तिम भाग है। इसमें तीन खण्ड हैं जिनमें क्रमश: 116, 86, 323 सूत्र हैं। यह शुल्वसूत्र पूर्वोक्त दो शुल्वसूत्रों से अधिक विस्तृत तर है। इसमें माप सम्बन्धी विषयों का अधिक विस्तार है। इसके रचयिता कल्पसूत्राकार बौधायन ही हैं, जिनका समय कुछ अर्वाचीन यानी 2700 वि. पू. था, आधुनिक लेखक इनका समय 600 ई. पू. मानते हैं।

इन तीन प्रमुख शूल्व सूत्रों के अतिरिक्त हिरण्यकेशी, मैत्रायणी, मानव, वाराह, वाधूल और वैखानस के शुल्वसूत्र भी मिलते हैं, जो अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं।

व्याकरण शास्त्र

व्याकरण की महत्ता—व्याकरण को वेद का मुख कहा गया है, छान्दोग्योपनिषद भाष्य में शंकराचार्य ने 'वेदानां वेद:, का अर्थ व्याकरण किया है। इससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट होता है कि व्याकरण का वेदाध्ययन में कितना महत्व था। महाभारत सनत्सुजातीय पर्व (2149) में लिखा है :

सर्वार्थानां व्याकरणद्वैयाकरण उच्यते।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा॥

"सब प्रकार के अर्थों का व्याकरण (विवेचन) करने के कारण ही किसी पुरुष को वैयाकरण कहा जाता है। यही मूल व्याकरण है। विद्वान विवेचन करता है, अतः वही वैयाकरण है।" आचार्य पतञ्जलि ने व्याकरण के महत्व का व्याख्यान करते हुए लिखा है—एवं हि श्रूयते—बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्ष-सहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपरायणं प्रोवाच, नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालो न चान्तं जगाम किं पुनर-द्यत्वे, यः सर्वथा चिरं जीवति वर्षशतं जीवति।" (महाभाष्य प्रथमाह्निक पृ. 18), "सुना जाता है कि बृहस्पति ने इन्द्र को दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त प्रतिपद शब्द परायण पढ़ाया, फिर भी व्याकरण का अन्त नहीं हुआ। बृहस्पति जैसा गुरु और इन्द्र जैसा शिष्य, पुनः एक सहस्र दिव्य वर्ष अध्ययन काल, तो भी व्याकरण शास्त्र की समाप्ति नहीं हुई, आजकल तो कहना ही क्या जो बहुत जीता है, वह सौ वर्ष ही जीता है।"

परम्परा—उपर्युक्त परम्परा से व्याकरण की प्राचीनता भी ज्ञात होती है।" पतञ्जलि और पाणिनि से पूर्व आचार्य शाकटायन ने ऋक्तन्त्र में व्याकरण की मूल परम्परा इस प्रकार बताई है—

ब्रह्मा
|
बृहस्पति
|
इन्द्र
|
भरद्वाज
|
ऋषिगण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रातिशाख्य-प्रकरण में मैक्समूलर के प्रमाण से बताया जा चुका है कि न्यून से न्यून 64 वैयाकरण प्रातिशाख्यों के रचनाकाल के समय प्रसिद्ध थे। इनमें से पाणिनि ने इन आचार्यों का प्रमाण अपनी अष्टाध्यायी में दिया है—आपिशलि, गार्ग्य, काश्यप, गालव, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, चाक्रवर्मण और स्फोटायन। आचार्यों और शास्त्रों में आठ वैयाकरण सम्बन्धी यह श्लोक प्रसिद्ध है—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादि शब्दिकाः॥

'इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेन्द्र।" इनमें से इन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि और शाकटायन पाणिनि से पूर्ववर्ती थे और चन्द्र (चन्द्रगोमी) अमरसिंह और जैनेन्द्र पाणिनि से बहुत उत्तरकाल में हुए।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास', प्रथम भाग में पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों का यथासम्भव ज्ञात इतिहास लिखा है।

इन्द्र और ऐन्द्र व्याकरण—यह इन्द्र प्रसिद्ध सुर सम्राट् कश्यप पुत्र इन्द्र ही है, छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार प्रजापति कश्यप के पास 101 वर्ष तक ब्रह्मचारी रहते हुए समस्त शास्त्रों और ब्रह्मविद्या का अध्ययन किया। तैत्तिरीय-संहिता के अनुसार वायु की सहायता से इन्द्र ने व्याकरण शास्त्र की रचना की। शाकटायन और पतञ्जलि ने "ऐन्द्र व्याकरण के अस्तित्व की पुष्टि की है।" ऐन्द्र व्याकरण के दो सूत्र—अर्थः पदमैन्द्राणाम् (निरुक्तिवृत्ति पृ. 10) 'जराया ङ्स् इन्द्रस्याचि' (जैनेन्द्र व्या. 1।2।37)—मिलते हैं। ऐन्द्र 'व्याकरण की विशालता की पुष्टि पतञ्जलि के वचनों से तो होती है। महाभारत के टीकाकार देवबोध ने पाणिनि व्याकरण को ऐन्द्र व्याकरण की तुलना में गोष्पद तुल्य (अतिलघु) बताया है—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनि गोष्पदे॥

"जिन पद रत्नों को व्यास जी ने (महाभारत में) आयुक्त किया है, वे पाणिनिगोष्पद (अष्टाध्यायी) में कहाँ से आये।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्र के समकालीन अगस्त्य ऋषि भी परम्परा में महान वैयाकरण बताये गये हैं। तमिल व्याकरण अगस्त्य की कृति कही जाती है। इन्द्र और अगस्त्य ने वेद का व्याकरण भी लिखा था। इस समय इतने प्राचीन व्याकरण न तो उपलब्ध और न भविष्य में उनकी प्राप्ति की कोई आशा है।

इस समय वैदिक व्याकरण का साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ कोई नहीं मिलता। केवल अष्टाध्यायी के कुछ प्रकरणों में वैदिक व्याकरण के कुछ संक्षिप्त नियम सङ्कलित हैं, पाणिनि ने 'बहुलंछन्दसि' सूत्रों को लिखकर वैदिक व्याकरण की बहुलता और विशालता का परिचय दिया है। पाणिनि से पूर्व ऋक्तन्त्र, प्रातिशाख्यादि में वैदिक व्याकरण का प्रकीर्णक वर्णन किया गया है। वेद सम्बन्धी पाणिनि के नियमों का सङ्कलन भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी के आठ प्रकरणों में किया है, पाणिनि का स्वर प्रकरण अवश्य ही कुछ विस्तृत है जो मुख्यतः वेद के लिए ही है।

वेद में व्याकरण का प्रयोजन—पतञ्जलि ने महाभाष्य के प्रारम्भ में लिखा है—'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्' वेद की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। शब्दों और वर्णों के लोप, आगम और विकारों का सम्यक् ज्ञान होने पर ही वेद का परिपालन या परिरक्षण हो सकता है। पतञ्जलि ने व्याकरण के अध्ययन के पाँच प्रयोजन बताये हैं—वेद की रक्षा, ऊहा, आगम, लाघव और सन्देह निवृत्ति।

वेदरक्षा—लोप, आगम, तथा वर्णों में विकारों का जानने वाला ही वेद की रक्षा कर सकता है।

ऊह—वेद में मन्त्र सभी लिङ्गों और विभक्तियों में नहीं पढ़े गये। उन मन्त्रों को यज्ञ विनियोग के लिए बदलना पड़ता है, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।

आगम—बिना आगम (व्याकरणादि षडङ्गों) के वेद अध्ययन नहीं हो सकता अतः विद्वान् को व्याकरण अवश्य पढ़ना चाहिए।

लाघव—व्याकरण ज्ञान से ही भाषा का सूक्ष्म प्रयोग या शिल्प ज्ञान होता है, अत शिल्पनैपुण्य एवं लाघव (शीघ्रज्ञान) के लिए व्याकरण अनिवार्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असन्देह—यज्ञ तथा अन्य कर्मकाण्ड या जीवन में असंदिग्ध व्यवहार के लिए भी व्याकरण पढ़ना चाहिए। 'इन्द्रशत्रु' समास का उदाहरण प्रसिद्ध है, केवल स्वरभेद से समास बदल जाता है, जिससे अर्थ का अनर्थ हो सकता है, अतः वेद के लिए व्याकरण पढ़ना अनिवार्य है।

ब्राह्मणग्रंथों और कल्पसूत्रों में लिखा है कि विद्वान् को अपभ्रष्ट शब्द (म्लेच्छ भाषा) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। असुरगण भाषा के अशुद्ध उच्चारण (म्लेच्छ प्रयोग) के कारण पराजित हो गये—'तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः।" वे असुर हे अलय! हे! अलय (अरयः) कहते हुए पराजित हो गये।

और भी कहा है—'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थं माह' "दुष्ट शब्द स्वर या वर्णों से हीन यथार्थ अर्थ को नहीं बताता। जो विद्वान् इस वेदवाणी का पद, स्वर तथा अक्षर का ठीक-ठीक उच्चारण करता है वही आर्त्विजीन (यज्ञपात्र) कहलाता है। वेद में स्वयं व्याकरण का यह रूपक मिलता है—

> चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
> त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश ॥
>
> (ऋ. 4।58।3)

"इस व्याकरण ऋषभ के चार शृङ्ग हैं—नाम, आख्यात, उत्सर्ग और निपात, भूत, भविष्य और वर्तमान—तीन पैर हैं, सुबन्त और तिङन्त दो सिर हैं। सात विभक्तियां-सात हाथ हैं। तीन वचन-तीन बन्धन हैं।"

निरुक्त

निरुक्तशास्त्र का वेदार्थ में अपूर्ण योगदान है। यह वेदार्थ के लिए एक प्रदीप के समान है, यास्क का निरुक्त इस समय उपलब्ध एक मात्र निरुक्त शास्त्र का ग्रन्थ है। पं० भगवद्दत्त ने आचार्य दुर्ग (निरुक्तवृत्ति 1/13 तथा 1/20) के अनुसार 'निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम्।" निरुक्तं चतुर्दशधा, अतः निरुक्त ग्रन्थ 14 थे। आचार्य यास्क ने 12 निरुक्तकारों का अपने ग्रन्थ में साक्षान्निर्देश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है—(1) आग्रायण (2) औपमन्यव (3) औदुम्बरायण (4) और्णनाभ (5) कात्थक्य (6) क्रौष्टुकि (7) गार्ग्य (8) गालव (9) तैटीकि (10) वार्ष्यायणि (11) शाकपूणि (12) स्थौलाष्ठीवि और तेरहवें निरुक्तकार यास्क का ग्रन्थ उपलब्ध ही है। चौदहवें निरुक्तकार का नाम ज्ञात नहीं। जिस प्रकार पाणिनि पर आपिशलि की अष्टाध्यायी का सर्वाधिक प्रभाव था। इसी प्रकार यास्क पर शाकपूणि के निरुक्त का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। पुराणों तथा वृहद्देवता में इसको 'रथीतर शाकपूणि' (कहीं राथीतर शाकरपूणि) लिखा है। शाकपूणि और यास्क-दोनों के निघण्टु प्रायः समान थे। शाकपूणि के कुछ विशिष्ट उदाहरण पं० भगवद्दत्त ने खोज निकाले हैं—

(1) 'उक्तं हि शाकपूणिना रात्रिरपि वा उच्यते', (ऋ० स्कन्दभाष्य 1/121/2)

(2) उदकमिति सुखनाम इति शाकपूणिः (आत्मानन्द, अस्यवामीय सूक्तभाष्य)

(3) दाद्वान् इति यजमाननाम शाकपूणिना पठितम् (स्कन्दभाष्य 1/113/18)

(4) यम इति यज्ञनाम शाकपूणिना पठितम् (स्कन्द ऋ० भा० 1/83/5) स्पष्ट है कि स्कन्दस्वामी के समय शाकपूणि का निरुक्त ग्रन्थ प्राप्य था।

निघण्टु—निरुक्त का मूल 'निघण्टु' नाम का वैदिक कोश ग्रन्थ था। प्राचीनकाल में निघण्टु ग्रन्थ भी अनेक थे जो एक प्रकार के वैदिक कोश ही थे।" निघण्टु की केवल दो ही व्याख्यायें इस समय उपलब्ध हैं, एक स्वयं यास्क की और दूसरी देवराजयज्वा नामक विद्वान की। इनके पिता का नाम यज्ञश्वर था, ये दक्षिण में रंगेशपुरी के निवासी थे, इनका समय विवादग्रस्त है, कुछ विद्वान् इन्हें सायण से प्राचीनतर, तो कुछ अर्वाचीन मानते हैं।

उपलब्ध निघण्टु में पांच अध्याय है, प्रारम्भ के तीन अध्याय 'नैघण्टुक काण्ड' कहलाते हैं, इनमें गो आदि पदों का निर्वाचन है, चौथा अध्याय 'नैगमकांड' कहलाता है, जिसमें दुर्बोध्य पदों का संकलन है। पांचवां अध्याय 'दैवतकाण्ड' कहलाता है, इसमें वैदिक देवों का निरूपण है। इस निघण्टु के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचयिता के विषय में भी मतभेद हैं। कुछ विद्वान् यास्क को ही इसका प्रणेता सिद्ध करते हैं, परन्तु महाभारत, शान्तिपर्व ग्रा० 342, मु० श्लो० 86-87) के मत में प्रजापति कश्यप निघण्टु के रचयिता थे—

वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुपदव्याख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्येत।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥

यास्क का समय—यास्क का गोत्रनाम है, निरुक्तकार यास्क का वास्तविक नाम क्या था, यह अज्ञात, यह केवल गोत्रनाम से ही प्रसिद्ध है। यास्क गोत्र का मूलपुरुष 'यस्क' था, यह नाम पाणिनि गणपाठ (2/4/63) में पठित है। एक यास्क, आसुरि, पाराशर्य और जातुकर्ण्य के पूर्व भी हुआ, जिसका उल्लेख शतपथब्राह्मण (14 अध्याय) की वंशावली में मिलता है। जो लोग निरुक्तकार यास्क को पाराशर्य व्यास का पूर्ववर्ती बतलाते हैं, वे भ्रम में हैं, क्योंकि 'यास्क' और 'पराशर्य' दोनों ही गोत्र नाम हैं, क्योंकि व्यास का गुरु निरुक्तकार यास्क नहीं हो सकता, यदि शतपथब्राह्मणोल्लिखित यास्क यदि पाराशर्य व्यास का गुरु था तो वह निरुक्तकार नहीं, इसी प्रकार यदि पाराशर्य निरुक्तकार यास्क का शिष्य है तो वह पाराशर्य व्यास नहीं वह और कोई पाराशर्य होगा, क्योंकि पाराशर्य नाम के अनेक ऋषि स्वयं शतपथब्राह्मण में उल्लिखित हैं। जातूकर्ण्य भी गोत्रनाम था। नाम साम्य या गोत्रनाम से इतिहास में बहुत भ्रम उत्पन्न हुआ है, वसिष्ठ, कौशिक आदि नाम इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं, इस विषय का विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। अतः यह निश्चित है कि यस्क गोत्र में यास्क नाम के बहुत से आचार्य या ऋषि हुए।

पाश्चात्य लेखक और उनके अनुयायी यास्क (निरुक्तकार) का समय 700 ई० पू०, पाणिनि से पूर्व मानते हैं। यास्क का नाम बृहद्देवता, पुराणों और महाभारत में भी स्मृत है। महाभारत (शान्तिपर्व, अ० 342, श्लोक 72-73) में यास्क का उल्लेख द्रष्टव्य है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान् । शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनामधरोह्यहम्, स्तुत्वा मां शिपविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधी । मत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमभिजग्मिवान् । "अव्यग्र यास्क ऋषि ने मेरी (वासुदेव कृष्ण) स्तुति अनेक यज्ञों में शिपिविष्ट नाम के गुह्यनाम से की है । उदारबुद्धि यास्क ने 'शिपिविष्ट' नाम से मेरी स्तुति करके नष्टप्राय निरुक्त को पुनः प्राप्त किया ।" इस प्रमाण से यास्क महाभारत काल (3100 वि० पू०) से पूर्व सिद्ध होते हैं ।

जो लोग इस प्रमाण के आधार पर भी यास्क को सात या आठ सौ वर्ष विक्रम से पूर्व मानते हैं, उनको सोचना चाहिए कि सात-आठ सौ विक्रम पूर्व कौन सा महाभारत युद्ध या कृष्ण या व्यास हुये। महाभारत युद्ध, कृष्ण और व्यास का समय वि० से सात सौ वर्ष पूर्व किस प्रमाण के आधार पर रखा जाता है, वह बुद्धिगम्य नहीं है । एक और प्रमाण यास्क के निरुक्त में मिलता है जिससे उनका समय कृष्ण और अक्रूर के समकालीन सिद्ध होता है । यास्क ने लिखा है कि 'अक्रूरो ददते मणिम् इत्यभिभाषन्ते (नि० 212) यह वर्तमान काल सिद्ध करता है कि यास्क उस समय वर्तमान थे, जबकि स्यमन्तकमणि को का प्रयोग अक्रूर धारण करते थे । उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यास्क का समय 3100 या 3000 वि० पू० सिद्ध होता है । कीथ यास्क का समय 500 ई० पू० मानता था, दूसरे पाश्चात्य लेखक और भारतीय लेखक उनका समय 600, 700 या 800 ई० पू० मानते हैं । यह मतभेद केवल कल्पना पर, आकारण ही आधारित है, यह कितना प्रामाणिक हो सकता है, यह विद्वान् पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं ।

निरुक्त ग्रन्थ का परिमाण—निघण्टु के अनुसार ही निरुक्त भी तीन काण्डों में विभक्त है, नैघण्टुक, नैगम और दैवत काण्ड, प्रथम अध्याय में 3 अध्याय और द्वितीय काण्ड में भी 3 अध्याय हैं, तृतीय काण्ड में 6 अध्याय हैं, इनको पूर्वषट्क और उत्तरषट्क भी कहते हैं । 13 और 14वें दो अध्याय निरुक्त के परिशिष्ट माने जाते हैं । कुछ विद्वानों की सम्मति में परिशिष्ट बहुत उत्तरकाल के हैं, परन्तु पं. भगवद्दत आदि विद्वान् इनको यास्क की रचना ही मानते थे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम नैघण्टुक काण्ड में 1341 पद हैं, जिनमें से केवल 350 पदों का निर्वाचन यत्रतत्र किया है। प्रथम काण्ड का प्रथम पद गो और अन्तिम अपोर है। द्वितीय नैगम काण्ड का प्रथम व्याख्येय पद 'जहा' और अन्तिम 'ऋषीसम्' हैं। तृतीय दैवत काण्ड में 'अग्नि, प्रथम पद और 'देवपन्त्य' अन्तिम पद है।

निरुक्त का विषय—यास्क ने प्रथम अध्याय में वैयाकरणिक संज्ञाओं का विवेचन किया है, उनके मत में चार प्रकार के पद होते हैं—नाम (संज्ञा) आख्यात (क्रिया) उपसर्ग और निपात (अव्यय)। इसी अध्याय में यास्क ने औदुम्बरायण, वार्ष्यायणि शाकटायन आदि के मतों को उद्धृत किया है, जैसे—'इन्द्रियमित्यं वचनमौदुम्बरायणः' (1।1) 'षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः (1।2), "न निबद्धा उपसर्गा अर्थात् निराहुः इति शाकटायनः, वचन इन्द्रिय नित्यं होता हैं, षड्भाव विकार हैं क्रिया में विना बंधे उपसर्ग अर्थों को नहीं कहते-ऐसा शाकटायन का मत है। उपसर्गों और निपातों का यास्क ने विस्तार से विवेचन किया है।

यास्क ने शाकटायन के मत से संज्ञाओं को धातुओं से उत्पन्न माना है, साथ ही गार्ग्य का मत दिया है कि सभी नाम धातुज नहीं होते—(न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके नि. 1।12) इस विषय का प्रथम अध्याय चतुर्थ पद में विस्तृत विवेचन है। इससे आगे कौत्स के मत (अनर्थका हिमन्त्माः) का विस्तृत खण्डन है। तदन्तर ज्ञान प्रशंसा है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। (नि. 1।18) इत्यादि। यहीं पर वेदवेदाङ्गों की प्रथन की परम्परा का उल्लेख है।

द्वितीय अध्याय में निर्वाचन के सिद्धान्तों का वर्णन है, यहां पर वर्ण लोप, वर्णागम, वर्णविकार, सम्प्रसारण आदि का विवेचन है, इसी अध्याय में 'विद्या-ह वै ब्राह्मणमाजगाम' इत्यादि श्लोक हैं। तदनन्तर गो आदि पदों का निर्वाचन है।

यास्क ने निरुक्ति में वेदार्थ करने के अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख किया है—(1) आधिदैवत (2) आध्यात्मिक (3) आख्यान समय (4) ऐतिहासिक (5) नैदान (6) नैरुक्तिक (7) परिव्राजक (8) पूर्वयाज्ञिक (9) याज्ञिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अध्याय में कर्म, अपत्यादि पदों का निर्वचन है, यहीं पर प्रारम्भ में दाय भाग सम्बन्धी मन्त्रों और श्लोकों के उदाहरण हैं, यहीं पर मनु सम्बन्धी यह श्लोक उद्धृत है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।। (नि. 3।4)

इसी प्रकार चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अध्याय में अनेक वैदिक पदों के निर्वचन हैं । अधिक उदाहरण देकर हम विषय विस्तार नहीं करना चाहते ।

सप्तम अध्याय से दैवतकाण्ड प्रारम्भ होता है । यहां पर दैवत विज्ञान उपस्थित किया गया है, यास्क ने यहीं पर यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है—"महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते", (नि. 7।4), 'अत्यन्त ऐश्वर्यंयुक्त होने से देवता की एक ही आत्मा बहुत प्रकार से स्तुत की जाती है। यही पर यास्क ने लिखा है कि तीन ही प्रमुख देवता हैं । अग्नि पृथिवीस्थान, वायु या इन्द्र अंतरिक्षस्थान और सूर्य द्युस्थान । देवताओं में पुरुषविध, अपुरुषविध, उभयविध देवों के उदाहरणादि हैं । तदनन्तर अग्नि से प्रारम्भ करके, अग्नि के पर्यायवाची जातवेद, वैश्वानर आदि का निरूपण है । अष्टम अध्याय में अग्नि के द्रविणोदाः, तनूनपात्, नराशंस आदि पदों का निर्वचन-विवेचन है । पुनः उषासानक्ता, वनस्पति अनुयाज प्रयाज देवों का कथन है ।

नवम अध्याय में अश्व, शकुनि, मण्डूक, ग्रावा, रथादि पृथिवीस्थान देवों का विवरण है । यहीं पर नदी आदि देवताओं का विवेचन है ।

दशम अध्याय में वायु, इन्द्र, वरुण, रुद्र, पर्जन्य आदि प्रधान वैदिकदेवों का विवरण है । एकादश अध्याय में श्येन, सोमादि देवों का सोदाहरण वर्णन है, यहीं पर मरुतः, पितर, स्त्रीदवेता-अदिति, सरमादि का कथन है । द्वादश अध्याय में अश्विनौ, उषा, सूर्या, वृषाकपायी आदि देवताओं का प्रतिपादन है ।

निरुक्त के त्रयोदश और चतुर्दश अध्याय परिशिष्ट हैं । त्रयोदश अध्याय अतिस्तुतियों (अग्नि, वरुण, इन्द्र, आदित्य, अश्वि, यज्ञादि) का विवरण है । यहीं पर चत्वारिश्रृङ्गा, इन्द्र ते शतं भूमीः, चत्वारिवाक् परिमिता, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, आदि मन्त्र उदाहृत हैं । यहीं पर मन्त्रों के आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ किये हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्दश अध्याय में अध्यात्म विशेषतः सांख्यदर्शन के सिद्धान्त वर्णित हैं। यहीं पर ये श्लोक मिलते हैं—

युगसहस्रपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणोविदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।
मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नाना योनिसहस्राणि मयोपितानि यानि वै॥

तदनन्तर आध्यात्मिक ऋचाओं के उदाहरण दिए गए हैं, इस प्रकार अध्यायों का विषय है।

टीकायें—यास्क के निरुक्त पर दुर्गाचार्य की टीका प्रसिद्ध है, आचार्य दुर्ग प्रथम शती के आस-पास हुए थे। निरुक्त पर स्कन्द महेश्वर ने वृत्ति लिखी, यह दुर्ग से उत्तरकाल में हुआ।

वर्तमान काल में निरुक्त पर पं. राजाराम, रामप्रपन्न शास्त्री, काशीनाथ राजवाड़े, उमाशंकर शर्मा ऋषि, सीताराम शास्त्री, छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर, डॉ. लक्ष्मणस्वरूप आदि बहुत से विद्वानों ने अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी में भाष्य लिखे हैं। पं. भगवद्दत्त का निरुक्त शास्त्र इस संबन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण और उपादेय भाष्य है, जिसमें स्थल-स्थल पर ऐतिहासिक मीमांसा भी की गई है।

छन्दःशास्त्र—वेद की एक प्रसिद्ध और प्राचीन संज्ञा 'छन्दः' भी थी। पाणिनि के 'बहुलं छन्दसि' सूत्र में छन्द से अभिप्राय वेद से ही है। अथर्ववेद या वेद की संज्ञा छन्दोवेद थी, पारसियों का धर्मग्रन्थ छन्दोवेद (विकृति-जेन्दा-वेस्ता) प्रसिद्ध है। त्रयीविद्या में छन्दों का महत्व अतिरोहित अथवा प्रत्यक्ष है। कहा जाता है कि 'छान्दसी मुद्रा' (रचना) की मौलिकता (शब्दानुपूर्वी) अलौकिक है, ऐसी बनावटी रचना की पहिचान शीघ्र हो जाती है। आर्षेय ब्राह्मण (1।1) में छन्दोज्ञान का महत्व ज्ञापित करते हुए कहा है—'यो हवा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतं ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणु वार्च्छति गर्तं वा पद्यति प्रवामीयते पापीयान् भवति।" "जो कोई छन्दादि के ज्ञान के बिना मन्त्र या ब्राह्मण से यज्ञ करता है या पढ़ाता है, वह स्थाणुत्व को प्राप्त होता है, या गड्ढे में गिरता है या वह पापी होकर मर जाता है।" अतः प्रत्येक मन्त्र के छन्द का ज्ञान श्रेयस्कर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'छन्द:' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'अच्छादयंस्तानि यदस्या अच्छादयंस्तस्माच्छन्दांसि:' क्योंकि इन्होंने ज्ञान को आच्छादित कर लिया, इसलिए छन्द कहलाये ।

पुराणादि में सप्त वैदिक छन्द प्रसिद्ध हैं—

गायत्री च वृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुवेव च । अनुष्टुप् पंक्तिरित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो रवे: (वि. पु. 7।8) । "गायत्री, वृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुव्, अनुष्टुव् पंक्ति —ये सात छन्द सूर्य की सात रश्मियाँ या अश्व हैं ।" वैदिक छन्दों में पादों की संख्या नियमित नहीं होती । गायत्री में तीन पाद, अनुष्टुप् में चार पाद और पंक्ति छन्दों में पांच पाद होते हैं । इनके अक्षरादि घट पर निचृत्, भुरिक् आदि छन्द बनते हैं । इनके अतिरिक्त और भी अनेक वैदिक छन्द हैं—जैसे प्रस्तारपंक्ति इत्यादि ।

छन्द:शास्त्र सम्बन्धी कोई स्वतन्त्र वैदिक ग्रन्थ इस समय नहीं मिलता । छन्दों का सबसे प्राचीनतम वर्णन दैवताध्याय ब्राह्मण में मिलता है । एक प्राचीन श्लोक प्रसिद्ध है :

ब्राह्मणात्ताण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मन: । निदानादुक्थ शास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम् ।।" "ताण्डियों के दैवत ब्राह्मण से, पिङ्गल से निदानसूत्र और उकथसूत्र से छन्द:शास्त्र उद्धृत किया जाता है ।" प्रमुखत: ऋक्प्रातिशाख्य (पटल 15 से 18 तक), निदानसूत्र, कात्यायनकृत सर्वानुक्रमणी आदि में छन्दों का वर्णन है ।

जिस प्रकार व्याकरणों में पाणिनि की अष्टाध्यायी सर्वपरिषद् शास्त्र प्रसिद्ध हुआ, उसी प्रकार छन्दशास्त्रों में पाणिनि के अनुज पिङ्गल की 'छन्दोविचिति' नामक अष्टाध्यायी अति प्रसिद्ध हुई, जो आज भी उपलब्ध है । षड्गुरुशिष्य ने वेदार्थदीपिका में लिखा है—"तथा च सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन···पिङ्गलछन्दोविचिति: । 7।9 और भी प्रमाण हैं जिससे पिङ्गल पाणिनि का भ्राता सिद्ध होता है—

व्याख्याय पिङ्गलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम् ।
शिक्षां तदीयां व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम् ।।"

(शिक्षाप्रकाश : यादवप्रकाशकृत),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी 'पैङ्गलकाण्वा' छात्रों का उल्लेख किया है। पाणिनि ने छन्दोविचिति (अष्टा. 4।3।73) का उल्लेख किया है। अतः पिङ्गल पाणिनि का अनुज, उनके समकालीन ही था।

पिङ्गल से पूर्व के निम्नलिखित छन्दोविचिति के रचयिता हुए थे—(1) शिव (2) बृहस्पति (3) इन्द्र (4) शुक्राचार्य (5) माण्डव्य (6) सैतव (7) यास्क (8) पिङ्गल (यादवप्रकाश), इनमें से केवल पिङ्गल का छन्दःशास्त्र या छन्दोविचिति मिलती है। इसमें से आठ अध्याय (अष्टाध्यायी) हैं। इसमें प्रारम्भ में वैदिक छन्दों के नियम हैं। पण्डित भगवद्दत्त के अनुसार सैतव छन्दशास्त्र भी मिलता है, लेकिन प्रकाशित नहीं है।

ज्योतिष

वैदिक और वेदाङ्ग ज्योतिष—वेदों में ज्योतिष विद्या का महत्त्व निर्विवाद है, यज्ञों में दिन, रात, मुहूर्त, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युगादि की गणना की सतत आवश्यकता होती थी। ये सभी काल (समय) के विभाग हैं, इसीलिए वेदाङ्ग ज्योतिष कर्ता लगधाचार्य ने लिखा है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।
कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः॥
तस्मादिदं कालविज्ञानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥
(श्लोक 3)

"वेदों का निर्माण यज्ञों के लिए हुआ है, यज्ञकाल क्रम से विदित हैं, इसलिए इस कालविज्ञानशास्त्र ज्योतिष को जो जानता है, वह यज्ञों को भी जानता है। वायुपुराण में 'काल' का लक्षण लिखा है—

'कलानां सुपरीणामात् काल इत्यभिधीयते।' (वा. पु. 100।225)।

'कला (चन्द्र कलाओं) के सुपरिणाम को काल कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में काल के सूक्ष्म विभागों—निमेष, तुट, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, त्रुटि, प्राण, विनाडिका, नाडिका आदि का वर्णन मिलता है। लिखा है—

"काष्ठा निमेषा दशपञ्चचैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम्।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते।"
(वायु. पु. 50।169)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"15 निमेषों की एक काष्ठा, 30 काष्ठा की एक कला, 30 कलाओं का एक मुहूर्त, 30 मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है।" शतपथब्राह्मण (12।3।2।4-5) में काल के अतिसूक्ष्म विभागों—लोमगर्त, स्वेदायन, स्तोकादि का वर्णन है। प्राचीन भारत में मुहूर्तों, होरा (घण्टों) आदि के नाम प्रचलित थे। जैसे रौद्र, सार्व मैत्र इत्यादि। तैत्तिरीयब्राह्मण में शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष की रात्रि और दिन के मुहूर्तों के नाम मिलते हैं, यथा चित्र, केतु, दाता, प्रदाता, इत्यादि (द्र. तै. ब्रा. 3।10)। भारतीयों का 'प्राण' नाम का कालांश सैकेण्ड का भी पञ्चमांश होता था। तैत्तिरीयब्राह्मण में जनक वैदेह, अहीन आश्वथ्य, देवभाग श्रौतर्ष, शूष वार्ष्णेय आदि ज्योतिर्विदों का उल्लेख मिलता है।

मन्त्रों में वृहस्पति, शुक्र (वेन), बुधादि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वेन शुक्र का ही नाम था, जिसको अंग्रेजी में वेनस् कहते हैं। अथर्ववेद (19।7) में कृत्तिकादि 28 नक्षत्रों के नाम मिलते हैं। तैत्तिरीयसंहिता (4।4।10।1-3) में कृत्तिकादि नक्षत्रों के देवता अग्नि, सोमादि का उल्लेख है। शतपथब्राह्मण (2।1।2।1-3) में कृत्तिका से गणना का प्रारम्भ माना गया है, इसलिए कहा है कि कृत्तिका नक्षत्र में अग्न्याधान करना चाहिए। कृत्तिका नक्षत्र में सात तारे हैं—अम्बा, दुला, नितम्वा, अभ्रयन्ती, मेघयन्ती, वर्षयन्ती और चुपुणीका। यजुर्वेद में 12 मासों के नाम हैं—मधु-माधव, शुक्र शुचि, नभनभस्य, इष-ऊर्ज, सह-सहस्य, तप-तपस्य। इन्हीं की चैत्रादि संज्ञा है। वेदों में पंचर्तव या षड्-ऋतु प्रसिद्ध हैं—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर। ऋग्वेद में मलमास (वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते, ऋ.1।25।8) का उल्लेख है। उत्तरायण और दक्षिणायन या देवयान और पितृयाण वेदों में विख्यात थे। वेदमन्त्रों में वर्ष के लिए हिम, वर्ष, समा, शरद्, संवत्सरादि पद मिलते हैं। शुक्लयजुर्वेद में (वा. सं. 26।45)—संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर और वत्सर-पंचमवर्षात्मक युग का उल्लेख है। लगधने पंचसंवत्सरात्मक युग का अध्यक्ष प्रजापति (सूर्य) को कहा है—

पंचसंवत्सरमय युगाध्यक्षं प्रजापतिं।
कालज्ञानम् प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥ (ऋ. ज्यो. 2)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋग्वेद में भी मानव और दैवयुगादि संज्ञाओं का वर्णन मिलता है । इस प्रकार ज्ञात हुआ कि वैदिक संहिताओं और ब्राह्मणों में ज्योतिष वर्णन भरा पड़ा है । लेकिन वेदाङ्ग ज्योतिष का केवल एक ही लघु ग्रन्थ मिलता है जो लगधकृत है । वैसे प्राचीनकाल में भृगु, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, वसिष्ठ, पराशर, बादरायण, शाकल्य, मय आदि अनेक ज्योतिषाचार्य हुए, लेकिन उनके मूलग्रन्थ नहीं मिलते, केवल उनके सिद्धान्त नाम से उत्तरकालीन आचार्यों के ग्रन्थ मिलते हैं । आगे वेदांग ज्योतिष का परिचयादि लिखते हैं ।

वेदाङ्ग ज्योतिष के रचयिता प्रसिद्ध लगधाचार्य थे । इनका समय योरोपियन लेखक अनुमान और कल्पना के अनुसार निर्धारित करते रहे हैं । मार्टिन हाग ने 'घर्म' (दिन) शब्द के आधार पर 600 ई. पू. से 1200 ई. पू. इसका समय निश्चित किया था । वेबर इसको 500 ई. पू. और मैक्समूलर 300 ई. पू. मानता था । कालब्रुक रेवतीसम्पात के आधार पर वेदाङ्ग ज्योतिष का रचनाकाल 1108 ई. पू. मानता था । बालकृष्ण दीक्षित ने 1410 ई. पू. इसका रचनाकाल माना । लोकमान्य तिलक भी लगभग ऐसा ही मानते थे ।

वेदाङ्ग ज्योतिष दो भागों में विभक्त है—आर्चज्योतिष में 36 श्लोक और याजुष ज्योतिष में 43 श्लोक हैं । इनमें 30 श्लोक प्रायः समान हैं । अथर्व-ज्योतिष नाम का एक ग्रन्थ और उपलब्ध हुआ है । जिसमें 162 श्लोक हैं । वेदाङ्ग ज्योतिष पर सोमाकर की प्राचीन टीका मिलती है । आधुनिक विद्वानों में सुधाकर द्विवेदी, डा. थीबो, बालकृष्ण दीक्षित आदि की टीकायें भी प्रसिद्ध और उपयोगी हैं । वेदाङ्ग ज्योतिष की भाषा दुरूह होने से अनेक श्लोकों का ठीक-ठीक अर्थ पता नहीं चलता, इन श्लोकों के पाठ भी बहुत अशुद्ध हैं ।

वेदाङ्ग ज्योतिष में मास, अयन, दिवस, युग, संवत्सर, नक्षत्रादि का विशिष्ट वर्णन है । इसके कुछ श्लोक सानुवाद द्रष्टव्य हैं—

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्यचान्द्रमसावुदक् ।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ।। (6)

अर्थ—श्रविष्ठा के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं और आश्लेषा की अर्ध पर दक्षिण की ओर। सूर्य सदा माघ और श्रावण में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर, दक्षिण की ओर मुड़ता है।"

माघशुक्ल प्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पंचवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते ॥ 32 ॥

"माघ शुक्ल में प्रवृत्त और पौष कृष्ण में समाप्य पंचवर्षात्मक युग का कालज्ञान कहते हैं।"

परिशिष्ट साहित्य

वेद और वेदाङ्गों के सम्यक् ज्ञान के लिए उत्तरकाल में विशाल परिशिष्ट साहित्य रचा गया। प्रत्येक वेद में छन्द, देवता और ऋषियों की अनुक्रमणियाँ बनाई गईं, प्रत्येक शाखा का प्रातिशाख्य लिखा गया। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकीर्णक विषय यथा भाषा, यज्ञ के अकथित विषयों की परिशिष्टें रची गईं। गृह्यसूत्र, कर्मकाण्ड आदि सम्बन्धी अनेक अन्य ग्रन्थ रचे गये। इस प्रकार वेद और वेदाङ्गों का विशाल वाङ्मय प्रणीत हुआ। इसको परिशिष्ट साहित्य कहते हैं। परिशिष्ट वाङ्मय इतना विशाल है कि इसके परिचय के लिए एक पृथक् ग्रन्थ लिखा जा सकता है। यहाँ पर प्रत्येक वेद के महत्वपूर्ण परिशिष्ट साहित्य का संक्षिप्त परिचय ही लिखा जायेगा।

शौनककृत परिशिष्ट ग्रन्थ—पाण्डव वंशीय महाराज अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल में नैमिषारण्य वासी ऋषियों ने कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर एक द्वादश वार्षिक दीर्घसूत्र प्रारम्भ किया। इस यज्ञ में सर्वशास्त्रविशारद कुलपति शौनक ने ऋग्वेद की रक्षा के लिए दस ग्रन्थों की रचना की—

शौनकीया दशग्रन्थास्तदा ऋग्वेदगुप्तये।
आर्षानुक्रमणीत्याद्याश्छान्दसी दैवती तथा।
अनुवाकानुक्रमणी च सूक्तानुक्रमणी तथा।
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हदैवतमेव च।
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्तं दशममुच्यते ॥

आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान, पादविधान, बृहद्देवता, ऋक्प्रातिशाख्य और शौनकस्मृति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋक्प्रातिशाख्य का परिचय पहिले लिखा जा चुका है, इसके अतिरिक्त 'चरणव्यूह' नाम का ग्रन्थ जिसमें ऋग्वेद की शाखाओं का वर्णन है, शौनक की रचना मानी जाती है।

आर्षानुक्रमणी में ऋग्वेद के दस मण्डलों के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की सूची लिखी गई है। छन्दोऽनुक्रमणी में ऋग्वेद के छन्दों का परिगणन है। देवतानुक्रमणी में ऋग्वेद के देवताओं का विवरण है। अनुवाकानुक्रमणी में 39 श्लोकों में ऋग्वेद के अनुवाकों की संख्यादि बतलाई गई है। इसी प्रकार सूक्तानुक्रमणी नाम से स्पष्ट है इसमें ऋग्वेद के सूक्तों का परिचय लिखा है। ऋग्विधान में ऋचाओं के विनियोग के नियम हैं। पादविधान में ऋग्वेद के मन्त्रों के पादों की संख्या का विवरण है। शौनकस्मृति अप्रकाशित है।

बृहद्देवता—बृहद्देवता ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, अतः इसका परिचय यहाँ कुछ अधिक विस्तार से लिखा जाता है। जिस प्रकार वेदों में ऋग्वेद और ब्राह्मणों में शतपथब्राह्मण का महत्त्व है, उसी प्रकार परिशिष्ट ग्रन्थों में बृहद्देवता का गौरवपूर्ण स्थान है, अतः इस पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

बृहद्देवता आचार्य शौनक की अत्यन्त महत्वपूर्ण और अद्वितीय कृति है। इसके रचयिता शौनक का वास्तविक नाम माण्डूकेय था जो एतरेयारण्यक के अनुसार तीन भ्राता थे, (ह्रस्व, दीर्घ और मध्यम माण्डूकेय)। कुछ लोग बृहद्देवता का सम्बन्ध शाकल या बाष्कल शाखा से मानते हैं, जो गलत है। बृहद्देवता के अन्तरंग प्रमाणों से इसका स्वतन्त्र आम्नाय (माण्डूकेय) सिद्ध होता है। क्योंकि नाकुल सूक्त (बाष्कल) और शाकल शाखा में नहीं है, जिसका प्रथम मन्त्र है—'ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्' (ऋ. 10।10।3 के पश्चात्) अतः बृहद्देवता का सम्बन्ध माण्डूकेय (शौनक) चरण से था। अनुमान होता है कि प्राचीनकाल में ऋग्वेद के पृथक्-पृथक् चरणों के भिन्न-भिन्न बृहद्देवता थे, शनैः शनैः उसके पाठ परस्पर मिश्रित हो गये। वर्तमान मुद्रित बृहद्देवता में कम से कम दो प्राचीन बृहदेवताओं के पाठ मिश्रित हो गये हैं।

मूल बृहद्देवता के अब तक दो पाठ या संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, एक श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल से सन् 1889 में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशित किया था, द्वितीय मैकडानल ने हर्वर्ड ओरियन्टल सीरीज में सन् 1904 में प्रकाशित किया था। तृतीय संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ श्री रामकुमार राय ने सन् 1963 में चौखम्बा संस्कृत सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित किया।

बृहद्देवता के आकार-प्रकार—इस ग्रन्थ में 8 अध्याय हैं, जिनकी श्लोक संख्या इस प्रकार है—

प्रथम	अध्याय में	= 131	श्लोक
द्वितीय	"	= 158	"
तृतीय	"	= 156	"
चतुर्थ	"	= 144	"
पञ्चम	"	= 155	"
षष्ठ	"	= 163	"
सप्तम	"	= 157	"
अष्टम	"	= 140	"
	कुल	= 1204	श्लोक

विषयवस्तु—प्रथम अध्याय में दैवत ज्ञान का महत्व, स्तुति आशीः, सूक्त प्रकार, नैपातिक देव, नामोत्पत्ति कारण, संज्ञा, क्रिया-परिभाषा, देवनामों की गणना, देवताओं के नामों की व्युत्पत्तियाँ वर्णित हैं। "द्वितीय अध्याय में इन्द्र, सूर्य, अग्नि के विभिन्न नामों की व्युत्पत्तियाँ" त्रिविध वाक्, निपात, संज्ञा, सर्वनाम, समास, विग्रहादि पर विचार है। तृतीय से अष्टम अध्याय पर्यन्त ऋग्वेद के प्रत्येक मन्त्र का देवता निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रसंग के अन्य विषयों के साथ कुछ प्राचीन इतिहास और उपाख्यानों का वर्णन बृहद्देवता में किया गया है, जो इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय और अनुपम है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण उपाख्यान ये हैं—अगस्त्य-लोपामुद्रा, अपालोपाख्यान, इन्द्र वैकुण्ठ की कथा, उर्वशी पुरूरवा की कथा, स्वनयोपाख्यान, दीर्घतमा की कथा, वसिष्ठ-अगस्त्य जन्म कथा, वृशजान की कथा, श्यावाश्वोपाख्यान, सरमापाणिसंवाद इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माण्डूकेय शौनक ने बृहद्देवता में अनेक प्राचीन वेदाचार्यों के मत उद्धृत किये हैं—उदाहरणार्थ—आश्वलायन, औपमन्यव, और्णनाभ, कात्थक्य, 'कौषीतकि, गार्ग्य, गालव, भागुरि, माठर, मधुक, मुद्गल, यास्क, रथीतर, शाकपूणि, शाकटायन, लामकायन, शाण्डिल्य और श्वेतकेतु। दस बार से अधिक स्वयं शौनक का नाम लेकर उनका मत उद्धृत किया गया है इससे कुछ लोग अनुमान करते हैं, यह शौनक की नहीं उनके किसी शिष्य या अनुयायी की रचना है। ऐसा सोचना अनुचित है। क्योंकि इस बृहद्देवता में कई बृहद्देवताओं के पाठ मिश्रित हो गये हैं, अथवा उत्तरकाल में इसमें हस्तक्षेप हुआ हो लेकिन रचयिता शौनक ही थे, तथा शौनक गोत्र में इस गोत्र के अनेक व्यक्ति हुए थे।

बृहद्देवता के कुछ वर्णन द्रष्टव्य हैं—

भवद्भूतस्य भव्यस्य जंगमस्थावरस्य च।
अस्यै के सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥ (बृ. 1161)

"विद्वान् वर्तमान, भविष्यत् और भूत, स्थावर और जंगम का प्रभव तथा प्रलय का मूल सूर्य को ही मानते हैं।"

अणिष्ठ·एव यत्तुत्रीन् व्याप्यैको व्योम्नितिष्ठति।
तेनैनमृषयोऽर्चन्तः कर्मणा वायुमब्रुवन्॥ (2132)

"क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म रूप से तीनों लोकों को व्याप्त करता हुआ अन्तरिक्ष में स्थित हैं, अतः कर्म की दृष्टि से अर्चना करते हुए इसे 'वायु' कहते हैं।

धातुजं धातुजाज्जातं समस्तार्थजमेव वा।
वाक्यजं व्यतिकीर्णं च निर्वाच्यं पञ्चधा पदम्॥ (21104)

"किसी पद की व्युत्पत्ति पांच प्रकार से होती है—धातु से, धातुज रूप से, समस्तार्थ से वाक्य से और मिश्रित रूप से व्युत्पत्ति या व्याख्या होती है।"

असुराः पणयो नाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहँश्च प्रयत्नतः। (३124)

"पाणि नाम के असुर गण थे, जो रसा (नदी) के पार रहते थे। इन असुरों ने इन्द्र की गायों को चुराकर बड़े प्रयत्न से छिपा दिया।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शौनक ग्रन्थों के अतिरिक्त कात्यायन कृत ऋगवेद का प्रसिद्ध परिशिष्ट ग्रन्थ ऋक्सर्वानुक्रमणी है, जिसमें ऋचा के प्रथम पद, ऋकसंख्या, सूक्तों के ऋषि, देवताओं और छन्दों का विवरण है। इसकी रचना में कात्यायन ने शौनक और आश्वालायन के ग्रन्थों से पूर्ण सहायता ली जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने लिखा है।

शुक्लयजर्वेद के परिशिष्ट—यजुर्वेद के अधिकांश परिशिष्ट कात्यायन की रचनायें हैं। कात्यायन का परिचय पहिले लिखा जा चुका है कि यह शौनक का शिष्य और आश्वलायन का सहपाठी था। आचार्य कात्यायन ने श्रौतसूत्र, गृह्य-सूत्र, धर्मसूत्र, शुल्वसूत्र, प्रातिसाख्य, ऋकसर्वानुक्रमणी लिखी जिनका परिचय पहिले लिखा जा चुका है। इनमें से अन्तिम ग्रन्थ का सम्बन्ध यजुर्वेद से नहीं है। यजुर्वेद सम्बन्धी कात्यायन के परिशिष्ट ग्रन्थ ये हैं—(1) शुक्लयजुः सर्वा-नुक्रमणी (2) छागलसूत्र (3) कूर्मलसूत्र (4) प्रतिज्ञापरिशिष्ट (5) अनुवाकसूत्र (6) त्रिकण्डिकासूत्र (7) मूलाध्याय (स्नानसूत्र) (8) कर्मप्रदीप (9) कात्यायन-स्मृति (10) गृह्यपरिशिष्ट (11) श्राद्धसूत्र (12) रुद्रसूत्र (13) यूपलक्षण (14) चरणव्यूह (15) पार्षदसूत्र (16) इष्टकापूरण (17) प्रवराध्याय (18) उक्थ्यशास्त्र (19) ऋतुसंख्या (20) निगम (21) होत्रकल्प (22) प्रसवोत्थान (23) भाषिकसूत्र।

इसमें से शुक्लयजुःसर्वानुक्रमणी, कर्मप्रदीप, प्रतिज्ञा परिशिष्ट और भाषिक सूत्र महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

यजुर्विधान नाम का शुक्लयजुर्वेद का परिशिष्ट भी प्रसिद्ध है, जिसमें 84 श्लोक हैं। शुक्लयजु सर्वानुक्रमणी में यजुर्मन्त्रों का विवरण है, चरणव्यूह में शाखाओं का परिचय है। कर्मप्रदीप कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रसिद्ध और महत्व-पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें यज्ञायुध, पितृतर्पण, श्रद्धादि का वर्णन है। भाषिकासूत्र में व्याकरण वर्णित है।

कृष्णयजुर्वेद का अधिक परिशिष्ट साहित्य नहीं मिलता। केवल दो ग्रन्थ मिले हैं—याजुषसर्वानुक्रमणी और काण्डानुक्रमणी।

सामवेद के परिशिष्ट—साम सर्वानुक्रमणी और उपग्रन्थ सूत्र कात्यायन की रचना माने जाते हैं। सामसर्वानुक्रमणी में सामों का विवरण है, एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

·CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सामार्षेय प्रदीप' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जो भट्टभास्कर की रचना है। इसमें सामद्रष्टा ऋषियों की सूची है। इनके अतिरिक्त सामवेद के परिशिष्ट ये प्रसिद्ध हैं—कल्पानुपद्सूत्र, अनुपदसूत्र, निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र, पञ्चविधानसूत्र, ऋक्तन्त्र, लघुऋक्तन्त्र सामसप्त लक्षण और सामविधान। इनमें निदानसूत्र बहुत महत्वपूर्ण रचना है, जो पतञ्जलि की कृति है। यह पतञ्जलि पाणिनि गणपाठ में स्मृत है, अतः यह पाणिनि का पूर्ववर्त्ती पतञ्जलि था।

अथर्ववेद के परिशिष्ट—प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् वेबर ने अथर्ववेद के 74 परिशिष्टों का संकलन प्रकाशित किया था। इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद के सर्वाधिक परिशिष्ट है, ये छोटे-छोटे ग्रन्थ हैं। इनमें सर्वानुक्रमणी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें अथर्ववेद के प्रत्येक काण्ड के सूक्त, मन्त्र, देवता और ऋषियों का विवरण है।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के ये परिशिष्ट और प्रसिद्ध हैं—पञ्चपालिका, चरणव्यूह और अथर्व परिशिष्ट।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक साहित्य का इतिहास

शुद्धि पत्र

अशुद्ध पद	शुद्ध पद	पृष्ठ	पंक्ति
1. असुरों	असुरों	19	1
2. उशाना	उशना	19	14
3. बृहपति	बृहस्पति	19	14
4. देवाना	देवानां	25	14
5. उछालक	उद्दालक	26	9
6. वर्तमान	वर्तमान	29	19
7. आश्व० मृ०	आश्व-गृ०	31	पाद टिप्पणी
8. तच्छिब्या	तच्छिष्या	33	18
9, शौशिरीय	शैशिरीय	34	26
10. ाभ्रव्य	बाभ्रव्य	34	16
11. उछालक	उद्दालक	37	2
12. ऐतरेयरण्यक	ऐतरेयारण्यक	37	18
13. श्रुतुं	श्रुतं	37	पाद टिप्पणी
14. बदह्वच:	बह्वृच	37	पाद टिप्पण
15. श्रोतसूत्र	श्रौतसूत्र	38	2
16. तीन	दो	38	25
17. प्रवह्लिक	प्रवह्लिका	40	15
18. ऋष्यश्रुङ्ग	ऋष्यश्रृङ्ग	45	20
19. त्विते	त्विति	48	3
20. शोचदकेश	शोचिद्‌केश	48	20

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्ध पद	शुद्ध पद	पृष्ठ	पंक्ति
21. छिवेयु:	द्विवेयु:	53	10
22. पर्णौः	पर्णौ:	57	17
23. द्यामदृं तद्	द्यामदृं हृत्	60	पा० टि०
24. रश्मिप्रोषं	रश्मिपोषं	61	3
25. रोवंश्च	रौवंशश्च	61	21
26. यज्ञ	यम	63	5
27. दक्षाददिदि:	दक्षाददिति:	64	14
28. प्रजायत:	अजायत	64	14
29. अप्रिय	आप्रिय:	65	2
30. सख्यू	सरण्यू	65	11
31. नृमृणास्य	नृम्णस्य	66	11
32. युक्तग्राण्णो	युक्तग्राव्णो	67	21
33. वरुणासूक्त	वरुणसूक्त	69	15
34. सालावृकारणां	सालावृकाणां	74	5
35. विमानयु:	विमानीमु	74	13
36. सरमापरि संवाद	सरमापणि संवाद	74	18
37. परितकम्मा	परितक्म्या	74	19
38. रक्षा	रसा	74	22
39. पठचाशतं	पञ्चाशतं	76	18
40. अक्षसूस्त	अक्षसूक्त	77	1
41. तपयिष्णाव:	तापयिष्णव:	77	6
42. स्मरच	रमस्व	77	8
43. पत्री	पत्नी	77	22
44. गृम्याणामि	गृम्णामि	78	1
45. स्वपित	स्थापित	79	22
46. श्रोत्राद्	श्रोत्रात्	80	22
47. वलदा	बलदा	81	7
48. संतान सूक्त	संज्ञान सूक्त	83	1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्ध पद	शुद्ध पद	पृष्ठ	पंक्ति
49. भूमीसत	भूमीरुत	84	10
50. भर्त्यां	मर्त्यां	84	21
51. वावदक	वावदूक	85	26
52. अह्लाम्	अह्लाम्	87	9
53. ननाह्	नन्दाट्ट	90	8
54. राजसूर्यादि	राजसूयादि	61	3
55. पूषवते	पूषण्वते	92	पा0 टि0
56. पाणि	पाणि	94	16
57. भुवनामि	भुवनानि	95	26
58. कृष्णायजुर्वेद	कृष्णयजुर्वेद	96	24
59. तन्त्रो	तन्नो	109	26
60. पौष्यञ्जी	पौष्यञ्जि	115	11
61. शंभुवहिस्पत्य	शंयुर्बार्हस्पत्य	118	14
62. विश्वरूपुत्वष्टा	विश्वरूपत्वष्टा	120	28
63. केवन्ध	कवन्ध	121	13
64. श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	122	20, पा0 टि0
65. प्रथिसीयकृष्ण	प्रथिसीमकृष्ण	122	22
66. पिप्लाद	पिप्पलाद	123	5
67. प्रस्कण्च	प्रस्कण्व	124	24
68. मिशोक	त्रिशोक	125	15
69. तदिषं	तद्विषं	129	14
70. हितमोवघीषु	हितमोषघीषु	130	5
71. प्रवन्त्रिका	प्रवह्लिका	131	11
72. जिगीवंति	जिगीषंति	131	21
73. बौद्धायन	बौधायन	132, 185	18, 5
74. कालवीव	कालववि	133	2
75. हरिन	हरित	135	15
76. वार्षगणर	वार्षगण	135	15

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्ध पद	शुद्ध पद	पृष्ठ	पंक्ति
77. आश्रमवापिक	आश्रमवासिक	137	18
78. समाहृत	समादृत	137	25
79. गुणढ्य	गुणाढ्य	138	8
80. शाहृयायन	शाट्यायन	145	5
81. प्रामाध्य	प्रामाण्य	145	22
82. यन्नियं	यन्नित्यं	145	29
83. होरां	होदरं	146	5
84. राहित	रोहित	146	27
85. द्यो	द्यौः	149	22
86. कात्वाली	काल्वाली	150	1
87. कपिष्टवकठ	कपिष्ठलकठ	150	6
88. वाप	पाप	151	6
89. निघाप	निष्पाप	151	6
90. नारिदय	नारदाय	152	15
91. तैत्तिरीयरण्यक	तैत्तिरीयारण्यक	155	19
92. चक्रवर्चियों	चक्रवर्त्तियों	156	11
93. वाज्ञयवल्क्य	याज्ञवल्क्य	164	1
94. चक्षः	चक्षुः	169	11
95. यवरं	मवरं	169	17
96. एतदवोयडेभि	एतच्छ्रेयोयेऽभि	169	18
97. तसृष्द्वा	तत्सृष्ट्वा	170	17
98. ह्व	वा	176	21
99. विरुक्त	निरुक्त	177	8
100. अपिशील	आपिशलि	177	18, 21
101. चन्द्रुगोमि	चन्द्रगोमि	178	21
102. वार्ण्यायनि	वर्ष्यायनि	181	25
103. सूत्राकार	सूत्रकार	186	19
104. श्रोतमूत्र	श्रौतसूत्र	188	22

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्धि पद	शुद्धि पद	पृष्ठ	पंक्ति
105. वरुचि	वररुचि	189	20
106. आरवेय	आंखेय	191	13
107. वेखानस	वैखानस	193	17
108. गृहसत्र	गृह्यसूत्र	193	9
109. शाम्वव्ट	शामवव्य	195	12
110. सप्तकयल	सप्तकपाले	196	11
111. को	के	198	16
112. शब्दिका:	शाब्दिका:	202	8
113. वार्ष्यायणि	वार्ष्यायणि	205	3
114. यज्ञश्वर	यज्ञेश्वर	205	22
115. गोमनाम	गोत्रनाम	206	19
116. ऋपिरुधारवी	ऋपिरुदारवी:	207	2
117. जाम्मिवान्	जग्मिवान्	207	3
118. स्यमन्तकमाणि	स्यमन्तकमणि	207	15
119. निर्वाचन	निर्वचन	208	2, 21
120. अपोर	अपारे	208	2
121. इन्द्रीयमित्यं	इन्द्रियनित्यं	208	9
122. हिमन्मा:	हिमन्त्रा:	208	17
123. नितम्व	नितम्वी	213	16
124. अमन्त्री	अमन्ती	213	16
125. युगाध्ययं	युगाध्यक्षं	213	26
126. घर्मं	घर्मं	214	10
127. बाईदैवतमेव	बार्हद्दैवतमेव	215	23

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी अन्य परीक्षोपयोगी पुस्तकें

1. New Vedic Selection—Telang & Chaubey
   Vol. I (Paper back) 10.00
   (Library Ed.) 15.00
   Vol. II (Paper back) 18.00
   (Library Ed.) 22.00

33162

2. साहित्यदर्पण—'लोचन' संस्कृत टीका तथा विस्तृत हिन्दी अनुवाद सहित
   सम्पादक—डा० देवदत्त कौशिक १-२ परिच्छेद १०.००
   (शेष परिच्छेद छप रहे हैं)

3. वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत—आर. जी. भण्डारकर
   अनुवादक—डा. महेश्वरी प्रसाद १०.००

4. सांख्य सूत्र—विज्ञानभिक्षु भाष्य तथा विस्तृत हिन्दी अनुवाद सहित (द्वितीय संस्करण)
   संपादक—डा. रामशंकर भट्टाचार्य विद्यार्थी संस्करण २५.००
   लाइब्रेरी संस्करण ३०.००

5. Introduction to Pali—Anomdarshi Barua—Text Pali, (Sanskrit) and Grammar Etc. with Hindi Translation
   Paper Back 7.50
   Library Ed. 12.50

6. कांट का नीतिदर्शन—डा. छाया राय विद्यार्थी संस्करण १०.००
   लाइब्रेरी संस्करण १५.००

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली-११०००७ वाराणसी-२२१००१
(भारत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi